ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाका इक्कीसवाँ ग्रन्थ

अशोकके धर्मलेख

जनार्दन भट्ट एम. ए.

ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाका इक्कीसवाँ ग्रन्थ

अशोकके धर्मलेख ।

(प्रथम भाग)

लेखक—

श्रीयुत जनार्दन भट्ट एम. ए.

भूमिका लेखक—श्रीनरेन्द्रदेव एम. ए.
[काशी विद्यापीठके वाइस-प्रिन्सिपल]
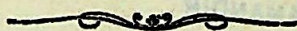
ज्ञानमण्डल कार्यालय, काशी ।

प्रथम संस्करण दो हजार | संवत् १९८० | मूल्य २॥)

प्रकाशक—
ज्ञानमण्डल कार्यालय,
काशी।

दूसरे भागमें शिला-लेखों और स्तम्भ-लेखोंके सम्बन्धके तथा अन्य आवश्यक चित्र दिये जायँगे।

मुद्रक—
प्यारेलाल भार्गव
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी

समर्पण

यह स्नेह-भेंट स्वदेशाभिमानी, हिन्दीहितैषी
तथा स्वाधीनताप्रेमी चिड़ावा-निवासी

सेठ बेनी प्रसाद डालमिया

को

सादर समर्पित है ।

भूमिका ।

अशोकका इतिहास भारतीय इतिहासका एक उज्ज्वल पृष्ठ है। अशोकके समयमें भारत उन्नतिके शिखरपर विराजमान था। देशमें शान्ति विराजती थी। प्रजा सुखी और समृद्ध थी। शिल्पकला और वाणिज्यमें अच्छी उन्नति हो चुकी थी। विदेशोंसे सम्बन्ध स्थापित था। भारतीय धर्म और सभ्यताके प्रसारके लिये अनेक कष्ट सहकर उपदेशक विदेशोंमें जाते थे। भारतकी राजनीतिक एकता साधित हो चुकी थी। ऐतिहासिक कालमें यह पहिला ही अवसर था कि भारतमें एक वृहत् साम्राज्यका संगठन हुआ था। इसलिये यह काल हम भारतवासियोंके लिये बड़े महत्त्वका है। अशोकके सम्बन्धमें सबसे अधिक महत्त्वकी बात यह है कि उसने धर्मके प्रचारके लिये जितना उद्योग किया उतना उद्योग कदाचित् ही किसी राजाने किया हो। विचित्रता यह है कि एक उत्साही और श्रद्धालु बौद्ध होते हुए भी उसने अपने लेखों द्वारा किसी विशेष धर्मकी शिक्षा जनसमाजको नहीं दी। अशोकका "धर्म" बौद्ध धर्म नहीं है, वह आर्योंकी सामान्य सम्पत्ति है। माता-पिताकी शुश्रूषा करना, गुरुजनोंका सम्मान करना, दास और भृत्योंके साथ सद्व्यवहार करना, अहिंसा और सत्यका व्रती होना किस धार्मिक संप्रदायको मान्य नहीं है। अशोकने अपनी 'धर्म्मलिपियों'में धर्मकी अकथनीय महिमा बतलाई है। सच्चा अनुष्ठान धर्मका अनुष्ठान है, सच्ची यात्रा धर्मयात्रा है, सच्चा मंगलाचार धर्ममंगल है। धर्मदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। धर्म-विजयसे बढ़कर कोई विजय नहीं है। धर्मकी रक्षा तथा वृद्धिके लिये उसने देश-विदेशमें कर्मचारी नियुक्त किये और प्राणिमात्रके सुखके लिये उचित प्रबन्ध किया।

अशोकको धार्मिक आग्रह नहीं था। श्रमण और ब्राह्मण दोनोंको वह आदरकी दृष्टिसे देखता था। धर्मयात्रामें दोनोंके दर्शन करता और

होते तो अशोकके ऊंचे आदर्श और उसकी महती आकांक्षाका पता न चलता।

श्री जनार्दन भट्टने 'अशोकके धर्म-लेख' नामक पुस्तक लिखकर हिन्दी-संसारका बड़ा उपकार किया है। पुस्तकके प्रथम भागमें दो खण्ड हैं। पहिले खण्डमें मौर्यवंशका इतिहास दिया गया है। दूसरे खण्डमें अशोकके लेखोंकी प्रतिलिपि और उनका संस्कृत तथा हिन्दी अनुवाद दिया गया है। लेखोंपर अच्छी अच्छी टिप्पणियां भी हैं।

लेखोंकी भाषा प्रचीन होनेके कारण कहीं कहीं उनका अर्थ लगानेमें कठिनाई होती है, एक ही वाक्य या शब्दकी परिभाषा कहीं कहीं कई प्रकारसे की जाती है। भट्टजीने विवादग्रस्त विषयोंपर सब विद्वानोंकी सम्मतियां दे दी हैं।

पुस्तक बड़े परिश्रमके साथ लिखी गयी है। अशोकके सम्बन्धमें जितने ग्रन्थ तथा लेख अंग्रेज़ी या हिन्दी भाषामें प्रकाशित हुए हैं उन सबसे यथा-संभव सहायता ली गई है। अंग्रेज़ी भाषामें भी ऐसी कोई एक पुस्तक अभी तक नहीं प्रकाशित हुई जिसमें भिन्न भिन्न विद्वानोंके मतोंका समावेश हो। पुस्तकके अन्तमें छः परिशिष्ट हैं। इससे पुस्तककी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। इन परिशिष्टोंमें ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपिकी उत्पत्तिपर विचार किया गया है, पाली व्याकरणके साधारण नियम दिये गये हैं, अशोकका संक्षिप्त व्याकरण दिया गया है और अशोकके लेखोंकी भाषाके सम्बन्धमें विचार किया गया है।

पुस्तक विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंके लिये विशेष रूपसे उपयोगी है। आशा है हिन्दीसंसार भट्टजीकी पुस्तकका समुचित आदर कर उनके परिश्रमको सार्थक बनावेगा।

काशी विद्यापीठ
सौर २५ श्रावण, १९८०

नरेन्द्रदेव।

लेखकका वक्तव्य।

यह पुस्तक मेरे दो वर्षके परिश्रमका फल है। अशोकके संबन्धमें अंगरेजी, बंगला और हिन्दीमें अब तक जो कुछ खोज हुई है वह सब मैंने इस पुस्तकमें रखनेकी भरसक चेष्टा की है। इस पुस्तकका अधिकतर भाग मैंने सन् १९१९ और २० में लिख डाला था, पर मुझे स्वप्नमें भी यह आशा न थी कि यह कभी प्रकाशित होगी और न मुझे यही आशा थी कि हिन्दी भाषामें ऐसे रूखे विषयकी पुस्तकें कभी पसन्द की जायंगी। जब मैंने बाबू शिवप्रसादजी गुप्तको अपनी इस पुस्तकका कुछ भाग दिखलाया तो उन्होंने इसे बड़ा पसन्द किया और इसे अपने ज्ञानमण्डलके द्वारा प्रकाशित करनेकी इच्छा प्रगट की। अस्तु, जब सन् १९२१ में बाबू शिवप्रसादजी गुप्तके बुलानेसे मैं ज्ञानमण्डलमें आया तो उन्होंने मुझे इस पुस्तकको समाप्त कर प्रेसमें देनेकी आज्ञा दी। मैंने दो तीन महीनेमें इस पुस्तकको समाप्त कर सितम्बर १९२१ के लगभग इसे ज्ञानमण्डल प्रेसमें छपनेके लिये दे दिया। पर प्रेसकी अनेक बाधाओंके कारण साल भरसे अधिक समय इस पुस्तकके छपनेमें लगा। अस्तु, राम राम करके अब यह समय आया कि मैं यह पुस्तक हिन्दी भाषा और प्राचीन भारतीय इतिहासके प्रेमियोंको भेंट करनेमें समर्थ हुआ हूँ।

इस पुस्तकके लिखनेमें मुझे काशी-विद्यापीठके प्रिन्सिपल श्रीयुत नरेन्द्रदेव जी एम० ए० से बहुत सहायता प्राप्त हुई है। इसके लिये मैं उनका हृदयसे कृतज्ञ हूं।

अपने इस वक्तव्यमें मैं विशेष कुछ लिखनेकी आवश्यकता

नहीं समझता । इस ग्रन्थमें क्या गुण और क्या त्रुटियां हैं, यह विज्ञ पाठक निश्चय करेंगे । यदि इस विषयके विज्ञ समालोचक मुझे अपनी समालोचनासे उचित सम्मति प्रदान करेंगे और इसकी त्रुटियोंकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित करेंगे तो अगले संस्करणमें उन त्रुटियोंके दूर करनेका भरपूर यत्न किया जायगा ।

इस पुस्तकको प्रेसमें देनेके बाद मेरा सम्बन्ध ज्ञानमण्डलसे छूट गया । इस कारण मैं इस पुस्तकको स्वयं अपनी देख-रेखमें न छपा सका । संभव है प्रूफ़ इत्यादिके देखनेमें अनेक अशुद्धियां रह गयी हों, उनके लिये विचारशील और दयालु पाठक मुझे क्षमा करेंगे ।

चिड़ावा
राजपुताना

विनीत
जनार्दन भट्ट

विषय-सूची ।

अशोकके धर्म-लेख ।

प्रथम खण्ड ।

अशोकका इतिहास।

C. M. V. Sharma Nalagonda

प्रथम अध्याय।

अशोकके पूर्वज।

मोटे तौरपर विक्रमीय संवत्‌के पूर्व छठवीं शताब्दीसे भारतवर्षका प्राचीन इतिहास प्रामाणिक आधारोंपर स्थित मिलता है। हिन्दू, जैन तथा बौद्ध इन तीनों धर्मोंके धार्मिक ग्रन्थ इस बात पर प्रायः सहमत हैं कि संवत् कालके पूर्व छठवीं शताब्दीसे लगाकर प्राचीन भारतवर्षकी राजनीतिक दशा कैसी थी और किन किन राजवंशोंने उस समयसे लेकर भारतवर्षपर राज्य किया। वि० पू० छठवीं शताब्दीसे लगाकर कई शताब्दियों तक मगध (विहार) इन तीनों धर्मोंका केन्द्र रहा और यहीं अशोकके पूर्वजोंने भी अपने राज्यकी जड़ जमायी।

पुराणोंमें दी हुई राजवंशावलियोंमें शैशुनागवंश पहला राजवंश है जिसके बारेमें ऐतिहासिक प्रमाण काफ़ी तौर पर मिलते हैं और जिसका समय यदि पूरी तरह नहीं तो मोटे तौर पर अवश्य निश्चित हो गया है। इस वंशका नाम शैशुनाग वंश इस लिए पड़ा कि इसका पहला राजा तथा संस्थापक शिशुनाग था, जिसने ईसाके पूर्व ६४२ * वर्ष अर्थात्

* विंसेन्ट स्मिथ साहेबका भी यही मत है (Oxford History of India P. 45)

विक्रमीय संवत्के पूर्व ५८५ के लगभग इस वंशकी नींव डाली। उसने ४० वर्षों तक राज्य किया। वह एक छोटे से राज्यका राजा था। आजकलका पटना और गया ज़िला दोनों इस राज्यमें शामिल थे। गयाके पास प्राचीन राजगृह उसकी राजधानी थी।

इस वंशका पांचवां राजा विम्बिसार था। वह पहला राजा है जिसके विषयमें कुछ विशेष ऐतिहासिक वृत्तान्त मालूम हुआ है। उसने एक नवीन राजगृह की नींव डाली। अंग देश को भी जीत कर उसने अपने राज्यमें मिला लिया। आजकल-के भागलपुर और मुंगेर ज़िलोंको प्राचीन अंगदेश समझना चाहिए। मगध राज्यकी उन्नति और आधिपत्यका सूत्रपात इसी अंगदेशकी जीतसे हुआ, अतएव विम्बिसार यदि मगध साम्राज्यका सच्चा संस्थापक कहा जाय तो अनुचित नहीं। उसने कोशल तथा वैशालीके दो पड़ोसी तथा महाशक्तिशाली राज्योंकी एक एक राजकुमारीसे विवाह करके अपनी शक्ति तथा प्रतिष्ठा और भी बढ़ायी। आजकलके अयोध्या और मुजफ़्फ़रपुरके ज़िले क्रमसे प्राचीन कोशल तथा वैशाली थे। विम्बिसारका राज्यकाल विक्रमीय संवत्के पूर्व लगभग ५२५ से लेकर ४६७ तक माना गया है। कहा जाता है कि विम्बिसार अन्तिम समयमें राज्यकी बागडोर अपने पुत्र अजातशत्रु * अथवा कूनिकके हाथमें देकर एकान्त-वास करने लगा, किन्तु अजातशत्रुको इतना धैर्य कहां कि वह महाराजा बननेके लिए

* श्रीयुत बा० काशीप्रसाद जायसवालने अजातशत्रुकी मूर्त्तिका पता लगाया है जो मथुराके अजायबघरमें खड़ी हुई है (देखिये Journal of the Behar and Orissa Research Society, Vol VI, Part II. P. 173-204)

बिम्बिसारकी मृत्युकी प्रतीक्षा करे। बौद्ध ग्रंथोंके अनुसार इस राजकुमारने अपने पिताको भूखों मार डाला। इस प्रकार वह पितृ-हत्याके पापकी बदौलत विक्रमीय संवत्के पूर्व ४६७ के लगभग गद्दी पर बैठा। बौद्ध ग्रंथोंसे यह भी पता लगता है कि जब वह गद्दी पर आया तब बुद्ध भगवान् जीवित थे और इस राजासे एक बार मिले भी थे। लिखा है कि अजातशत्रुने बुद्ध भगवान्के सामने अपने पापोंके लिए बहुत ही पश्चात्ताप किया और बौद्ध धर्मकी दीक्षा बुद्ध भगवानसे ग्रहण की। कोशल देशके राजाके साथ अजातशत्रुका युद्ध हुआ। जान पड़ता है कि इस युद्धमें अजातशत्रुकी जीत रही और कोशल देशपर मगधका सिक्का जम गया। अकेले कोशल ही को दबा कर अजातशत्रु संतुष्ट न हुआ; उसने तिरहुत पर भी बड़ा भारी आक्रमण किया। इस आक्रमणका फल यह हुआ कि वह तिरहुतको अपने राज्यमें मिलाकर गंगा और हिमालयके बीच वाले प्रदेशका सम्राट् बन गया। उसने सोन और गंगा नदियोंके संगम पर पाटलिग्रामके समीप एक किला भी बनवाया। इसी किलेके आस पास अजातशत्रुके पोते उदयनने एक नगरकी नींव डाली जो इतिहासमें कुसुमपुर, पुष्पपुर अथवा पाटलिपुत्रके नामोंसे प्रसिद्ध है। बढ़ते २ यह नगर न केवल मगध हीकी किन्तु समस्त भारतकी राजधानी बन गया। इस बातके पुष्ट प्रमाण मिलते हैं कि भगवान् बुद्धका निर्वाण उसीके राज्यकालमें हुआ।

विक्रमीय संवत्के पूर्व ४७० वर्षके लगभग अजातशत्रुके पापमय जीवनका अंत होने पर पुराणोंके अनुसार उसके पुत्र दर्शकने राज्य किया। दर्शकके बाद उदय अथवा उदयिन् विक्रमीय संवत्के पूर्व ४४६ के लगभग राजगद्दी पर बैठा। इसके

विषयमें कहा जाता है कि इसने पाटलिपुत्र अथवा कुसुमपुर नामक नगर बसाया। उदयिनके बाद नंदिवर्द्धन* और महानन्दिन हुए जिनके केवल नाम मात्र पुराणोंमें मिलते हैं। महानन्दिन शैशुनाग वंशका अन्तिम राजा था। उसकी एक शूद्रा रानीसे महापद्मनन्द नामका पुत्र हुआ जो मगध राज्यको बलपूर्वक छीन कर आप राजा बन बैठा। उसने ईसाके पूर्व ४१३ अथवा विक्रमीय संवत्के पूर्व ३५६ के लगभग नन्दवंशकी स्थापना की।

महापद्मनन्द बड़ा प्रसिद्ध और प्रतापशाली राजा हुआ, किन्तु साथ ही बड़ा निर्दयी और लोभी था। इन अवगुणों के कारण तथा शूद्र जातिकी स्त्रीसे उत्पन्न होनेके कारण, मालूम पड़ता है, ब्राह्मण इसके कट्टर शत्रु हो गये। जब सिकन्दरने एशियाके अन्य देशोंको जीत कर भारतवर्ष पर चढ़ाई की तब ४ हज़ार हाथी, २० हज़ार सवार और २ लाख पैदल सेना लेकर महापद्मनन्दने उसके विरुद्ध प्रयाण किया। किन्तु, सिकन्दर पंजाबसे आगे न बढ़ा; इस कारण महापद्मनन्दसे उसकी मुठभेड़ नहीं हुई। महापद्मनन्दकी एक रानीसे आठ पुत्र हुए जो पिताको मिला कर नवनन्दके नामसे विख्यात हैं। ऐसी दन्त-कथा प्रचलित है कि उसकी मुरा नामकी एक दासीसे चन्द्रगुप्त नामक एक पुत्र और हुआ जो मौर्यके नामसे अधिक प्रसिद्ध है, किन्तु यह बात किसी पुराण में नहीं मिलती कि नन्दवंशके साथ चन्द्रगुप्त मौर्यका कोई पारि-

---

* श्रीयुत बाबू काशीप्रसाद जायसवालने उदयिन् तथा नन्दिवर्द्धनकी मूर्तियोंका पता लगाया है जो कलकत्तेके अजायबघरमें रक्खी हुई हैं (देखिये Journal of the Behar & Orissa Reseanh. Society Vol V. part I. P. 88-106)

वारिक संबन्ध था। पुराणोंमें केवल यह लिखा मिलता हैः—"ततश्च नव चैतान्नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणस्समुद्धरिष्यति तेषामभावे मौर्याः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति । कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तं राज्येऽभिषेक्ष्यति" अर्थात् "तब कौटिल्य नामका एक ब्राह्मण नवों नन्दोंका समूल नाश करेगा। उनके अभावमें मौर्य नामके राजा पृथ्वी पर राज्य करेंगे। वही कौटिल्य नामका ब्राह्मण चन्द्रगुप्तको राजगद्दी पर बिठावेगा"। केवल विष्णुपुराणकी टीकामें इतना और अधिक लिखा हुआ हैः—"चन्द्रगुप्तं नन्दस्यैव शूद्रायां मुरायां जातं मौर्याणां प्रथमम्।" अर्थात् "चन्द्रगुप्तका नाम मौर्य इस लिए पड़ा कि वह नन्द राजाकी मुरा नामक शूद्रा दासीसे उत्पन्न हुआ था"। मुद्राराक्षस नाटकसे इतना और पता लगता है कि चन्द्रगुप्त नन्दके वंशका था किन्तु उसमें यह कहीं भी नहीं लिखा मिलता कि वह नन्दका पुत्र था।

पुराण, वृहत्कथा, मुद्राराक्षस तथा ग्रीक इतिहास-लेखकोंके भारतवर्ष विषयक लेखोंका ऐतिहासिक अन्वेषण करनेसे निम्नलिखित बातें प्रायः निश्चित रूपसे कही जा सकती हैंः—(१) नन्दवंशके राजा नीच कुलके थे; उनकी उत्पत्ति क्षत्रिय और शूद्र जातिके मेलसे थी (२) चन्द्रगुप्त मौर्य नन्दवंशका असली उत्तराधिकारी न था, किन्तु एक शूद्रा स्त्रीसे उत्पन्न था (३) जब सिकन्दरने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी तब चन्द्रगुप्त मगध देशके राजासे देश-निष्कासित किये जाने पर पंजाबमें सिकन्दरसे मिला था; मगध देशके राजाकी निन्दा करके उसने सिकन्दरको मगध-पर चढ़ाई करनेके लिए उत्साहित किया, किन्तु सिपाहियोंके आगे बढ़नेसे इनकार करने पर सिकन्दर पंजाबहीसे लौट गया (४) ईसवी सन्के पूर्व ३२३ अर्थात् विक्रमीय संवत्के

पूर्व २६६ में सिकन्दरकी मृत्यु होने पर चन्द्रगुप्तने हिन्दुओंको संगठित करके उन यूनानियोंके विरुद्ध बलवा किया जिन्हें सिकन्दर पश्चिमोत्तर प्रान्त तथा पंजाब पर ग्रीक-शासन स्थिर रखनेके लिये छोड़ गया था; इस बलवेका एकमात्र नेता चन्द्रगुप्त मौर्य था (५) बलवा करनेके बाद अपने मन्त्री चाणक्य-की सहायतासे नन्दवंशके अन्तिम राजाको मार कर चन्द्रगुप्त ईसवी सन्‌के पूर्व ३२२* अथवा विक्रमीय संवत्‌के पूर्व २६५ के लगभग मगध राज्यके सिंहासनपर बैठा (६) उस समय मगध राज्य बहुत विस्तृत था; उसमें कोशल (अयोध्या,) काशी अंगदेश (पश्चिमीय बंगाल) तथा मगध (बिहार) ये सब देश शामिल थे (७) चन्द्रगुप्त पर कुलूत (कूलू) मलय, काश्मीर, सिन्धु और पारस इन पाँच देशोंके राजाओंने मिल कर हमला किया जिसका निवारण उसने अपने मन्त्री तथा सहायक चाणक्यकी सहायतासे किया† (८) विदेशी यूना-

---

* जैन ग्रन्थोंके आधार पर श्रीयुत काशी प्रसाद जायसवाल एम० ए० का मत है कि चन्द्रगुप्तका राज्यकाल कदाचित् ईसवी सन्‌के पूर्व ३२५ तदनुसार विक्रमीय संवत्‌के पूर्व २६८से प्रारम्भ हुआ (Journal and Proceeding, Asiatic society of Bengal,1913,pp. 317-23)

† मुद्राराक्षस, प्रथम अङ्क, श्लोक २० यथाः—

चाणक्यः—उपलब्धवानस्मि प्रणिधिभ्यो यथा तस्य म्लेच्छराजलोकस्य मध्यात् प्रधानतया पञ्च राजानः परया सुहृत्तया राक्षसमनुवर्त्तन्ते । ते यथा—

कौलूतश्चित्रवर्मा मलयनरपतिः सिंहनादो नृसिंहः ।
काश्मीरः पुष्कराक्षः क्षतरिपुमहिमा सैन्धवः सिन्धुषेणः ॥
मेघाख्यः पंचमोऽस्मिन्पृथुतुरगबलः पारसीकाधिराजो ।
नामान्येषां लिखामि ध्रुवमहमधुना चन्द्रगुप्तः प्रमार्ष्टु ॥

नियोंके विरुद्ध बलवा करके उसने न केवल उत्तरी पंजाबको यूनानियोंकी पराधीनतासे स्वतन्त्र कर दिया बल्कि वह समस्त भारतवर्षका एकच्छत्र सम्राट् बन गया ।

द्वितीय अध्याय।

चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार।

सिकन्दरकी मृत्युके बाद चन्द्रगुप्तने अपने देशको विदेशी यूनानियोंकी पराधीनतासे छुड़ा दिया। इसके उपरान्त चन्द्रगुप्त जिस समय अपने साम्राज्यके संगठनमें लगा हुआ था उसी समय उसका एक प्रतिद्वन्द्वी पश्चिमी और मध्य एशिया-में अपने साम्राज्यकी नींव डालनेका यत्न कर रहा था और सिकन्दरके जीते हुए भारतीय प्रदेशोंको फिरसे अपने अधिकार में लानेकी तैयारीमें था। सिकन्दरकी मत्युके बाद उसके सेनापतियोंमें राज्याधिकारके लिए युद्ध हुआ। इस युद्धमें एशियाके आधिपत्यके लिए ऐन्टिगोनस और सेल्यूकस नामके दो सेनापति एक दूसरेका विरोध कर रहे थे। पहिले तो ऐन्टिगोनसने सेल्यूकसको हरा कर भगा दिया, पर विक्रमीय संवत् के पूर्व २५५ में सेल्यूकसने वेबीलोनको फिरसे अपने अधिकारमें कर लिया और ८ वर्षके बाद पश्चिमी तथा मध्य एशियाका अधिपति हो गया। उसके साम्राज्यके पश्चिमी प्रान्त भारतवर्षकी सीमा तक फैले हुए थे। इस कारण स्वाभाविक तौर पर वह सिकन्दरके जीते हुए भारतीय प्रदेशों-को फिरसे अपने अधिकारमें लाना चाहता था। इस उद्देशसे उसने विक्रमीय संवत्के पूर्व २४८ में या उसके लग-भग सिन्धु नदीको पार करके सिकन्दरके धावेका अनुकरण करनेका उद्योग किया।

जब युद्धभूमिमें दोनो सेनाओंका सामना हुआ तो चन्द्रगुप्तकी सेनाके मुकाबिलेमें सेल्यूकसकी सेना न ठहर सकी और सेल्यूकसको लाचार हो कर पीछे हटना पड़ा तथा चन्द्रगुप्त

के साथ उसीकी शर्तोंके मुताबिक सन्धि कर लेनी पड़ी। उलटे उसे लेनेके देने पड़ गये। भारतवर्षकी विजय करना तो दूर रहा उसे सिन्धु नदीके पश्चिममें एरिआना [आर्याना]* का बहुतसा हिस्सा चन्द्रगुप्तके सुपुर्द कर देना पड़ा। पांच सौ हाथियोंके बदलेमें चन्द्रगुप्तको सेल्यूकससे पेरोपेनीसेडी, एरिया और एरोचोज़िया नामके तीन प्रान्त मिले जिनकी राजधानी क्रमसे आजकलके काबुल, हिरात और कन्धार नामके तीन शहर हैं। इस सन्धिको दृढ़ करनेके लिए सेल्यूकसने अपनी कन्या चन्द्रगुप्तको दी। यह सन्धि विक्रमीय संवत्के पूर्व २४६ में हुई। इस प्रकार हिन्दूकुश पहाड़ तक उत्तरी भारत चन्द्रगुप्त-के हाथमें आ गया। उन दिनों हिन्दूकुश पहाड़ भारतवर्षकी पश्चिमोत्तर सीमा थी। मुग़ल बादशाहोंका राज्य भी हिन्दूकुश तक कभी नहीं फैला हुआ था।

सन्धि हो जानेके बाद सेल्यूकसने चन्द्रगुप्तके दरबारमें अपना एक राजदूत भेजा। इस राजदूतका नाम मेगास्थनीज़ था। मेगास्थनीज़ मौर्य साम्राज्यकी राजधानी पाटलिपुत्रमें बहुत दिनों तक रहा और वहां रह कर उसने भारतवर्षका विवरण लिखा। इस विवरणमें उसने वहांके भूगोल, पैदावार, रीति-रिवाज इत्यादिका बहुतसा हाल दिया है। उसने चन्द्रगुप्तके शासन और सैनिक प्रबन्धका भी बड़ा सजीव वर्णन लिखा है जिससे चन्द्रगुप्त और अशोकके समयका बहुत सा सच्चा इतिहास मालूम हो जाता है।

---

* "एरिआना" आर्यस्थानका अपभ्रंश मालूम पड़ता है। सिन्धु नदीके पश्चिमका एक बड़ा भाग "एरिआना" के नामसे प्रसिद्ध था। आजकल भी "एरिआना" के तर्ज़ पर "अहिराना" (अहीरोंकी बस्ती) इत्यादि नाम सुनायी पड़ते हैं।

चन्द्रगुप्तकी राजधानी अर्थात् पाटलिपुत्र नगर सोन और गंगा नदियोंके संगमपर बसा हुआ था। आजकल इसके स्थानपर पटना और बांकीपुर नामके शहर बसे हुए हैं। प्राचीन पाटलिपुत्र भी आजकलकी तरह लम्बा बसा हुआ था। उसकी लम्बाई उन दिनों ९ मील और चौड़ाई १½ मील थी। उसके चारों ओर काठकी बनी हुई एक दीवार थी, जिसमें ६४ फाटक और ५७० बुर्ज थे। दीवारके चारों ओर एक गहरी परिखा या खाई थी जिसमें सोन नदीका पानी भरा रहता था। राजधानीमें चन्द्रगुप्तके महल अधिकतर काठके बने हुए थे, पर तड़क भड़क और शान शौकतमें वे फ़ारसके राजाओंके महलोंसे भी बढ़ कर थे।

चन्द्रगुप्तका दरबार बहुमूल्य वस्तुओंसे सुसज्जित था। वहां रक्खे हुए सोने चांदीके बर्तन और खिलौने, जड़ाऊ मेज और कुर्सियां तथा कीनख़ाबके कपड़े देखने वालोंकी आखों-में चकाचौंध डालते थे। जब कभी कभी चन्द्रगुप्त बड़े बड़े अवसरों पर राजमहलके बाहर निकलता था तो वह सोनेकी पालकी पर चढ़ता था। उसकी पालकी मोतीकी मालाओं-से सजी रहती थी। जब उसे थोड़ी ही दूर जाना होता था तो वह घोड़े पर चढ़कर जाता था पर लंबे सफ़रमें वह सुनहरी झूलोंसे सजे हुए हाथी पर चढ़ता था। जिस तरह आजकल बहुत से राजाओं और नवाबोंके दरबारमें मुर्गी, बटेर, मेढ़े और सांड़ वगैरहकी लड़ाईमें दिलचस्पी ली जाती है, उसी तरह चन्द्रगुप्त भी जानवरोंकी लड़ाईसे अपना मनोरंजन करता था। पहलवानोंके दंगल भी उसके दरबारमें होते थे। जिस तरह आजकल घोड़ोंकी दौड़ होती है और उसमें हज़ारोंकी बाज़ी लग जाती है उसी तरह चन्द्रगुप्तके समयमें भी बैल

दौड़ाये जाते थे और वह उस दौडको बड़ी रुचिसे देखता था। आजकलकी तरह उस समय भी लोग दौड़में बाज़ी लगाते थे। दौड़नेकी जगह ६ हज़ार गज़के घेरेमें रहती थी और एक घोड़ा तथा उसके इधर उधर दो बैल एक एक रथको लेकर दौड़ते थे। चन्द्रगुप्तको शिकारका भी बड़ा शौक़ था। जानवर एक घिरी हुई जगहमें छोड दिया जाता था। वहां एक चबूतरा बना रहता था जिस पर खड़ा होकर चन्द्रगुप्त शिकारको तीरसे मारता था। अगर शिकार खुली जगहमें होता था तो चन्द्रगुप्त हाथी पर सवार होकर शिकार करता था। शिकार करनेके वक्त अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित स्त्रियाँ उसकी रक्षा किया करती थीं। ये स्त्रियाँ विदेशोंसे ख़रीद कर लायी जाती थीं। प्राचीन राजाओंके दरबारमें इस तरहकी स्त्री-रक्षिकायें रहा करती थीं। मुद्रा-राक्षस और कौटिलीय अर्थशास्त्रमें भी स्त्री-रक्षिकाओंका वर्णन मिलता है। अर्थशास्त्रमें लिखा है कि "शयनादुत्थितस्स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत।" अर्थात् पलंगसे उठनेके बाद धनुर्बाणसे सुसज्जित स्त्रियाँ राजाकी सेवामें उपस्थित हों (अर्थशास्त्र अधि० १ अध्या० २१) जिस सड़कसे महाराजका जलूस निकलता था उसके दोनों ओर रस्सियाँ लगी रहती थीं और उन रस्सियों के पार जानेवालेको मौतकी सज़ा दी जाती थी। बादको चन्द्रगुप्तके पोते अशोकने शिकार खेलनेकी प्रथा बिलकुल ही उठा दी।

चन्द्रगुप्त विशेष करके महलके अन्दर ही रहता था और बाहर सिर्फ़ मुक़दमा करने, यज्ञमें भाग लेने या शिकारको जानेके लिए निकलता था। उसे कमसे कम दिनमें एक बार प्रार्थना-पत्र ग्रहण करने और मुक़द्दमोंको तय करनेके

लिए बाहर अवश्य आना पड़ता था। चन्द्रगुप्तको मालिस करवानेका भी बड़ा शौक़ था। जिस समय वह लोगोंके सामने दरबारमें बैठता था उस समय चार सेवक उसकी मालिश किया करते थे। मृच्छकटिक नामक नाटकमें भी सम्वाहक नामक एक पात्रका नाम आता है जो राजाकी मालिश किया करता था। राजाकी वर्ष-गाँठके दिन बड़ी धूम धाम मनायी जाती थी और बड़े बड़े लोग चन्द्रगुप्तको बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट करते थे। पर इतनी अधिक सावधानता और रक्षा होते हुए भी चन्द्रगुप्तको अपनी जानका भय लगा रहता था। वह डरके मारे दिनको या लगातार दो रात तक एक ही कमरेमें कभी नहीं सोता था। मुद्राराक्षसमें भी लिखा है कि चाणक्यने चन्द्रगुप्तको मारनेकी कई बन्दिशोंका पता लगाकर उसकी जान बचायी।

चन्द्रगुप्त जिस समय राजगद्दी पर बैठा उस समय उसकी आयु बहुत अधिक न थी। उसने केवल २४ वर्षोंतक राज्य किया, इससे मालूम पड़ता है कि वह अपनी मृत्युके समय ५० वर्षसे कमका रहा होगा। इस थोड़े समयमें उसने बड़े बड़े काम किये। उसने सिकन्दरकी ग्रीक-सेनाओंको भारत-वर्षसे निकाल बाहर किया, सेल्युकसको गहरी हार दी, एक समुद्रसे लगाकर दूसरे समुद्र तक कुल उत्तरी हिन्दुस्तानको अपने अधिकारमें किया, बड़ी भारी सेना संगठित की और बड़े भारी साम्राज्यका शासन अपने बुद्धि-बलसे किया। चन्द्रगुप्तकी राज्य-शक्ति इतनी दृढ़ताके साथ स्थापित थी कि वह उसके पुत्र बिन्दुसार और पौत्र अशोकके हाथमें बेखटके चली गयी। ग्रीक राज्योंके शासक उसकी मित्रताके लिए लालायित रहते थे। सेल्यूकसके बाद फिर किसी ग्रीक राजाने

भारतवर्ष पर चढ़ाई करनेका साहस न किया और चन्द्रगुप्तके बाद दो पीढ़ियों तक ग्रीक राजाओंका राजनीतिक और व्यापारिक संबंध भारतवर्षके साथ बना रहा।

कुछ लेखकोंका विचार है कि मौर्य साम्राज्य पर सिकन्दरके आक्रमणका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा, पर यह ठीक नहीं है। सिकन्दर केवल उन्नीस महीने भारतवर्ष में रहा। ये उन्नीस महीने सिर्फ़ लड़ाई झगड़े और भयानक मारकाटमें बीते। भारतवर्षमें अपना साम्राज्य खड़ा करनेका जो कुछ विचार उसका रहा हो वह उसकी मृत्युके बाद बिलकुल निष्फल हो गया। चन्द्रगुप्तको सिकन्दरके उदाहरणकी आवश्यकता न थी। उसकी और उसके देशवासियोंकी आँखोंके सामने दो शताब्दियों तक फ़ारसके साम्राज्यका उदाहरण था। यदि चन्द्रगुप्तने किसी विदेशी उदाहरणका अनुकरण किया भी तो केवल फ़ारसके साम्राज्यका। चन्द्रगुप्तके दरबार और उसकी राज्य-प्रणालीमें जो थोड़ा बहुत विदेशी प्रभाव पाया जाता है वह यूनानका नहीं बल्कि फ़ारसका है। ईसाके बाद चौथी शताब्दीके अन्त तक भारतवर्षके प्रान्तीय शासक क्षत्रपके नामसे पुकारे जाते थे। यही क्षत्रप शब्द फ़ारस देशके प्रांतीय शासकोंके लिए भी व्यवहृत होता था। चन्द्रगुप्तकी सैनिक-व्यवस्थामें भी यूनानके प्रभावका कोई चिन्ह नहीं मिलता। चन्द्रगुप्तने अपनी सेनाका संगठन भारतवर्षके प्राचीन आदर्शके अनुसार किया था। भारतवर्षके राजा महाराजा हाथियोंकी सेनाको और उससे उतर कर रथ और पैदल सेनाको अधिक महत्व देते थे। सवार सेना बहुत थोड़ी रहती थी और वह ऐसी अच्छी भी न होती थी। पर सिकन्दर हाथियों या रथोंसे

बिलकुल काम न लेता था और अधिकतर अपनी सवार सेनाके भरोसे पर रहता था। इससे सिद्ध होता है कि अपनी सेनाका संगठन करनेमें भी चन्द्रगुप्तने सिकन्दरका अनुकरण नहीं किया।

जैन धर्मकी दन्तकथाओंसे पता लगता है कि चन्द्रगुप्त जैन धर्मका अनुयायी था और जब १२ वर्ष तक बड़ा भारी अकाल पड़ा तो वह राजगद्दी छोड़ कर दक्खिन में चला गया और मैसूरमें श्रवण वेलगोला नामक स्थान पर जैन भिक्षुकी तरह रहने लगा। अन्तमें वहां उसने उपवास करके प्राणत्याग किया। अब तक वहां उसका नाम याद किया जाता है। यह दन्तकथा कहां तक सच है, निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। संभव है कि उसने राजगद्दीसे उतर कर अन्तमें जैन धर्म ग्रहण किया हो और फिर भिक्षुककी तरह जीवन व्यतीत करने लगा हो।

जब विक्रमीय संवत्के पूर्व २४१ में चन्द्रगुप्त राजगद्दीसे उतरा (या दूसरे मतके अनुसार उसका परलोक वास हुआ) तो उसका पुत्र विन्दुसार गद्दी पर बैठा, पर ग्रीक-लेखकोंने चन्द्रगुप्तके उत्तराधिकारीके नाम कुछ ऐसे शब्दोंमें लिखे हैं जो अमित्रघातके अपभ्रंश मालूम पड़ते हैं। भारतवर्ष और ग्रीक-राज्योंके बीचमें जो सम्बन्ध चन्द्रगुप्त और सेल्युकसके समयमें प्रारम्भ हुआ था वह विन्दुसारके राज्यकालमें भी बना रहा। उसके दरबारमें मेगास्थनीज़का स्थान डेईमेकस नामक राजदूतने लिया। इस राजदूतने भी मेगास्थनीज़की तरह भारतवर्षका निरीक्षण करके बहुत सा हाल लिखा था, पर अभाग्यवश उसका लिखा हुआ बहुत थोड़ा हाल अब मिलता है। जब विक्रमीय संवत्के पूर्व २२३ में सेल्यूकस मारा गया तो उसका स्थान ऐन्टिओकस

सोटरने लिया जिसने भारतवर्षके सम्बन्धमें अपने पिताकी नीति यथावत् अनुसरण की। ऐन्टिओकस और विन्दुसारके बीचमें जो लिखा पढ़ी हुई उससे पता लगता है कि भारतवर्ष और पश्चिमी एशियाके बीच बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध था। विन्दुसारने ऐन्टिओकसको एक पत्र भेजकर यह लिखा था कि "कृपा कर मुझे थोड़ी सी अंजीर और अंगूरकी शराब तथा एक यूनानी अध्यापक खरीद कर भेज दीजिये"। ऐन्टिओकसने उत्तरमें लिखा कि "मुझे अंजीर और अंगूरकी शराब भेजते हुए बड़ी प्रसन्नता है, पर खेद है कि मैं आपकी सेवामें कोई अध्यापक नहीं भेज सकता, क्योंकि यूनानी लोग अध्यापकका बेचना अनुचित समझते हैं।"

मिश्रके टालेमी फ़िलाडेल्फ़स नामक राजाने भी, जो विक्रमीय संवत्के पूर्व २२८से लगाकर २३० तक गद्दी पर था, डायोनीसियस नामक राजदूतको भारतीय सम्राट्के दरबारमें भेजा। डायोनीसियसने भी अपने अनुभवोंका वर्णन लिखा था, जो ईसवी सन्की पहिली शताब्दीमें क्लाइनीको मालूम था। यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि डायोनीसियस विन्दुसारके दरबारमें था अथवा उसके उत्तराधिकारी अशोकके दरबारमें।

विन्दुसारके राज्यशासनका कुछ भी हाल नहीं मिलता। उसके समयका कोई स्मारक या लेख भी नहीं प्राप्त है। सम्भव है उसने चन्द्रगुप्तकी तरह भारतवर्षकी सीमाके भीतर ही अपने राज्यको बढ़ानेकी नीति जारी रक्खी हो। विन्दुसारके पुत्र अर्थात् अशोकके साम्राज्यकी सीमा हम लोगोंको ठीक ठीक उसके शिलालेखों और स्तम्भलेखोंसे विदित है। यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि दक्खिनमें संरक्षित राज्यों और अर्द्धस्वतंत्र राज्योंको मिला कर

उसका साम्राज्य नीलौर तक फैला हुआ था। नर्वदाके दक्खिनका प्रदेश अशोकका विजय किया हुआ नहीं हो सकता, क्योंकि उसके शिलालेखोंसे पता लगता है कि उसने बंगालकी खाड़ीके किनारे पर केवल कलिंग देशको जीत कर अपने राज्यमें मिलाया था। यदि अशोकने दक्खिनी प्रदेशको अपने राज्यकालके प्रारम्भमें ही जीता हो तो दूसरी बात है। पर इसके बारेमें कोई प्रमाण नहीं मिलता। चन्द्रगुप्तके राज्यकालके २४ वर्ष ऐसी बड़ी २ घटनाओंसे भरे हुए थे कि कदाचित् दक्खिनी प्रदेश जीतनेका समय उसे न मिला होगा। २४ वर्षके भीतर उसने ग्रीक सेनाओंको निकाल बाहर किया, सेल्यूकसके आक्रमणका मुकाबिला किया, पाटलिपुत्रमें राज्य परिवर्त्तन करके मौर्यवंशकी स्थापना की, एरिआनाके एक बड़े हिस्सेको अपने राज्यमें मिलाया और बंगालकी खाड़ीसे लगा कर अरब-सागर तक अपने साम्राज्यका विस्तार किया। इस लिए नीलौर तक दक्खिनी प्रदेश या तो चन्द्र गुप्तने या विन्दुसारने जीता होगा, क्योंकि अशोकने इस प्रदेशको अपने पितासे प्राप्त किया था। अधिकतर संभव यही मालूम पड़ता है कि दक्खिनी प्रदेशकी विजय चन्द्रगुप्तने नहीं बल्कि विन्दुसार हीने की। पर चन्द्रगुप्तकी जीवनी ऐसी ऐसी विचित्र घटनाओंसे भरी हुई है और उन घटनाओंसे उसकी ऐसी असामान्य शक्ति और सामर्थ्यका पता लगता है कि यदि उसीके बड़े बड़े कार्योंकी सूचीमें दक्खिनकी विजय भी जोड़ दी जाय तो अनुचित नहीं। बस विन्दुसारके बारेमें इससे अधिक कुछ हाल नहीं मालूम पडता। अब आगे चल कर अशोकका इतिहास पाठकोंके सामने रक्खा जायगा जो न केवल भारतवर्षके बल्कि संसारके बड़े बड़े सम्राटोंमें गिना जाता है।

तृतीय अध्याय
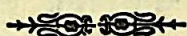
चन्द्रगुप्तकी शासन-पद्धति

मेगास्थनीज़ तथा कौटिलीय अर्थशास्त्रसे चन्द्रगुप्त मौर्यकी सैनिक व्यवस्था और शासन पद्धतिका जो पता लगता है वह संक्षेपमें नीचे दिया जाता है। इसीसे अशोककी शासन-व्यवस्थाका भी बहुत कुछ अनुमान हो सकता है।

सैनिक व्यवस्थाः—चन्द्रगुप्त मौर्यकी सेना प्राचीन प्रथाके अनुसार चतुरंगिणी थी, किन्तु उसमें जलसेनाकी एक विशेषता थी। चन्द्रगुप्तकी सेनामें हाथी ९०००, रथ ८०००, घोड़े ३०,०००, और पैदल सिपाही ६,००,००० थे। हर एक रथ पर सारथीके अलावा दो धनुर्धर और हर हाथी पर महावतको छोड़कर तीन धनुर्धर बैठते थे। इस तरह कुल सैनिकोंकी संख्या ६,००,००० पैदल, ३०,००० घुड़सवार ३६,००० गजारोही और २४,००० रथी अर्थात् कुल मिलाकर ६,९०,००० थी। इन सबोंको राजखजानेसे वेतन नियमित रूपसे मिला करता था।

सैनिक मण्डलः—सेनाका शासन एक मण्डलके अधीन था इस मण्डलमें ३० सभासद थे जो ६ विभागोंमें विभक्त थे। प्रत्येक विभागमें पांच सभासद होते थे। प्रथम विभाग जलसेना-पतिके सहयोगसे जलसैन्यका शासन करता था। द्वितीय विभागके अधिकारमें सैन्य सामग्री और रसद वगैरह रहता था। रणवाद्य बजाने वाले, साईस, घसियारे आदिका प्रबन्ध भी इसी विभागसे होता था। तृतीय विभाग पैदल सेनाका शासन करता था। चतुर्थ

विभाग के अधिकारमें सवार सेनाका प्रबन्ध था । पंचम विभाग रथसेनाकी देख भाल करता था और षष्ठ विभाग हस्ति-सैन्यका प्रबन्ध करता था। चतुरंगिणी सेना तो बहुत प्राचीन कालसे ही चली आ रही थी पर जल-सेना-विभाग और सैन्य-सामग्री-विभाग चन्द्रगुप्तकी प्रतिभाके परिणाम थे ।

सेनाकी भर्तीः—चाणक्यके अनुसार पैदल सेनाके सिपाही ६ प्रकार से भर्ती किये जाते थे यथाः—मौल जो बापदादोंके समयसे राजसेनामें भर्ती होते चले आये थे, भृत जो किराये पर लड़नेके लिये भर्ती किये जाते थे, श्रेणी जो सहयोगके सिद्धान्तों पर एक साथ रहने वाली कुछ योद्धा जातियोंमें से भर्ती किये जाते थे, मित्र जो मित्र देशोंमेंसे भर्ती किये जाते थे, अमित्र जो शत्रु देशोंमेंसे भर्ती किये जाते थे और अटवी जो जंगली जातियोंमें से भर्ती किये जाते थे ।*

सेनाके अस्त्र-शस्त्रः—कौटिलीय अर्थशास्त्रमें स्थिरयन्त्र (जो एक ही जगहसे चलाये जांय) चलयन्त्र (जो एक जगहसे दूसरी जगह फेंके जा सकें) हलमुख जिनका सिरा हल की तरह हो) धनुष, बाण, खंड, क्षुरकल्प (जो छूरेके समान हो) आदि अनेक अस्त्र शस्त्रोंके नाम मिलते हैं। इनके भी अलग अलग बहुतसे भेद थे ।†

दुर्ग या किलेः—चाणक्यके अनुसार उन दिनों दुर्ग कई प्रकारके होते थे और चारों दिशाओंमें बनाये जाते थे। निम्न लिखित प्रकारके दुर्गोंका पता चलता हैः—औदक जो द्वीप की तरह चारों ओर पानीसे घिरा रहता था, पार्वत जो पर्वत की चट्टानों पर बनाया जाता था, धान्वन जो रेगिस्तान या

* कौटिलीय "अर्थशास्त्र"— अधि० ६ अध्या० २
† कौटिलीय "अर्थशास्त्र"— अधि० २ अध्या०१८

महा ऊसर ज़मीनमें बनाया जाता था और वनदुर्ग जो जंगलोंमें बनाया जाता था। इनके अलावा बहुतसे छोटे छोटे किले गावोंके बीच बीच बनाये जाते थे। जो किला ८०० गावोंके केन्द्रमें बनाया जाता था उसे स्थानीय, जो किला ४०० गावोंके बीचोबीच बनाया जाता था उसे द्रोणमुख, जो किला २०० गावोंके मध्यमें बनाया जाता था उसे खार्वटिक और जो किला १० गांवोंके केन्द्रमें रहता था उसे संग्रहण कहते थे।*

नगर-शासक-मण्डलः—जिस प्रकार सेनाका शासन एक सैनिक मण्डलके अधीन था उसी प्रकार नगरका शासन भी एक दूसरे मण्डलके हाथमें था। यह मण्डल एक प्रकारसे आज कलकी म्युनिसिपेलिटीका काम करता था और सैनिक मण्डलकी तरह ६ विभागोंमें बटा हुआ था। इस मण्डलमें भी ३० सभासद थे और प्रत्येक विभाग ५ सभासदोंके अधीन था। इन विभागों का वर्णन मेगास्थनीज़ने निम्न लिखित प्रकारसे किया है।

प्रथम विभागका कर्तव्य शिल्पकलाओं, उद्योग धन्धों और कारीगरोंकी देखभाल करना था। यह विभाग कारीगरोंकी मज़दूरीकी दर भी निश्चित करता था। कारख़ानेवालोंके कच्चे मालकी देखभालभी इसी विभागका काम था। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था कि कहीं वे लोग घटिया या ख़राब सामान तो काममें नहीं लाते। कारीगर राज्यके विशेष सेवक समझे जातेथे। इस लिये जो कोई उनका अंगभंग करके उन्हें निकम्मा बनाता था उसे प्राणदण्ड दिया जाता था।

द्वितीय विभागका कर्तव्य विदेशियोंकी देख रेख करना था।

* कौटिलीय "अर्थशास्त्र" अधि० २, अध्या० १ और अध्या ३

मौर्यसाम्राज्यका विदेशी राज्योंसे बड़ा घनिष्ट संबन्ध था। अनेक विदेशी व्यापार अथवा भ्रमणके लिये इस देशमें आते थे। उनका इस विभागकी ओरसे उचित निरीक्षण किया जाता था और उनकी सामाजिक स्थितिके अनुसार ठहरनेके लिये उन्हें स्थान तथा नौकर चाकर दिये जाते थे। आवश्यकता पड़ने पर वैद्य लोग उनकी चिकित्सा करने के लिये नियुक्त रहते थे। मृत विदेशियोंका अन्तिम संस्कार उचित रूपसे किया जाता था। मरनेके बाद उनकी सम्पत्ति तथा रियासत आदिका प्रबन्ध इसी विभागकी ओरसे होता था और उसकी आय उनके उत्तराधिकारियोंके पास भेज दी जाती थी। यह विभाग इस बातका बड़ा अच्छा प्रमाण है कि विक्रम पूर्व तीसरी और चौथी शताब्दीमें मौर्य साम्राज्यका विदेशी राष्ट्रोंसे लगातार संबन्ध था और बहुतसे विदेशी व्यापार आदिके सम्बन्धसे भारतवर्षमें आते थे।

तृतीय विभागका कर्तव्य साम्राज्यके अन्दर जन्म और मृत्यु की संख्याका हिसाब ठीक ठीक नियमानुसार रखना था। जन्म और मृत्युकी संख्याका हिसाब इस लिये रक्खा जाता था कि जिसमें राज्यको इस बातका ठीक ठीक पता रहे कि साम्राज्य की आबादी कितनी बढ़ी या कितनी घटी। जन्म और मृत्युका लेखा रखनेसे प्रजासे कर वसूल करनेमें भी सहूलियत पड़ती थी। यह कर एक प्रकारका पोल टैक्स (Poll-tax) था जो हर एक मनुष्य पर लगाया जाता था। विदेशियोंको यह देख कर आश्चर्य होता है कि उस प्राचीन समयमें भी एक भारतीय शासकने अपने साम्राज्यकी जन-संख्या जाननेका कैसा अच्छा प्रबन्ध कर रक्खा था। इसके लिये एक अलग विभाग ही खुला हुआ था।

चतुर्थ विभागके अधीन वाणिज्य-व्यवसायका शासन था। विक्रीकी चीज़ोंकी दर नियत करना तथा सौदगरोंसे बटखरों और नापजोखोंका यथोचित उपयोग कराना इस विभागका काम था। इस विभागके अधिकारी बड़ी सावधानीसे इस बातका निरीक्षण करते थे कि बनिये तथा व्यापारी राजमुद्रांकित बटखरों और मापोंका प्रयोग करते हैं या नहीं। प्रत्येक व्यापारीको व्यापार करनेके लिये राज्यसे लाइसन्स या परवाना लेना पड़ता था और इसके लिये उसे एक प्रकारका कर भी देना पड़ता था। एकसे अधिक प्रकारका व्यापार करनेके लिये व्यापारीको दूना कर देना पड़ता था।

पंचम विभाग कारखानों और उनमें बनी हुई चीज़ोंकी देख भाल करता था। पुरानी और नयी वस्तुओंको अलग अलग रखनेकी आज्ञा राज्यकी ओरसे थी। राजाज्ञाके बिना पुरानी वस्तुओंका बेचना नियमके विरुद्ध और दण्डनीय समझा जाता था।

षष्ठ विभाग बिकी हुई वस्तुओंके मूल्य पर दशमांश कर वसूल करता था। जो मनुष्य कर न देकर इस नियमको भंग करता था उसे प्राणदण्ड दिया जाता था।

अपने अपने विभागके कर्तव्योंके अतिरिक्त सभासदोंको एक साथ मिल कर नगर-शासनके सम्बन्धमें सभी आवश्यक कार्य करने पड़ते थे। हाट, बाट, घाट और मन्दिर आदि सब लोकोपकारी कार्यों और स्थानोंका प्रबन्ध इन्हीं लोगोंके हाथमें था।

मालूम पड़ता है कि तक्षशिला, उज्जयिनी आदि साम्राज्यके सभी बड़े बड़े नगरोंका शासन भी इसी विधिसे होता था।

प्रान्तोंका शासनः—दूरस्थित प्रान्तोंका शासन राज-प्रति-

निधियोंके द्वारा होता था। राज-प्रतिनिधि आम तौर पर राजघरानेके लोग हुआ करते थे। उनके अधीन अनेक कर्मचारी होते थे। अर्थ शास्त्रके अनुसार प्रत्येक राज्य चार मुख्य प्रान्तोंमें विभक्त होना चाहिये और प्रत्येक प्रान्त एक एक राजकुमार या स्थानिक नामक शासकके आधीन होना चाहिये। इस बातका पता निश्चित रूपसे नहीं है कि चन्द्रगुप्त मौर्यका विस्तृत साम्राज्य कितने प्रान्तोंमें बटा हुआ था, पर अशोकके लेखोंसे पता लगता है कि उसका साम्राज्य चार भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें बटा था। तक्षशिला, उज्जयिनी, तोसली और सुवर्णगिरि नामक चार प्रान्तीय राजधानियोंके नाम अशोकके शिला-लेखोंमें मिलते हैं। तक्षशिला पश्चिमोत्तर प्रान्तकी, उज्जयिनी मध्यभारतकी, तोसली कलिंग प्रान्तकी और सुवर्णगिरि दक्षिण प्रान्तकी राजधानी थी। ऐसा कहा जाता है कि अशोक अपने पिताके जीवन-कालमें तक्षशिला और उज्जैन दोनों जगह प्रान्तिक शासक रह चुका था। राज-प्रतिनिधि या राजकुमारके बाद रज्जुकोंका ओहदा था जो आज कलके कामिशनरोंके समान थे। उनके नीचे युक्त, उपयुक्त, प्रादेशिक आदि, अनेक कर्मचारी राज्यका काम नियमपूर्वक चलाते थे। "अर्थ शास्त्र" और "अशोकके लेखों" से पता लगता है कि चन्द्रगुप्त और अशोककी शासन-प्रणाली बहुत ही सुव्यवस्थित और ऊंचे ढंगकी थी।

दूरस्थित राजकर्मचारियों की कार्यवाहीकी सूचना देने और रत्ती रत्ती भर समाचार सम्राट्को भेजनेके लियें प्रतिवेदक (सम्वा-ददाता) नियुक्त थे। ये लोग प्रति दिन हर एक नगर या ग्रामका सच्चा समाचार राजधानीको भेजा करते थे।

अर्थशास्त्रके अनुसार राज्य-शासनका काम लगभग ३०

विभागोंमें बटा हुआ था। इन विभागोंके अध्यक्षों या सुपरिन्टेन्डेन्टों का कर्तव्य बहुत विस्तारके साथ "अर्थशास्त्र" में दिया गया है। इन विभागोंमें से मुख्य मुख्य गुप्तचर विभाग, सैनिक विभाग, व्यापार-वाणिज्य विभाग, नौ विभाग, शुल्क विभाग (चुंगीका महकमा) आकर विभाग (खानका महकमा), सुराविभाग (आबकारीका महकमा), कृषिविभाग, नहर विभाग, पशुरक्षा विभाग, चिकित्सा विभाग, मनुष्यगणना विभाग आदि थे।

सेनाके बाद राज्यकी रक्षा गुप्तचरों पर निर्भर थी। अर्थ शास्त्रमें गुप्तचर विभाग तथा गुप्तचरोंका बड़ा अच्छा वर्णन मिलता है। गुप्तचर लोग भिन्न भिन्न भेषोंमें गुप्त रीतिसे घूम फिर कर हर एक प्रकारका समाचार राजाको दिया करते थे। वे न केवल साम्राज्यके भीतर बल्कि साम्राज्यके बाहर भी उदासीन तथा शत्रुराज्योंमें जाकर गुप्त बातोंका पता लगाया करते थे। जिस तरह जर्मनीके कैसरने गुप्तचरोंका एक अलग विभाग खोल रक्खा था और उसके द्वारा वह शत्रु, मित्र तथा उदासीन सबोंका समाचार प्राप्त किया करता था उसी तरह चन्द्रगुप्तने भी एक गुप्तचर-संस्थास्थापित की थी और इसी संस्थाके द्वारा वह सब बातोंका पता लगाया करता था। वेश्याओंसे भी गुप्तचरका काम लिया जाता था। गुप्तचर लोग गूढ़ या सांकेतिक लेख (Cipher writing) द्वारा गुप्त संवाद भेजा करते थे। जिस तरह जर्मन लोग युद्धमें कबूतरोंसे चिट्ठीरसाका काम लेते थे उसी तरह चन्द्रगुप्तके गुप्तचर भी कबूतरोंके द्वारा ख़बरें भेजा करते थे।*

---

* अर्थशास्त्र अधि० १ अध्या० ११, १२

राज्यकी ओरसे एक "सीताध्यक्ष" नामक अफ़सर नियुक्त था जो कृषि-विभागका शासन करता था। उसका पद वही था जो आज कलके "डाइरेक्टर आफ् एग्रिकल्चर" का है। खेतीकी भूमि राजाकी सम्पत्ति गिनी जाती थी और राजा किसानोंसे पैदावारका चौथाई भाग करके तौर पर वसूल करता था। इस बातका पता नहीं लगता कि लगानका बन्दोबस्त हर साल होता था या कई सालके बाद। किसान लोग सैनिक सेवासे अलग रक्खे जाते थे। मेगास्थनीज़ साहेब इस बातको देख कर बड़े चकित थे कि जिस समय शत्रु सेनाएं घोर संग्राम मचाए रहती थीं उस समय भी खेतिहर लोग शान्तिपूर्वक अपने खेतीके काममें लगे रहते थे।†

भारतवर्ष सदासे कृषि-प्रधान देश रहा है। अतएव इस देशके लिये सिंचाईका प्रश्न हमेशासे बड़े महत्वका गिना जाता है। चन्द्रगुप्तके शासनके लिये यह बड़े गौरवका विषय है कि उसने सिंचाईका एक विभाग अलग ही नियत कर दिया था। इस विभाग पर वह विशेष ध्यान देता था। मेगास्थनीज़ साहेबने भी लिखा है कि "भूमिके अधिकतर भागमें सिंचाई होती है और इसीसे सालमें दो फ़सिलें पैदा होती हैं" (Book I Fragment I) "राज्यके कुछ कर्मचारी नदियोंका निरीक्षण और भूमिकी नाप जोख उसी तरह करते हैं जिस तरह मिश्रमें की जाती है। वे उन गूलों अथवा नालियों की भी देख भाल करते हैं जिनके द्वारा पानी ख़ास नहरोंसे शाखा नहरोंमें जाता है जिसमें कि सब किसानोंको समान रूपसे नहरका पानी सिचाईके लिये मिल सके" (Book III,

† Strabo. XV, 40

Fragment XXXIV) मेगास्थनीज़ का उक्त कथन अर्थशास्त्र से पूरी तरह पुष्ट हो जाता है। सिचाईके वारेमें कुछ बातें अर्थ शास्त्रमें ऐसी भी लिखी हैं जो मेगास्थनीज़के वर्णनमें नहीं पाया जातीं। अर्थशास्त्रके अनुसार सिंचाई चार प्रकारसे होती थी यथा (१) हस्त प्रावर्त्तिम अर्थात् हाथके द्वारा (२) स्कन्धप्रावर्त्तिम अर्थात् कन्धों पर पानी ले जा कर (३) स्रोतयन्त्र प्रावर्तिम अर्थात् यन्त्रके द्वारा (४) नदीसरस्तटाककूपोद्घाटम् अर्थात् नदियों, तालावों और कूपोंके द्वारा। सिचाईके पानीका महसूल क्रमसे पैदावारका पंचमांश, चतुर्थांश, तृतीयांश और चतुर्थांश होता था। अर्थशास्त्रमें कुल्याका नाम भी आता है जिसका अर्थ "कृत्रिमा सरित्" अथवा नहर है इससे विदित होता है कि उन दिनों भारतवर्षमें नहरें बनायी जाती थीं और उनके द्वारा खेत सींचे जाते थे। पानी जमा करनेके लिये सेतु या बान्ध भी बान्धे जाते थे और तालाव तथा कूप इत्यादिकी मरम्मत हमेशा हुआ करती थी। इस बातकी भरपूर देख रेख रहती थी कि यथा समय हरएक मनुष्यको आवश्यकतानुसार जल मिलता है या नहीं। जहां नदी, सरोवर ताल इत्यादि नहीं थे वहाँ राज्यकी ओरसे तालाब वगैरह खुदवाए जाते थे *। गिरनारमें, जो काठियावाड़में है, एक चट्टान पर क्षत्रप रुद्रदामन् का एक लेख खुदा हुआ है। उससे विदित होता कि दूरस्थित प्रान्तोंमें भी सिचाईके प्रश्न पर मौर्यसम्राट् कितना ध्यान देते थे। यह लेख सन १५० के बादही लिखा गया था। इसमें लिखा है कि पुश्यगुप्त वैश्यने; जो चन्द्रगुप्तकी ओरसे पश्चिमी प्रान्तोंका शासक था, गिर-

---

* अर्थसास्त्र, अधि० २ अध्या० २३

नारकी पहाड़ी पर एक छोटी नदीके एक ओर बान्ध बनवाया जिससे एक झील सी बन गयी। इस झीलका नाम सुदर्शन रक्खा गया और इससे खेतोंकी सिचाई होने लगी। बादको अशोकने उसमेंसे नहरें भी निकलवायीं। ये नहरें अशोकके प्रतिनिधि राजा तुषास्फ की देखभालमें बनवायी गयी थीं। राजा तुषास्फ पर्शियन अथवा पारसी जातिका था। मौर्य सम्राटोंकी बनवायी हुई झील तथा बान्ध दोनों ४०० वर्ष तक कायम रहे। उसके बाद सन् १५० में बड़ा भारी तूफ़ान आनेसे झील और बान्ध दोनों नष्ट हो गये। तब शक क्षत्रप रुद्रदामन् ने बान्धको फिरसे बनवाया और इस बान्ध तथा झीलका संक्षिप्त इतिहास एक शिलालेखमें लिख दिया जो गिरनारकी चट्टान पर खुदा हुआ है। रुद्रदामन् का बनवाया हुआ बान्ध भी समयके प्रवाहमें पड़कर भग्न हो गया और एक बार फिर वह सन् ४५८ ईसवीमें स्कन्दगुप्त के स्थानीय अधिकारीकी देखभालमें बनावाया गया। इसके बाद समयके प्रभावसे झील और बान्ध कब नष्ट हुए इसका पता इतिहास से नहीं लगता पर रुद्रदामन्के शिलालेखसे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि मौर्य-सम्राट् सिचाईके लिये नहर इत्यादि का प्रबन्ध करना अपना परम कर्तव्य समझते थे और साम्राज्यके दूरस्थित प्रान्तोंमें भी सिचाईकी आवश्यकताका भरपूर ध्यान रखते थे।

चाणक्यके कथनसे यह भी ज्ञात होता है कि कृषि विभाग के साथ साथ अन्तरिक्ष-विद्या-विभाग (Meteorological Department) भी था। यह विभाग एक प्रकारके यन्त्र (वर्षमान कुण्ड) के द्वारा इस बातका निश्चय करता था कि कितना पानी बरस चुका है। बादलोंकी रंगतसे भी इस बातका पता

लगाया जाता था कि पानी बरसेगा या नहीं और बरसेगा तो कितना। सूर्य, शुक्र और बृहस्पतिकी स्थिति और चाल से भी यह निश्चय किया जाता था कि कितना पानी बरसने वाला है।*

साम्राज्यकी सड़कें सुव्यवस्थित दशामें रक्खी जाती थीं। आध आध कोस पर पथ-प्रदर्शक पत्थर (माइल स्टोन) गड़े रहते थे। एक बड़ी सड़क आज कलकी ग्रैन्ड ट्रङ्क रोड (कलकत्तेसे पेशावर वाली सड़क) के समान पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तमें तक्ष शिला से लगाकर सीधे मौर्य साम्राज्यकी राजधानी अर्थात् पाटलिपुत्र तक जाती थी। यह सड़क लग भग १००० मील लम्बी थी † अर्थ शास्त्रसे पता लगता है कि मौर्य साम्राज्यमें सड़कें राजधानीसे सब दिशाओंको जाती थीं। जिस दिशामें यात्रियों और व्यापारियोंका आना जाना अधिक रहता था उसी दिशामें अधिकतर सड़कें बनवायी जाती थीं। उन दिनों दक्षिणकी ओर जो सड़कें जाती थीं वे अधिक महत्वकी गिनी जाती थीं। क्योंकि वहां व्यापार अधिक होता था और वहांसे हीरा, जवाहिर, मोती, सोना इत्यादि बहुमूल्य वस्तुएं आती थीं। सड़कें कई किस्मकी होती थी। भिन्न भिन्न प्रकारके मनुष्यों और पशुओं के लिये भिन्न भिन्न सड़कें थीं। जिस सड़क पर राजाका जुलूस वगैरह निकलता था वह राजमार्ग कहलाता था; जिस सड़क पर रथ चलते थे वह रथपथ कहलाता था; जिस सड़क पर पशु चलते थे वह पशुपथ कहलाता था; जिस सड़क पर खच्चर और ऊंट वगैरह चलते थे वह खरोष्ट्रपथ कहलाता था

---

* अर्थशास्त्र, अधि० २, अध्या० २३

† Strabo, XV, II,

और जिस सड़क पर पैदल आदमी चलते थे वह मनुष्यपथ कहलाता था। इसी तरहसे कुछ सड़कें ऐसी थीं जिनका नाम उन देशों या स्थानोंके नाम पर पड़ा हुआ था जिन देशों या स्थानों को वे जाती थीं। इस तरहकी एक सडक राष्ट्रपथ थी जो छोटे छोटे ज़िलोंको जाती थी। विवीतपथ नामक सड़क चरागाहोंको जाती थी। जो सड़क सेनाके रहनेके स्थानोंको जाती थी वह व्यूहपथ के नामसे पुकारी जाती थी और जो सड़क श्मशानको जाती थी वह श्मशानपथ कहलाती थी। वनकी ओर जाने वाला मार्ग वनपथके नामसे पुकारा जाता था और जो मार्ग पुलों तथा बान्धोंकी ओर जाता था वह सेतुपथ कहलाता था।§

राज्यके सभी काम राजकोष पर निर्भर रहते हैं। इस लिये कर लगाना राजाके लिये बहुत आवश्यक है। अर्थशास्त्रमें एक स्थानपर मौर्यसाम्राज्य की आयके द्वार निम्न रूपसे लिखे गये हैं :—(१) राजधानी (२) ग्राम और प्रांत (३) खानें (४) सरकारी बाग (५) जंगलात (६) जानवर और चरागाह तथा (७) वणिक्पथ।

(१) राजधानी से निम्न लिखित आय होती थी:—सूती कपड़े तेल, निमक, शराब आदि पर कर; वेश्याओं, व्यापारियों, और मन्दिरों पर कर; नगरके फाटकपर वसूल किये गये कर; जुएपर कर इत्यादि।

(२) ग्रामों और प्रांतों से निम्नलिखित आय होती थी:— ख़ास राजाके खेतोंकी पैदावार; किसानोंके खेतोंकी उपजका

§ अर्थशास्त्र अधि० २, अध्या० १, ३,४, अधि० ७ अध्या० १७

एक भाग; धनके रूपमें भूमि-कर; घाटोंपर उतराईका महसूल; सड़कोंपर चलनेका महसूल इत्यादि ।

(३) खानोंसे भी राज्यको बड़ी आमदनी होती थी। सरकारी खानोंसे जो पैदावार होती थी वह सरकारी खजाने में जाती थी । जो खानें सरकारी न होती थीं उनकी पैदावार का एक हिस्सा राज्यका अंश होता था ।

(४) सरकारी बागोंमें जो फल, फूल साग भाजी इत्यादि होती थी उससे भी सरकारको अच्छी ख़ासी आमदनी होती थी ।

(५) शिकार खेलने और हाथी वगैरह पकड़नेके लिये जंगल किरायेपर दिये जाते थे । इससे भी राज्यको अच्छी आमदनी होती थी ।

(६) गाय, बैल, भैंस, बकरे, भेड़ आदि जानवरोंके चरने के लिये चरागाह किराये पर उठाये जाते थे । इससे भी सरकारी खजानेको फ़ायदा होता था ।

(७) वणिक्पथों अर्थात् जल और स्थलके मार्गोंमें व्यापारियोंसे जो कर वसूल किया जाता था उससे भी राज्यको बड़ी आय होती थी । *

सिंचाईके लिये पानीका महसूल अलग देना पड़ता था। आबकारी की चीज़ों पर कर लगाये जाते थे । विदेशी शराब और नशेकी चीज़ों पर ख़ास टैक्स लगाया जाता था । †

बिकनेकी चीज़ें एक निर्दिष्ट स्थानपर लायी जाती थीं और उनपर सिन्दूरकी लाल मुहर लगा कर चुंगी वसूलकी जाती थी ।

---

* अर्थशास्त्र, अधि० २ अध्या० ६

† अर्थशास्त्र, अधि० २ अध्या० २५

बाहरसे आने वाली चीज़ों पर सात प्रकारके भिन्न भिन्न कर लगाये जाते थे।

इन करोंको छोड़ खज़ानेको भरापूरा रखनेके लिये आवश्यकता पड़ने पर कुछ और उपायोंसे भी धन-संग्रह किया जाता था। प्रजाको समय समय पर राजाको धन आदि भेटमें देना पड़ता था। अर्थशास्त्रमें प्रजासे धन खींचनेके भिन्न भिन्न उपाय लिखे हुए हैं। इसके अलावा जब राजा किसी नगर-निवासीको सम्मान-सूचक पदवीसे विभूषित करता था तो वह राजाको भेंटके तौर पर बहुत सा धन दिया करता था।

प्रत्येक नगरमें एक नागरक नियुक्त था। उसका कर्तव्य यह था कि वह नगरमें आने जानेवालोंका नाम रजिस्टरमें दर्ज करे। वह जनसंख्या का हिसाब भी रखता था। उसे प्रत्येक नगरनिवासीकी जात पाँत, नाम, आय व्यय, रोज़गार, पशु, संपत्ति आदिका व्योरेवार वर्णन लिख कर रखना पड़ता था। नागरकको धोखा देना या उसके सामने झूठा बयान करना चोरीका काम समझा जाता था। इस अपराधके लिये बहुत कड़ा दण्ड मिलता था और कभी कभी तो इसके लिये प्राणदण्ड तक भी दिया जाता था।*

मौर्य साम्राज्यकी दण्डनीति बड़ी ही कठोर थी। प्राणदण्ड तो बहुत ही सहल बात थी। किन्तु अपराध होते ही बहुत कम थे। कठोर दण्ड देनेका अवसर ही न आता था। चोरी बहुत ही कम हुआ करती थी। मेगास्थनीज़ने लिखा है कि मैं जितने दिन चन्द्रगुप्तकी राजधानीमें रहा उतने दिन किसी रोज़ भी २००) रुपयेसे ज़्यादाकी चोरी नहीं हुई। यह

---

* अर्थशास्त्र, अधि० २, अध्या० ३६

भी ध्यान रहे कि उन दिनों पाटलिपुत्रकी आवादी ४ लाख थी। चोरीके लिये ऐसा कठोर दण्ड था कि यदि कोई राजकर्मचारी ८ या १० पण [उस समयका प्रचलित सिक्का] चुरा लेता था तो उसे प्राणदण्ड मिलता था। इसी तरह यदि कोई गैरसरकारी आदमी ४० या ५० पण चुराता था तो उसे प्राणदण्ड दिया जाता था। अपराध सिद्ध हो जाने पर अपराधियोंके लिये १८ प्रकारके भिन्न भिन्न दण्डोंकी व्यवस्था थी, जिसमें सात प्रकारसे बेत लगानेका भी विधान था।

चतुर्थ अध्याय ।
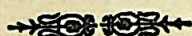
अशोक मौर्य ।

ऐसा कहा जाता है कि अशोक या अशोकवर्द्धन अपने पिताके जीवन-कालमें पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त तथा पश्चिमी भारतका क्रमसे प्रान्तिक शासक रह चुका था और वहीं रह कर उसने शासनका काम सीखा था। वह कई भाइयोंमें सबसे जेठा था और उसकी योग्यताको देखकर उसके पिताने उसीको युवराज पदके लिये चुना था। उन दिनों पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तमें काश्मीर, पंजाब और सिन्धुनदीके पश्चिमवाले प्रदेश शामिल थे और उसकी राजधानी तक्षशिला थी। तक्षशिला नगर उन दिनों एशियाके बहुत बड़े बड़े शहरोंमें गिना जाता था और अपने विश्वविद्यालयके लिये प्रसिद्ध था। वहां बड़ी दूरदूरसे लोग साहित्य, विज्ञान और आयुर्वेद पढ़नेके लिये आते थे। सिकन्दरके समयमें तक्षशिलाके आस पासका प्रदेश एक स्वतंत्र राजा के अधिकारमें था जिसने सिकन्दर की बड़ी मदद की थी। रावलपिंडी ज़िलेमें शाहढेरी नामक ग्रामके पास प्राचीन तक्षशिला नगर बसा हुआ था। पश्चिमी भारतकी राजधानी उज्जैन या उज्जैयिनी थी। यह नगरभी प्राचीन समयमें तक्षशिलाकी तरह प्रसिद्ध था और सात पवित्र पुरियोंमें गिना जाता था। यह उस सड़कपर बसा हुआ था जो पश्चिमी समुद्रके किनारे वाले बंदरगाहोंसे बड़े २ बाज़ारों और मंडियोंको जाती थी। व्यापारिक नगर होनेके साथ ही साथ

यह एक बड़ा तीर्थ-स्थान भी था। ज्योतिष-विद्याके लिये भी यह नगर प्रसिद्ध था और यहींसे ज्योतिषके रेखांश गिने जाते थे।

लंकाकी दन्त-कथाओंसे पता लगता है कि जिस समय अशोकने अपने पिताकी बीमारीका हाल सुना उस समय वह उज्जैन में था। लंकाकी दन्तकथाओंसे यह भी पता लगता है कि अशोकके १०० भाई थे, जिनमेंसे ९९ को उसने मार डाला था। पर यह दन्तकथा विश्वास करनेके योग्य नहीं है। क्योंकि ऐसा मालूम पड़ता है कि इन कथाओंको बौद्धोंने यह दिखलानेके लिये गढ़ लिया था कि बौद्ध धर्ममें आनेके पहिले उसका जीवन कैसा दुराचारमय था और बौद्ध धर्ममें आने के बाद वह कैसा सदाचारी और पवित्र विचारका हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अशोकके राज्यकालके १७ वें या १८ वें वर्षमें अशोकके भाई और बहिनें जीवित थीं। उसके लेखोंसे पता लगता है कि उसे अपने कुटुम्बका बड़ा ध्यान रहता था। शिलालेखोंसे कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता जिससे मालूम हो कि वह अपने कुटुम्ब वालोंसे किसी प्रकार की ईर्ष्या या द्वेष रखता था। उसके पितामह चन्द्रगुप्तको अवश्य सदा भयके साथ अपना जीवन बिताना पड़ता था और अपने साथ ईर्ष्या-द्वेष करने वालोंको दबाना पड़ता था, क्योंकि वह एक सामान्य मनुष्यसे बढ़कर एकच्छत्र सम्राट् बना था और बड़ी कड़ाईके साथ शासन करता था। पर अशोक चन्द्रगुप्तकी तरह सामान्य मनुष्यसे सम्राट् नहीं हुआ था। उसने अपने पितासे उस बड़े साम्राज्यका अधिकार पाया था जिसे स्थापित हुए ५० वर्ष बीत चुके थे। इस लिए किसीको अशोकके साथ ईर्ष्या-द्वेष या लाग डांट करनेका अवसर न था और इसी लिये उसके सिरपर वह सब

झंझटें न थीं जो चंद्रगुप्तके जीवनमें व्यापी हुई थीं। अशोकके लेखोंसे इस बातका पता बिलकुल नहीं लगता कि उसे अपने शत्रुओंकी ओरसे कभी भय रहा हो। सम्भावना यही है कि उसने अपने पिताकी आज्ञानुसार शान्तिके साथ राज्याधिकार ग्रहण किया। पर उत्तरी भारतकी एक दन्त-कथासे पता लगता है कि अशोक और उसके सबसे जेठे भाई सुसीमके बीच राज्याधिकारके लिये बड़ा झगड़ा हुआ। संभव है यह दन्त-कथा सच्ची हो।

अशोकने पूरे ४० वर्षों तक राज्य किया। इस लिये जब बिन्दुसारकी मृत्युके बाद ईसवी सन्‌के पूर्व २७३ में अर्थात् विक्रमीय संवत्‌के पूर्व २१६ में या उसके लगभग उस बड़े साम्राज्यका शासन-भार उसने अपने ऊपर लिया तो वह अपनी युवावस्थामें था। उसके प्रारंभिक राज्यकालके ११ या १२ वर्षोंका कुछ हाल नहीं मिलता। ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रारंभके ११ या १२ साल साधारण रीति पर साम्राज्यके शासनमें बीते। उसका राज-तिलक राज्यारोहणके लगभग ४ वर्ष बाद ईसवी सन्‌के पूर्व २६९ तदनुसार विक्रमीय संवत् के पूर्व २२२ में हुआ। यही एक बात ऐसी है जिससे इस विचारकी पुष्टि होती है कि राज्यारोहण के समय उसके भाइयोंने उसके साथ झगड़ा किया था।

अपने राज्यके १३वें (यदि राज-तिलकसे गिना जाय तो ९वें) वर्षमें अशोकने कलिंगदेशको जीत कर अपने राज्यमें मिला लिया। अपने जीवन भरमें उसने यही एक युद्ध किया। इस युद्धका हवाला उसके एक शिलालेखमें भी मिलता है (देखिये त्रयोदश शिलालेख) प्राचीन समयमें कलिंगदेश बंगालकी खाड़ीके किनारेपर महानदीसे लगाकर गोदावरी

तक फैला हुआ था। इस युद्धके कुछ वर्ष बाद अशोकने दो शिलालेख वहां खुदवाये जिनसे मालूम पड़ता है कि इस नये जीते हुए प्रदेशके शासनके सम्बन्धमें अशोकको बड़ी चिन्ता रहती थी, क्योंकि कभी कभी उसके अफ़सर वहां अच्छा शासन न करते थे (दो कलिंग शिलालेख देखिये) अफ़सरोंको सम्राट्की ओरसे यह आज्ञा थी कि वे वहां प्रजाके साथ पितृवत् व्यवहार करें और कलिंग देशकी जंगली जातियों पर कोई अत्याचार न होने दें। पर वहांके राज्याधिकारी इस आज्ञाका प्रायः उल्लंघन कर दिया करते थे, जिससे सम्राट्को उन्हें अपने कलिंग लेखके द्वारा सूचित करना पड़ा कि 'मेरी आज्ञा पूरी करनेसे तुम स्वर्ग पाओगे और मेरे प्रति अपना ऋण भी चुकाओगे।"

कलिंग युद्धमें एक लाख आदमी मारे गये और डेढ़ लाख आदमी कैद किये गये। इनके अलावा इससे कई गुने आदमी अकाल, महामारी तथा उन विपत्तियोंके शिकार हुए जो युद्धके बाद लोगोंपर आती हैं। इन सब विपत्तियोंको देख कर और यह समझकर कि मेरे ही सबबसे यह विपत्तियां हुई हैं अशोकको बड़ा खेद और पश्चात्ताप हुआ। इसके बाद उसने पक्का निश्चय किया कि वह अब कभी युद्धमें प्रवृत्त न होगा और न कभी मनुष्यों पर अत्याचार करेगा। कलिंग-विजयके ४ वर्ष बाद उसने अपने त्रयोदश शिलालेखमें लिखा कि "जितने मनुष्य कलिंग-युद्धमें घायल हुए, मरे या कैद किये गये उनके १०० वें या १००० वें हिस्से का नाश भी अब महाराज अशोकको बड़े दुःखका कारण होगा" अपने इस सिद्धान्तके अनुसार फिर उसने अपने शेष जीवनमें कभी युद्ध नहीं किया। इसी समयके लगभग

वह बौद्ध धर्मका अनुयायी हुआ। तभीसे उसने अपनी शक्ति तथा अधिकारके द्वारा "धम्म" या धर्मका प्रचार करना अपने जीवनका उद्देश बनाया।

अपने राज्यकालके १७वें और १८वें सालमें अर्थात् ईसवी सन्के पूर्व २५७ और २५६ तदनुसार विक्रमीय संवत् के पूर्व २०० और १९९ में उसने पूरी तरहसे यह निश्चय कर लिया कि उसका उद्देश क्या होगा और उस उद्देशके पूरा करनेमें उसे किस मार्गका अनुसरण करना होगा। इसी समय उसने अपने शासनके सिद्धान्त शिलाओंपर खुदवाये जो चतुर्दश शिलालेख तथा प्रथम लघु शिलालेखके नामसे विख्यात हैं। इसके बाद अशोकने कालिंग देशमें शिलालेख खुदवाये जिनका संक्षिप्त हाल ऊपर दिया जा चुका है। इन शिलालेखोंमें प्रथम लघुशिलालेख सबसे पुराना मालूम पड़ता है। यह शिलालेख कुछ भिन्न भिन्न रूपोंमें सात अलग अलग स्थानोंपर पाया जाता है। प्रथम लघु शिलालेख और चतुर्दश शिलालेखोंसे पता लगता है कि अशोक बौद्ध धर्ममें आनेके बाद ढाई वर्षसे अधिक समय तक केवल उपासक था; पर शिलालेख खुदवानेके एक साल या उससे कुछ अधिक पहले वह संघमें सम्मिलित होकर बौद्ध भिक्षु होगया और बौद्ध धर्मका प्रचार तन मन धनसे करने लगा।

लगभग २४ वर्ष तक सम्राट् पदपर आरूढ़ रहनेके बाद उसने ईसवी सन्के पूर्व २४९ तदनुसार विक्रमीय संवत्के पूर्व १९२ में बौद्ध स्थानोंकी यात्राके लिए प्रस्थान किया। अपनी राजधानी पाटलिपुत्रसे रवाना होकर वह नेपाल जाने वाली सड़क से उत्तरकी ओर गया और आज कलके मुज़फ़्फरपुर तथा चंपारनके ज़िलोंसे होते हुए हिमायल पहाड़की तराईमें पहुँचा।

वहांसे कदाचित् वह पश्चिमकी ओर मुड़ा और उस प्रसिद्ध लुम्बिनी नामके उपवनमें आया जो बुद्ध भगवान्‌का जन्मस्थान समझा जाता है। इस स्थानपर अशोकके गुरुने अशोकको संबोधन करके कहा "यहीं भगवान्‌का जन्म हुआ था।" एक स्तम्भ जिस पर ये शब्द खुद हुए हैं और जो अब तक सुरक्षित है अशोकने अपनी इस स्थानकी यात्राके स्मारकमें खड़ा किया। इसके उपरान्त अपने गुरु उपगुप्तके साथ अशोक कपिलवस्तु आया, जहां बुद्ध भगवान्‌की बाल्यावस्था बीती थी। वहांसे वह बनारसके पास सारनाथमें आया जहां बुद्ध भगवानने अपने धर्मका उपदेश पहिले पहिल किया था। वहां से वह स्रावस्ती गया और वहां बहुत वर्षों तक रहा। स्रावस्तीसे चलकर उसने गयाके बोधिवृक्षका दर्शन किया जिसके नीचे बैठकर बुद्ध भगवान्‌ने ज्ञानका प्रकाश प्राप्त किया था। गयासे वह कुशीनगर आया जहां बुद्ध भगवान्‌का निर्वाण हुआ था। इन सब पवित्र स्थानोंमें अशोकने बहुतसा धन संकल्प किया और बहुतसे स्मारक खड़े किये जिनमेंसे कुछ स्मारकों का पता शताब्दियोंके बाद अब लगा है।

अशोकके सम्बन्धमें एक विचित्र बात यह है कि वह बौद्ध भिक्षु भी था और साथही विस्तृत साम्राज्यका शासन भी करता था। अशोकके ६ शताब्दी बाद इत्सिंग नामक चीनी बौद्ध यात्री भारतमें आया था। उसने अशोककी मूर्ति बौद्ध सन्यासीके वेषमें स्थापित देखी थी। बौद्ध सन्यासी को जब चाहे तब गृहस्थ जीवनमें लौटनेकी स्वतंत्रता रहती है। संभव है अशोक कभी कभी थोड़े समयके लिये, राज्यका उचित प्रबन्ध करनेके बाद, किसी विहार या संघाराममें जाकर एकान्त-वास करता रहा हो। मालूम

पड़ता है कि प्रथम लघु शिलालेख और भाब्रू शिलालेख उस समय खुदवाये गये जब वह बैराटके संघाराममें एकान्त वास कर रहा था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने जीवनके अंतिम २५ वर्षोंमें वह संघ और साम्राज्य दोनोंका शासक तथा नेता था।

लग भग ३० वर्ष तक राज्य करनेके बाद ईसवी सन्‌के पूर्व २४३ तदनुसार विक्रमीय संवत्‌के पूर्व १८६ में या उसके लगभग अशोक ने सप्त स्तम्भलेख खुदवाये जिनमें वही बातें दोहराई गई हैं जो उसने पहिलेके शिला लेखोंमें खुदवायी थीं। इनमेंसे अंतिम स्तम्भलेखमें उसने उन उपायोंका सामान्य रीतिसे समालोचनात्मक वर्णन किया है जिनकी सहायतासे उसने "धम्म" या धर्मका प्रचार किया था। पर आश्चर्य है कि उसने अपने सिंहावलोकनमें उन बौद्ध भिक्षुओंका उल्लेख बिलकुल नहीं किया जिन्हें उसने बौद्ध धर्मका प्रचार करने के लिये विदेशोंमें भेजा था। बौद्ध संघमें फूटको रोकनेके लिये उसके राज्यकालमें तथा उसकी राजधानीमें बौद्ध नेताओंकी जो सभा हुई थी उसका उल्लेख भी इस सिंहावलोकनमें नहीं मिलता। संभव है कि यह सभा सप्त स्तम्भ लेखोंके प्रकाशित होनेके बाद की गयी हो। पर विदेशोंमें बौद्ध धर्मका प्रचार करने वाले जिन बौद्ध भिक्षुओंका हाल चतुर्दश शिला लेखोंमें मिलता है उनका ज़िक्र इस सिंहावलोकनमें क्यों नहीं किया गया यह समझमें नहीं आता। इस बातके स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि बौद्ध नेताओंकी एक सभा अशोकके समयमें हुई थी क्योंकि बहुत सी दन्त-कथायें इस सभाके बारेमें प्रचलित हैं। मालूम पड़ता है कि सारनाथका स्तम्भलेख जिसमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है

कि "जो भिक्षुकी या भिक्षुक संघमें फूट डालेगा वह सफ़ेद कपड़ा पहिना कर उस स्थानमें रख दिया जायगा जो भिक्षुओंके लिये उचित नहीं है" इस सभाके निश्चयके अनुसार प्रकाशित किया गया था। विन्सेन्ट स्मिथ साहबका मत है कि यह सभा अशोकके राज्यकालके अंतिम १० वर्षोंमें किसी समय हुई होगी।

अशोकका साम्राज्य कितनी दूर तक फैला हुआ था यह प्रायः निश्चित रूपसे कहा जा सकता है। उत्तर-पश्चिमकी ओर अशोक का साम्राज्य हिन्दूकुश पर्वत तक फैला हुआ था और उसमें अफ़ग़ानिस्तानका अधिकतर भाग तथा कुल बलुचिस्तान और सिन्ध शामिल था। सुवात (या स्वात) और बाजौरमें भी कदाचित् अशोकके अफ़सर रहते थे। कश्मीर और नैपाल तो अवश्यमेव साम्राज्यके अंग थे। अशोकने कश्मीरकी घाटीमें श्रीनगर नामकी एक नई राजधानी बसाई। प्राचीन श्रीनगर वर्तमान श्रीनगरसे थोड़ीही दूर पर है। नैपालकी घाटीमें भी उसने पुरानी राजधानी मञ्जुपाटनके स्थान पर पाटन, ललितापाटन या ललितपुर नामक एक नगर बसाया जो वर्तमान राजधानी काठमाण्डूसे दक्षिण-पूर्वकी ओर ढाई मीलकी दूरी पर अब तक स्थित है। उसने इस नगरको ईसवी सन्के पूर्व २५० या २४६ तदनुसार विक्रमीय संवत्के पूर्व १९३ या १९२ में नैपाल-यात्राके स्मारक में बनवाया था। उसके साथ नैपालमें उसकी लड़की चारुमती भी गयी थी जो अपने पिताके लौट आनेके बाद बौद्ध सन्यासिनी होकर वहीं रहने लगी। अशोक ललितापाटनको बड़ा पवित्र स्थान समझता था। वहां उसने ५ बड़े बड़े स्तूप बनवाये जिनमेंसे एक तो नगरके मध्यमें और बाकी चार नगरके

चारों कोनों पर थे । ये सब स्मारक अबतक स्थित हैं और हालमें बने हुए स्तूपों और मंदिरोंसे बिलकुल भिन्न हैं ।

पूरबकी ओर गंगाके मुहानेतक समस्त वंग या बंगाल प्रान्त अशोक साम्राज्यमें शामिल था गोदावरी नदीके उत्तरमें समुद्रके किनारेका वह हिस्सा जो कलिंग के नामसे प्रसिद्ध था ईसवी सन्के पूर्व २६१ तदनुसार वि० पू० २०४ में जीत कर मिला लिया गया । दक्खिनमें गोदावरी और कृष्णा नदीके बीचवाला प्रान्त अर्थात् आन्ध्र देश मालूम पड़ता है, मौर्य साम्राज्यके नीचे एक संरक्षित राज्य था और उसका शासन वहींके राजा करते थे । दक्षिण-पूर्वमें उत्तरी पेनार नदी अशोकके साम्राज्यकी सीमा समझी जा सकती है । भारतवर्षके बिल्कुल दक्षिणमें चोल और पांड्य नामके तामिल राज्य तथा मलाबारके किनारेपर केरल-पुत्र और सत्यपुत्र नामके राज्य अवश्यमेव स्वतंत्र थे । इसलिए साम्राज्यकी दक्खिनी सीमा पूर्वी किनारे पर नीलोरके पास उत्तरी पेनार नदीके मुहानेसे लगा कर पश्चिमी किनारे पर मंगलौरके पास कल्याणपुरी नदी तक थी ।

पश्चिमोत्तर सीमामें तथा विन्ध्याचल पर्वतके जंगलोंमें जो जंगली जातियाँ रहती थीं वे कदाचित् मौर्य साम्राज्यके आधिपत्यमें स्वयं शासन करती थीं । इस लिये मोटे तौर पर हिन्दूकुशके नीचे अफ़गानिस्तान, बलूचिस्तान, सिन्ध, कश्मीर, नैपाल, दक्खिनी हिमालय और (दक्खिनमें थोड़ेसे भागको छोड़ कर) कुल भारतवर्ष अशोकके साम्राज्यमें शामिल था ।

पांचवां अध्याय।

अशोकके स्मारक और लेख।

अशोकने बहुत सी इमारतें, स्तूप और स्तम्भ बनवाये। ऐसा कहा जाता है कि तीन वर्षके अन्दर उसने ८४ हज़ार स्तूप निर्माण कराये। जब ईसवी सन्‌की पाँचवीं शताब्दिके प्रारम्भमें चीनी बौद्ध यात्री फ़ाहियान पाटलिपुत्रमें आया था तो अशोक का राजमहल उस समय भी खड़ा हुआ था और लोगोंका विश्वास था कि वह देव दानवोंके हाथसे रचा गया था। अब उसकी ये सब इमारतें लोप हो गयी हैं और उनके भग्नावशेष गंगा और सोन नदियों के पुराने पाटके नीचे दबे पड़े हैं। आजकल उन पर पटना और बाँकीपुरके शहर बसे हुए हैं। अशोकके समयके कुछ स्तूप मध्य भारतमें साँची और उसके आस पास हैं। ये स्तूप अब तक सुरक्षित हैं और उज्जैनसे बहुत दूर नहीं हैं जहां अशोक राजगद्दी पर आनेके पहिले पश्चिमी प्रान्तका शासक रह चुका था। साँचीके प्रधान स्तूपके चारों ओर पत्थरका जो घेरा (परिवेष्टन) तथा पत्थरके जो फाटक हैं वे कदाचित् अशोककी आज्ञासे बनवाये गये थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे अशोकके बहुत बादके नहीं हैं। अशोकने गयाके पास बराबर नामकी पहाड़ीमें आजीवक नामके तपस्वियोंके लिये गुफायें खुदवायीं थी जिनकी दीवारें बहुत ही चिकनी और साफ़ सुथरी हैं। आजीवकों का सम्प्रदाय बहुत प्राचीन था। वे जैन तथा बौद्ध दोनोंसे भिन्न थे।

अशोक के बनवाये हुए स्मारकोंमें उसके पत्थर पर खुदे हुए लेख सबसे विचित्र और महत्वके हैं। कुल मिला कर उसके लेख ३० से अधिक होंगे जो चट्टानों, गुफाकी दीवारों और स्तम्भों पर खुदे हुए मिलते हैं। इन्हीं लेखोंसे अशोकके इतिहासका सच्चा पता लगता है। लेख लगभग कुल भारत वर्षमें हिमालयसे लगा कर मैसूर तक और बंगालकी खाड़ीसे लगा कर अरब-सागर तक फैले हुए हैं। अशोकके लेखोंकी भाषा संस्कृत तथा लंकाके बौद्ध ग्रन्थोंकी पाली भाषासे बहुत कुछ मिलती जुलती है। ये लेख ऐसे स्थानोंमें खुदवाये गये थे जहां लोगोंका आवागमन अधिक होता था पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तके दो स्थानों पर चतुर्दश शिलालेख खरोष्ठी अक्षरोंमें हैं जिनका प्रचार उन दिनों वहां था। खरोष्ठी अक्षर अरबी या उर्दू लिपिकी तरह दाहिनी ओरसे बांई ओरको लिखे जाते थे और प्राचीन एरमेइक (Aramaic) लिपिसे निकले थे। विक्रम पूर्व पाँचवी और चौथी शताब्दियोंमें फ़ारसका अधिकार पंजाबमें होनेसे खरोष्ठी लिपिका प्रचार पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तमें हुआ होगा बाकी और लेख प्राचीन ब्राह्मी लिपि में खुदे हुए मिलते हैं। प्राचीन ब्राह्मी लिपि वही है जिससे देव नागरी तथा उत्तरी और पश्चिमी भारतकी वर्तमान लिपियां निकली हैं और जो बांई ओरसे दाहिनी ओर को लिखी जाती है।

अशोकके लेख समयके अनुसार निम्नलिखित ८ भागोंमें बाँटे जा सकते हैं*:—

---

* समयके अनुसार लेखोंका यह विभाग सेना, टामस और विन्सेन्ट स्मिथके मतके अनुसार किया गया है। पर कुछ विद्वानोंने इस समय विभागको स्वीकार नहीं किया है।

(१) लघु शिला लेखः—जिनमेंसे प्रथम लघु शिलालेख उत्तरी मैसूरमें सिद्धपुर, जतिंग रामेश्वर और ब्रह्मगिरि तथा शाहाबाद ज़िलेमें सहसराम, जबलपुर ज़िलेमें रूपनाथ और जयपुर रियासतमें बैराट और निज़ामकी रियासतमें मास्की इन सात स्थानोंमें पाया जाता है। प्रथम लघु शिलालेख इन सब स्थानोंमें कदाचित् अशोकके राज्यकालके १३ वें वर्षमें अर्थात् विक्रमीय संवत्के पूर्व २०० में खुदवाया गया था। यह लेख चतुर्दश शिला लेखोंसे कुछ पहिलेका है। द्वितीय लघु शिलालेख प्रथम लघु शिलालेखसे कुछ बादका है। द्वितीय लघु शिलालेख केवल उत्तरी मैसूरके तीन स्थानोंमें प्रथम लघु शिलालेखके नीचे लिखा हुआ मिलता है।

प्रथम लघु शिलालेखका अर्थ लगानेमें जितनी कठिनता विद्वानोंको हुई उतनी कठिनता अशोकके किसी और लेखके सबन्धमें नहीं हुई। यह कठिनता अब धीरे २ हल हो रही है और अब यह निश्चित रूपसे सिद्ध हो गया है कि प्रथम लघु शिलालेखमें तारीख़ नहीं दी हुई है। अशोककी जीवनीका कुछ हाल प्रथम लघु शिलालेखसे मालूम होता है, इससे ऐतिहासिक दृष्टिसे यह शिलालेख बड़े महत्वका है। द्वितीय लघु शिलालेखमें केवल अशोकके धर्म्म या धर्मका संक्षिप्त सारांश दिया गया है।

(२) भाब्रू शिलालेखः—जो जयपुर रियासतमें बैराटके पास एक पहाड़ीकी चट्टानमें खुदा हुआ था और आजकल कलकत्तेमें रक्खा हुआ है लगभग उसी समयका है जिस समयका प्रथम लघु शिलालेख है। इस शिलालेखका महत्व इस बातमें है कि इसमें बौद्ध ग्रंथोंके उन सात स्थलोंका हवाला दिया गया है जिन्हें अशोक इस योग्य

समझता था कि लोग उनकी ओर विशेष ध्यान दें। सातों स्थलोंका पता अब बौद्ध धर्मके ग्रंथोंमें लग गया है। जिस समय अशोकने इस शिलालेखको खुदवाया था उस समय वह कदाचित् वैराटके किसी संघाराममें रहता था।

(३) चतुर्दश शिलालेखः—सात अलग अलग स्थानोंमें पाये जाते हैं और मोटे तौर पर अशोकके राज्यकालके १३ वें और १४ वें सालमें अर्थात् विक्रमीय संवत्के पूर्व २०० या १९९ में खुदवाये गये थे। ये शिला लेख निम्नलिखित स्थानोंमें पाये जाते हैं, यथा :—(१) शाहबाज़गढ़ी जो पेशावरसे ४० मील दूर उत्तर-पूर्वमें है (२) मानसेरा जो पंजाबके हज़ारा ज़िलेमें है (इन दोनों स्थानों पर शिलालेख खरोष्ठी लिपिमें हैं) (३) कालसी जो मंसूरीसे १५ मील पश्चिम की ओर है (४) सोपारा जो बम्बईके पास थाना ज़िलेमें है (५) गिरनार पहाड़ी जो काठियावाड़में जूनागढ़के पास है (६) धौली जो उड़ीसाके कटक ज़िलेमें है (७ जौगढ़ जो मदरासके गंजाम ज़िलेमें है। पिछले दो स्थान कलिंग देशमें हैं। दो अतिरिक्त शिला लेख जो "कलिंग शिलालेख" के नामसे कहे जाते हैं धौली और जौगढ़के चतुर्दश शिला-लेखोंमें परिशिष्टके समान बादको जोड़ दिये गये थे।

चतुर्दश शिलालेखोंमें अशोकके शासन और धर्मके सिद्धान्तोंका वर्णन किया गया है। हर एक शिलालेख अलग अलग विषयके बारेमें है। ये शिलालेख मौर्य साम्राज्यके दूरवर्त्ती सीमा-प्रान्तोंमें सात भिन्न २ स्थानोंमें थे। भिन्न २ स्थानोंमें ये लेख कुछ भिन्न २ रूपमें पाये जाते हैं। कहीं कहीं चौदहों लेख पूरे नहीं मिलते। कुछ वर्षोंके बाद ऐसे ही लेख अशोकने स्तम्भों पर भी पाटलिपुत्रके पास वाले प्रान्तोंमें खुदवाये।

(४) दो कलिंग शिलालेखः—कदाचित् अशोकके राज्यकाल के १४ वें या १५ वें वर्षमें अर्थात् विक्रमीय संवत्के पूर्व १९९ या १९८ में खुदवाये गये थे। ये दोनों लेख नये जीते हुए कलिंग प्रान्तके शासनके वारेमें हैं। दोनों शिला लेख धौली और जौगढ़के चतुर्दश शिलालेखोंके परिशिष्टके समान हैं और वादको उनमें जोड़े गये थे। इन दोनों शिलालेखोंमें यह बतलाया गया है कि नये जीते हुए कलिंग प्रान्त और उसकी सीमामें रहने वाली जंगली जातियोंका शासन किस प्रकार होना चाहिये।

(५) तीन गुहालेख :—जो गयाके पास वरावर की पहाडी में हैं और अशोकके राज्यकालक १३ वें और २० वें वर्षमें अर्थात् विक्रमीय संवत्के पूर्व २०० तथा १९३ में खुदवाये गये थे।

इन गुहा लेखोंमें लिखा हुआ हैं कि राजा प्रियदर्शीने राज्याभिषेकके १२ वर्ष बाद ये गुफायें आजीविकोंको दी। आजीविक लोग नग्न फिरा करते थे और अपनी कठोर तपस्याके लिये प्रासिद्ध थे। इन गुहालेखोंसे निश्चित रूपसे सिद्ध हो जाता है कि अशोक दूसरे सम्प्रदायोंकी भी सहायता और प्रतिष्ठा करता था।

(६) दो तराई स्तम्भलेखः—जो नेपालकी सरहदमें रुम्मिनदेई ग्राम तथा निग्लीव ग्राममें हैं। इनका समय विक्रमीय संवत्के पूर्व १९३ माना जाता है अर्थात् ये लेख अशोकके राज्य-कालके २१ वें सालमें खुदवाये गए थे।

तराईके दो स्तम्भ लेख यद्यपि बहुत ही छोटे हैं तथापि कई कारणोंसे बड़े महत्वके हैं। उनके महत्वका एक कारण यह है कि उनसे यह बात निश्चित हो जाती है कि अशोकने

बौद्ध धर्मके पवित्र स्थानोंकी यात्रा की थी। रुम्मिनदेईके स्तम्भलेखसे उस प्रसिद्ध लुम्बिनी वनका ठीक ठीक पता लग जाता है जहां भगवान् बुद्धने जन्म लिया था। निग्लीवके स्तम्भ लेखसे यह पता लगता है कि अशोककी भक्ति केवल गौतम बुद्ध ही पर नहीं बल्कि पूर्वकालके बुद्धों पर भी थी। इन दोनों स्तम्भ लेखोंसे यह भी पता लगता है कि नेपालकी तराई भी अशोकके साम्राज्यमें सम्मिलित थी।

(७) सप्त स्तम्भलेखः—अशोकके राज्यकालके २७वें और २८ वें सालमें अर्थात् विक्रमीय संवत्के पूर्व १८६ में खुदवाये गये थे और निम्नलिखित ६ स्तम्भोंमें पाये जाते हैं यथाः— दो दिल्लीके स्तम्भ जिनमेंसे एक अंबालाके पास टोपरा स्थानसे और दूसरा मेरठसे दिल्लीमें लाया गया था; इलाहाबादका एक स्तम्भ जो क़िलेके अन्दर है; लौड़िया अरराज लौड़ियानन्दन गढ़ और रामपुर के तीन स्तम्भ जो तिरहुतके चंपारन ज़िलेमें हैं।

लग भग तीस वर्षों तक राज्य करनेके बाद अपने जीवनके अंतिम भागमें अशोकने सप्त स्तम्भलेख खुदवाये। जिन बातोंका वर्णन चतुर्दश शिलालेखमें किया गया था वही बातें सप्त स्तम्भलेखोंमें भी दुहरायी गयी हैं। इसलिये सप्त स्तम्भलेखोंको एक प्रकारसे चतुर्दश शिलालेखोंका परिशिष्ट समझना चाहिये। सप्त स्तम्भलेखोंमें क्रमसे उन सब उपायोंका वर्णन किया गया है जिन्हें अशोक अपने दीर्घ राज्य-कालमें धर्मका प्रचार करनेके लिये काममें लाये थे।

(८) लघु स्तम्भ लेखः—सारनाथ, कौशाम्बी और साँचीमें पाये जाते हैं और अशोकके राज्यकालके २६ वें से लेकर ३८ वें वर्ष तकमें अर्थात् विक्रमीय संवत्के पूर्व १८४ से लेकर १७५

तकमें खुदवाये गये थे । कौशाम्बी वाला स्तम्भलेख भी उसी स्तम्भमें खुदा हुआ हैं जो प्रयागके क़िलेमें है और जो कदाचित् पहिले कौशाम्बीमें था ।

लघु स्तम्भलेखोंका महत्व तब तक लोगोंकी समझमें नहीं आया था जब तक कि (संवत् १९६२ सन् १९०५) में सारनाथके लघु स्तम्भ-लेखका पता नहीं लगा था (संवत् १९६२ सन् १९०५) में जब सारनाथके लघु स्तम्भलेखका पता लगा तो मालूम हुआ कि साँची और कौशाम्बीके स्तम्भलेख सारनाथके स्तम्भलेखके केवल दूसरे रूप हैं । साँची, कौशाम्बी और सारनाथ इन तीनों स्थानोंके स्तम्भलेखोंमें लिखा है कि जो भिक्षुकी या भिक्षुक संघमें फूट डालेगा वह संघसे अलग कर दिया जायगा । ऐसा मालूम पड़ता है कि अशोकके समयमें बौद्ध धर्म्मकी जो सभा फूटको रोकनेके लिये हुई थी उसीके निश्चयके अनुसार ये तीनों लेख निकाले गये थे । रानीका लेख उसी स्तम्भमें खुदा हुआ है जो प्रयागके किलेके अंदर है; इस लेखमें अशोककी दूसरी रानी कारुवाकीके दानका उल्लेख है ।

ऊपर अशोकके लेखोंका जो सारांश दिया गया है उससे पाठकोंको मालूम हो गया होगा कि अशोकके लेख कितने महत्वके हैं और अशोकका इतिहास जाननेके लिये वे कितने आवश्यक हैं ।

छठवां अध्याय

"धम्म" और उसका प्रचार ।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रारम्भमें अशोक ब्राह्मणोंका अनुयायी और शिवका परम भक्त था। उन दिनों प्राणि-वध करनेमें उसे कोई हिचक न होती थी। सहस्रों प्राणी उत्सवों पर मांसके लिये वध किये जाते थे; पर ज्यों ज्यों बौद्ध धर्मका प्रभाव उस पर पड़ने लगा त्यों त्यों वह प्राणि-वधको घृणा की दृष्टिसे देखने लगा। अंतमें प्राणि-वध उसने बिलकुल ही उठा दिया। अशोकने अपने प्रथम चतुर्दश शिलालेखमें लिखा भी है:—"देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा अशोककी पाक-शालामें पहिले प्रतिदिन कई सहस्र प्राणी सूप (शोरवा) बनाने के लिये वध किये जाते थे पर अबसे जब कि यह धर्मलेख लिखा जा रहा है केवल तीन ही प्राणी मारे जाते हैं अर्थात् दो मोर और एक मृग, पर मृगका मारा जाना निश्चित नहीं है; ये तीनों प्राणी भी भविष्यमें न मारे जायंगे।"

उक्त शिलालेख खुदवानेके दो वर्ष पहिले अर्थात् विक्रमीय संवत्के पूर्व २०२ में अशोकने शिकार खेलनेकी प्रथा उठा दी थी। यह एक नयी बात अशोकने की थी। चन्द्रगुप्तके ज़मानेमें शिकार खेलनेका बड़ा रिवाज़ था। वह बड़े धूमधामके साथ शिकार खेलनेके लिये निकलता था। अशोकने इसके संबन्धमें अष्टम शिलालेखमें इस प्रकार लिखा है:—"पहिलेके ज़मानेमें राजा लोग विहारयात्राके लिये निकलते थे। इन

यात्राओंमें मृगया (शिकार) और इसी प्रकारकी दूसरी आमोद प्रमोदकी बातें होती थीं। पर प्रियदर्शी राजाने अपने राज्याभिषेकके १० वर्ष बाद बौद्धमतका अनुसरण किया। तभीसे उसने विहारयात्राके स्थानपर धर्मयात्राकी प्रथाका प्रारंभ किया। धर्मयात्रामें श्रमणों, ब्राह्मणों और वृद्धोंका दर्शन किया जाता है, उन्हें सुवर्ण इत्यादिका दान दिया जाता है, ग्रामोंमें जाकर धर्मकी शिक्षा दी जाती है और धर्मके संबन्धमें परस्पर मिलकर विचार किया जाता है।"

ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों अशोकके हृदयमें अहिंसाका भाव जड़ पकड़ता गया। अन्तमें विक्रमीय संवत्के पूर्व १८६ में उसने जीव-रक्षाके संबन्धमें बड़े कड़े नियम बनाये। यदि किसी भी जाति या वर्णका कोई भी मनुष्य इन नियमोंको तोड़ता था तो उसे बड़ा कड़ा दण्ड दिया जाता था। कुल साम्राज्यमें इन नियमोंका प्रचार था। इन नियमोंके अनुसार कई प्रकारके प्राणियोंका वध बिलकुल ही बन्द कर दिया गया था। जिन पशुओंका मांस खानेके काममें आता था उनका वध यद्यपि बिलकुल तो नहीं बन्द किया गया तथापि उनके संबन्धमें बहुत कड़े कड़े नियम बना दिये गये, जिससे प्राणियोंका अन्धाधुन्ध वध होना रुक गया। सालमें ५६ दिन तो पशुवध बिलकुल ही मना था। अशोकके पंचम स्तंभलेखमें यह सब नियम स्पष्ट रूपसे दिये गये हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्रके अधि० २ अध्या० २६ में भी प्राणिवधके बारेमें इसी तरहके कड़े नियम लिखे हुए मिलते हैं। पर अशोकके पंचम स्तंभलेखमें गोरक्षा या गाय न मारनेका कहीं भी उल्लेख नहीं है। हां, अर्थशास्त्रमें गोवधका बड़ा कड़ा निषेध किया गया है। अर्थशास्त्रके अनुसार

जो मनुष्य गोवधका अपराधी समझा जाता था उस पर ५० पणाका दण्ड लगाया जाता था। कई सरकारी कर्मचारी इस बातकी देखभाल करनेके लिये नियुक्त थे कि इन नियमोंका पालन ठीक ठीक होता है या नहीं।

"धम्म" का दूसरा सिद्धान्त, जिस पर अशोकने अपने शिलालेखमें बहुत ज़ोर दिया है, यह है कि मातापिता, गुरू और बड़े बूढ़ोंका उचित आदर करना बहुत आवश्यक है। इसी तरहसे अशोकने इस बात पर भी ज़ोर दिया है कि बड़ोंको अपनेसे छोटों, सेवकों, भृत्यों तथा अन्य प्राणियोंके साथ दयाका वर्त्ताव करना चाहिये। अर्थशास्त्रके अधिकरण ३ अध्याय १३ तथा १४ में दास, भृत्य और सेवकोंके बारेमें इसी तरहके नियम बड़े विस्तारके साथ दिये गये हैं। अर्थशास्त्रके अनुसार दास और भृत्यके साथ क्रूरताका व्यवहार करनेसे बड़ा कड़ा दण्ड दिया जाता था। अर्थशास्त्रमें यह नियम साधारण तौर पर दिया गया है कि "नत्वेवार्यस्य दासभावः" अर्थात् कोई भी आर्य दास या गुलाम नहीं बनाया जा सकता। मेगास्थनीज़ने भी अपने भारत-वर्णनमें लिखा है कि भारतवासियोंमें गुलामीकी प्रथा न थी।

अशोकके 'धम्म" के अनुसार मनुष्यका तीसरा प्रधान कर्त्तव्य यह है कि वह सदा सत्यभाषण करे। सत्य-भाषण पर भी अशोकके लेखोंमें ज़ोर दिया गया है।

अहिंसा, बड़ोंका आदर और सत्यभाषण अशोकके ये तीनों सिद्धान्त, जो "धम्म" के सिद्धान्त हैं, द्वितीय लघुशिलालेखमें संक्षेपके साथ दिये गये हैं। उस शिलालेखको हम पूराका पूरा यहां पर उद्धृत कर देते हैं:—

"देवताओंके प्रिय इस तरह कहते हैं:—माता और पिताकी सेवा करनी चाहिये। प्राणियोंके प्राणोंका आदर दृढ़ताके साथ करना चाहिये (अर्थात् जीवहिंसा न करनी चाहिये)। सत्य बोलना चाहिये। "धम्म" के इन गुणोंका प्रचार करना चाहिये। इसी प्रकार विद्यार्थीको आचार्यकी सेवा करनी चाहिये और अपने जाति भाइयोंके साथ उचित बर्ताव करना चाहिये। यही प्राचीन धर्मकी रीति है, इससे आयु बढ़ती है और इसीके अनुसार मनुष्यको आचरण करना चाहिये।"

इन प्रधान कर्त्तव्योंके अतिरिक्त अशोकने अपने शिलालेखोंमें कई छोटे छोटे कर्त्तव्यों पर भी ज़ोर दिया है। इनमेंसे एक कर्त्तव्य यह था कि दूसरोंके धर्म और विश्वासके साथ सहानुभूति करनी चाहिये तथा दूसरोंके धर्म और अनुष्ठानको घृणाकी दृष्टिसे कभी न देखना चाहिये। द्वादश शिलालेख विशेष करके इसी विषयके बारेमें है। उसमें लिखा है:—"देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी विविध दान और पूजासे गृहस्थ तथा संन्यासी सब संप्रदाय वालोंका सत्कार करते हैं। किन्तु देवताओंके प्रिय दान या पूजाकी इतनी परवाह नहीं करते जितनी इस बातकी कि सब संप्रदायोंके सारकी वृद्धि हो। सम्प्रदायोंके सारकी वृद्धि कई प्रकारसे होती है, पर उसकी जड़ वाक्-संयम है अर्थात् लोग केवल अपने ही संप्रदायका आदर और दूसरे संप्रदायकी निन्दा न करें।"

लोगोंमें "धम्म" के सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिए अशोकने अपने कुल छोटे बड़े कर्मचारियोंको यह आज्ञा दे रक्खी थी कि वे दौरा करते हुए "धम्म" का प्रचार करें और इस बातकी कड़ी देखभाल रक्खें कि लोग सरकारी आज्ञाओंका

यथोचित पालन करते हैं या नहीं। तृतीय शिलालेख इसी विषयके संबन्धमें है। उसे हम यहां पर उद्धृत करते हैं:— "देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:-मेरे राज्यमें सब जगह युक्त (छोटे कर्मचारी), रज्जुक (कमिश्नर) और प्रादेशिक (प्रान्तीय अफसर) पांच पांच वर्ष पर इस कामके लिये अर्थात् धर्मानुशासनके लिये तथा और और कामोंके लिये यह कहते हुए दौरा करें कि "माता पिताकी सेवा करना तथा मित्र, परिचित, स्वजातीय, ब्राह्मण और श्रमणको दान देना अच्छा है। जीवहिंसा न करना अच्छा है। कम खर्च करना और कम संचय करना अच्छा है।"

अपने राज्याभिषेकके १३ वर्ष बाद अशोकने धर्म-महामात्र नामक नये कर्मचारी नियुक्त किये। ये कर्मचारी समस्त राज्यमें तथा यवन, काम्बोज, गान्धार इत्यादि पश्चिमी सीमापर रहने वाली जातियोंके बीच धर्मका प्रचार और धर्मकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त थे। धर्म-महामात्रोंकी पदवी बड़ी ऊंची थी और उनका कर्त्तव्य साधारण महामात्रोंके कर्त्तव्योंसे भिन्न था। धर्म-महामात्रोंके नीचे "धर्मयुक्त" नामक दूसरी श्रेणीके राजकर्मचारी भी धर्मकी रक्षा और धर्मका प्रचार करनेके लिये नियुक्त थे। ये धर्ममहामात्रोंके काममें हर प्रकारसे सहायता देते थे। स्त्रियां भी धर्म-महामात्रके पद पर नियुक्तकी जाती थीं। स्त्री-धर्ममहामात्र अन्तःपुरमें स्त्रियोंके बीच धर्मका प्रचार और धर्मकी रक्षाका काम करती थीं। पंचम शिलालेखमें धर्म महामात्रोंका कर्त्तव्य विस्तारके साथ दिया गया है। सप्तम स्तंभलेखमें धर्म-महामात्रोंके एक और कर्त्तव्यका भी उल्लेख किया गया है। उसमें लिखा है:— "धर्म-महामात्र तथा अन्य दूसरे प्रधान कर्मचारी मेरी तथा

मेरा रानियोंकी दानकी हुई वस्तुओंकी देखभाल करनेके लिये नियुक्त हैं। वे पाटलिपुत्र तथा प्रान्तोंमें मेरे सब अन्तःपुर वालोंको यह बताते हैं कि किस किस अवसर पर कौन कौन सा दान करना चाहिये। वे मेरे पुत्रों और दूसरे राज-कुमारोंकी दानकी हुई वस्तुकी देखभाल करनेके लिये भी नियुक्त हैं, जिसमें कि धर्मकी उन्नति और धर्मका आचरण हो।"

अशोकने यात्रियोंके आराम और सुखका भी बड़ा अच्छा प्रबंध कर रक्खा था। सप्तम स्तंभ-लेखमें इस प्रबन्धका बड़ा अच्छा वर्णन दिया गया है। उसका कुछ भाग हम यहां पर उद्धृत करते हैं:-"सड़कों पर भी मैंने मनुष्यों और पशुओंको छाया देनेके लिए बरगदके पेड़ लगवाये, आम्रवाटिकाएं लगवायी, आठ आठ कोस पर कुएं खुदवाये, सराएं बनवायीं और जहां तहां पशुओं तथा मनुष्योंके उपकारके लिए अनेक पौंसले बैठाये।"

बीमार आदमियों और जानवरोंकी दवादारु का भी बड़ा अच्छा प्रबंध अशोकने कर रक्खा था। न केवल साम्राज्यके अन्दर बल्कि साम्राज्यके बाहर दक्षिणी भारत तथा पश्चिमोत्तर सीमाके स्वाधीन राज्योंमें भी अशोककी ओरसे मनुष्यों और पशुओंकी चिकित्साके लिये पर्याप्त प्रबन्ध था। इस प्रबन्धका वर्णन अशोकके द्वितीय शिलालेख में बहुत अच्छा दिया गया है। उसे हम यहां पर पाठकोंके लिये उद्धृत करते हैं:—"देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजाके राज्यमें सब स्थानों पर तथा जो उनके पड़ोसी राज्य हैं वहां जैसे चोड़, पांड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी, अन्तियोक नामक यवन-राजके राज्यमें और जो उस अन्तियोकके पड़ोसी राजा हैं उन सबके राज्योंमें देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी

राजाने दो प्रकारकी चिकित्साका प्रबन्ध किया है, एक मनुष्योंकी चिकित्सा और दूसरी पशुओंकी चिकित्सा। ओषधियां भी मनुष्यों और पशुओंके लिये जहां जहां नहीं थीं वहां लायी और रोपी गयी हैं। इसी तरहसे कन्द मूल और फल फूल भी जहां जहां नहीं थे वहां वहां लाये और रोपे गये हैं।"

विक्रमीय संवत्के पूर्व २०० के लगभग अशोकने "चतुर्दश शिलालेख" खुदवाये। तेरहवें शिलालेखमें उन उन देशों और राज्योंका नाम मिलता है जहां जहां अशोकने धर्मका प्रचार करनेके लिये अपने दूत या उपदेशक भेजे थे। इस शिलालेखसे पता लगता है कि अशोकके राजदूत या धर्मोपदेशक निम्नलिखित देशोंमें धर्मका प्रचार करनेके लिये गये थेः—(१) मौर्य साम्राज्यके अन्तर्गत भिन्न भिन्न प्रदेश (२) साम्राज्यके सीमान्त-प्रदेश और सीमा पर रहने वाली यवन, काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पितनिक, भोज, आन्ध्र, पुलिन्द, आदि जातियोंके देश (३) साम्राज्यकी जंगली जातियोंके प्रान्त (४) दक्षिणी भारतके स्वाधीन राज्य जैसे केरलपुत्र, सत्यपुत्र, चोड़ और पांड्य (५) सिंहल या लंका द्वीप (६) सीरिया, मिश्र, साइरीनी, मेसिडोनिया और एपिरस नामक पांच ग्रीक राज्य जिन पर क्रमसे अन्तियोक (Antiochos II, B. C. 261-246), तुरमय (Ptolomy Philadelphos, B. C. 285-247), मक (Magas, B. C. 285-258), अन्तिकिनि (Antigonos Gonatas B. C. 277-239) और अलिकसुन्दर (Alexander B. C. 272-258) नामके राजा राज्य करते थे। ईसवी सन्के पूर्व २५८ में अथवा विक्रमीय संवतके पूर्व २०१ में ये पांचो राजा एक साथ जीवित थे। इस लिये यह अनुमान किया जाता

है कि मोटे तौर पर विक्रम पूर्व २०१ में अशोकके राजदूत या धर्मोपदेशक धर्मका प्रचार करनेके लिये विदेशोंमें भेजे गये थे। इस तरहसे आप देख सकते हैं कि अशोकके धर्मोपदेशक न केवल भारतवर्षमें बल्कि एशिया, अफ्रिका और योरप इन तीनों महाद्वीपोंमें भी फैले हुए थे। सिंहल या लंकाद्वीप में जो धर्मोपदेशक भेजे गये थे उनके अगुआ सम्राट् अशोकका भाई महेन्द्र था। महेन्द्र यद्यपि राजकुमार था तथापि धर्मकी सेवा करनेके लिये उसने बौद्ध संन्यासीका जीवन ग्रहण किया था। आमरणान्त उसने लंकामें बौद्ध धर्मका प्रचार किया और वहांके राजा 'देवानां प्रिय तिष्य' और उसके सभासदोंको बौद्ध धर्मका अनुयायी बनाया। ऐसा कहा जाता है कि वहां महेन्द्रकी अस्थियां एक स्तूपके नीचे गाड़ी हुई हैं। लंकाके लोग उस स्तूपकी अबतक बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं।

लंकाके महावंश नामक बौद्ध ग्रन्थमें भी उन देशोंकी सूची दी गयी है जहां अशोकने धर्म-प्रचारार्थ अपने दूत भेजे थे। पर उस सूचीमें दक्षिण भारतके केरलपुत्र, सत्यपुत्र आदि स्वाधीन राज्योंका उल्लेख नहीं है। इसका कारण यह मालूम पड़ता है कि उन दिनों लंकावालों और दक्षिण भारतके तामिल लोगोंमें बड़ा गहरा विरोध था। महावंश में यह भी लिखा है कि अशोकके दूत धर्म-प्रचारार्थ सुवर्णभूमि (बर्मा) में भी गये थे। पर शिलालेखोंमें सुवर्ण-भूमिका उल्लेख नहीं है। यदि अशोकने बर्मामें अपने दूतोंको भेजा होता तो शिला-लेखमें इसका वर्णन अवश्य किया होता।

अशोकने अपने धार्मिक प्रेम और उत्साहकी बदौलत बौद्ध धर्म को, जो पहले केवल एक छोटेसे प्रान्तमें सीमाबद्ध था, संसारका एक बड़ा धर्म बना दिया। गौतम बुद्ध के

जीवन-कालमें बौद्ध धर्म का प्रचार केवल गया, प्रयाग और हिमालयके बीच वाले प्रान्तमें था। जब बुद्ध भगवान्का निर्वाण विक्रमीय संवत्के पूर्व लगभग ४३० में हुआ तो बौद्ध धर्म केवल एक छोटा सा संप्रदाय था। पर अशोककी बदौलत यह धर्म भारतवर्षकी सीमा डाक कर दूसरे देशोंमें भी फैल गया। यद्यपि यह धर्म अपनी जन्मभूमि अर्थात भारतवर्षसे अब बिलकुल लोप हो गया है पर लंका, बर्मा, तिब्बत, नेपाल, भूटान, चीन और जापानमें इस धर्मका प्रचार अब तक बना हुआ है। यह केवल अशोकके धार्मिक उत्साहका परिणाम है। अशोक-का नाम सदा उन थोड़ेसे लोगोंमें गिना जायगा जिन्होंने अपनी शक्ति और उत्साहसे संसारके धर्ममें महान् परिवर्त्तन किया है।

अशोकका स्वभाव और चरित्र उसके लेखोंसे झलक रहा है। लेखोंकी शैलीसे पता लगता है कि भाव और शब्द दोनों अशोकके ही हैं। उन लेखोंके शब्दोंसे अशोकके हार्दिक भाव प्रतिबिंबित हो रहे हैं। कलिंग-युद्धसे होने वाली विपत्तियोंको देख कर जो पश्चात्ताप अशोकको हुआ उसे कोई भी मंत्री अपने शब्दोंमें प्रकट करनेका साहस नहीं कर सकता था। उस पश्चात्तापकी भाषा अशोकको छोड़ कर और किसीकी नहीं हो सकती। अशोकके धर्म-लेखोंसे सूचित होता है कि उसमें न केवल राजनीतिज्ञता बल्कि संन्यासियोंकी सी पवित्रता और धार्मिकता कूट कूट कर भरी हुई थी। उसने अपने प्रथम लघुशिलालेख में इस बात पर ज़ोर दिया है कि छोटे और बड़े हर एक मनुष्यको चाहिये कि वह अपने मोक्षके लिये उद्योग करे और अपने कर्मके अनुसार फलोंको भोगे। उसने अपने लेखोंमें बड़ोंका आदर,

दया, सत्य और सहानुभूति पर बड़ा ज़ोर दिया है और बड़ोंका अनादर, निर्दयता, असत्य और दूसरे धर्म तथा संप्रदायके साथ घृणायुक्त वर्तावको बहुत धिक्कारा है। अशोक निस्सदेह एक बड़ा मनुष्य था। वह एक बड़ा सम्राट् होते हुए भी बड़ा भारी धर्म-प्रचारक था। सांसारिक और आत्मिक दोनों प्रकारकी शक्तियां उसमें विद्यमान थीं और उन शक्तियों-को वह सदा अपने एकमात्र उद्देश अर्थात् धर्मके प्रचारमें लगानेका प्रयत्न करता था।

सातवां अध्याय।

अशोकके वंशज।

अशोककी कई रानियां थीं। कमसे कम दो रानियां तो अवश्य थीं, जिनके नामके आगे "देवी" की पदवी लगायी जाती थी। दूसरी रानी अर्थात् "कारुवाकी" का नाम उस लघु स्तम्भ-लेखमें आया है जो प्रयागके किलेके अन्दर एक स्तंभमें खुदा हुआ है। उस लेखमें यह भी लिखा है कि "कारुवाकी" तीवरकी माता थी। ऐसा मालूम पड़ता है कि दूसरी रानी अर्थात् कारुवाकीके साथ अशोकका विशेष प्रेम था। कारुवाकी कदाचित् ज्येष्ठ राजकुमारकी माता थी जो यदि जीवित रहता तो अवश्य राजगद्दी पर बैठता। पर ऐसा मालूम पड़ता है कि वह अशोकसे पहिले ही इस संसार से चल बसा।

बौद्ध दन्त-कथाओंसे सूचित होता है कि बहुत वर्षों तक अशोककी प्रधान महिषी "असन्धिमित्रा" थी। यह रानी बड़ी पतिव्रता और सती साध्वी थी। उसकी मृत्युके बाद अशोकने "तिष्यरक्षिता" नामकी एक दूसरी स्त्रीसे विवाह किया। कहा जाता है कि तिष्यरक्षिता अच्छे चरित्रकी न थी और राजाको बहुत दुःख देती थी। राजा उस समय वृद्ध हो चला था पर रानी अभी पूर्ण युवावस्थामें थी। यह भी कहा जाता है कि अशोककी एक दूसरी रानीसे कुनाल नामक एक पुत्र था। उस पर तिष्यरक्षिता प्रेमासक्त हो गयी। जब

उसने कुनालसे अपनी अभिसन्धि प्रकट की तो उसे अपनी सौतेली माके इस घृणित प्रस्ताव पर बड़ा ही खेद हुआ। उसने उस प्रस्तावको बिलकुल अस्वीकार किया। इस पर रानीने मारे क्रोधके राजकुमारको धोखा देकर उसकी आंखे निकलवा लीं।

यह नहीं कहा जा सकता कि यह दन्त-कथा कहां तक ठीक है। यह भी निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि अशोकके कुनाल नामका कोई राजकुमार था या नहीं। अस्तु पुराणोंमें अशोकके बाद उसके पौत्र दशरथका नाम आता है। नागार्जुनि पहाड़ीमें दशरथका जो गुहालेख है उससे भी पता लगता है कि दशरथ नामका एक वास्तविक राजा था। इससे यही सिद्ध होता है कि अशोकके बाद उसका पौत्र दशरथ साम्राज्यका उत्तराधिकारी हुआ। दशरथके गुहालेखोंकी भाषा और लिपिसे यह सिद्ध होता है कि वह अशोकके बहुत बादका नहीं है। उसकी लेख-शैलीसे तो यह पता लगता है कि कदाचित् अशोकके बाद वही साम्राज्यका या कमसे कम उसके पूर्वीय प्रान्तोंका उत्तराधिकारी हुआ। यदि हम इस बातको मान लें तो दशरथका राज्यारोहण काल विक्रमीय संवत्के पूर्व १७५ में रक्खा जा सकता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि उसका राज्य-काल बहुत दिनों तक नहीं था, क्योंकि पुराणोंमें वह केवल आठ वर्ष दिया गया है।

अशोकके संप्रति नामक एक दूसरे पौत्रका हवाला यद्यपि किसी शिलालेखमें नहीं मिलता तथापि उसका वर्णन बहुत सी दन्त-कथाओंमें आता है। जैन दन्त-कथाओंने भी संप्रतिको अशोकका पौत्र लिखा है। इससे मालूम पड़ता है कि संप्रति कपोल-कल्पित नहीं बल्कि एक वास्तविक व्यक्ति

था। कदाचित् अशोककी मृत्युके बाद ही मौर्य साम्राज्य दशरथ और संप्रति इन दोनोंमें बट गया, जिनमेंसे दशरथ पूर्वी प्रान्तोंका मालिक हुआ और संप्रति पश्चिमी प्रान्तोंका। पर इस मतके पोषणमें कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है।

पुराणोंके अनुसार मौर्य-वंशने १३७ वर्षों तक भारतवर्षमें राज्य किया। यदि हम इस मतको मानलें और चन्द्रगुप्तका राज्यकाल विक्रमीय संवत्के पूर्व २६५ से प्रारंभ करें तो हमें मानना पड़ेगा कि मौर्य-वंशका अन्त विक्रमीय संवत्के पूर्व १२८ में हुआ। निश्चित रूपसे केवल यह कहा जा सकता है कि जिस बड़े साम्राज्यकी नींव चन्द्रगुप्तने डाली थी और जिसकी उन्नति बिन्दुसार तथा अशोकके ज़मानेमें होती रही वह अशोकके बाद बहुत दिनों तक कायम न रह सका। मौर्य-साम्राज्यके पतनका एक बहुत बड़ा कारण कदाचित् यह था कि अशोकके बाद ब्राह्मणोंने इस साम्राज्यके विरुद्ध लोगोंको भड़काना शुरू किया। अशोकके ज़मानेमें ब्राह्मणोंका प्रभाव बहुत कुछ घट गया था क्योंकि वह बौद्धधर्मका अनुयायी होनेसे ब्राह्मणोंकी अपेक्षा बौद्धोंके साथ अधिक पक्षपात करता था। अशोकने यज्ञोंमें पशु-वधका होना भी बन्द करवा दिया था और उसके धर्म-महामात्र कदाचित् लोगोंको बहुत तंग करते थे जिससे लोगोंमें बड़ा असन्तोष फैला हुआ था। इसलिये ज्योंही अशोककी आंख मुंदी त्योंही ब्राह्मणोंका प्रभाव फिरसे जागृत होने लगा और मौर्य-साम्राज्यके विरुद्ध बलवा होना आरंभ हो गया। अशोकके जिन उत्तराधिकारियोंके नाम पुराणोंमें लिखे हुए मिलते हैं उनके अधिकारमें केवल मगध और आस पासके प्रान्त बच गये थे। अशोककी मृत्युके बादही सबसे पहिले आन्ध्र और कलिंग प्रान्त मौर्य-

साम्राज्यसे स्वाधीन हो गये। मौर्य-साम्राज्यका अन्तिम राजा बृहद्रथ था। वह बहुत ही कमज़ोर था। उसके सेनापति पुष्यमित्रने वि० पू० १२८ में उसे मारकर मौर्यसाम्राज्य-को अपने अधिकारमें कर लिया। उसने एक नये राजवंश-की नींव डाली जो इतिहासमें शुंग-वंशके नामसे प्रसिद्ध है। इस तरहसे मौर्य साम्राज्यका अस्त भारतवर्षके इतिहासमें सदाके लिये हो गया।

आठवां अध्याय ।

मौर्यवंशके राजाओं और उनके संबन्धमें ऐतिहासिक घटनाओंकी समय-तालिका

विक्रमीय संवत् के पूर्व	घटनाएँ
२६९ या २६८	चन्द्रगुप्त मौर्यका युवावस्थामें सिकन्दरसे मिलना ।
२६६	सिकन्दरकी मृत्यु ।
२६६—२६५	ग्रीक-शासनके विरुद्ध बलवा होना और यूनानी सेनाका हिन्दुस्तानके बाहर निकाला जाना ।
२६५	चन्द्रगुप्त मौर्यका राज्यारोहण ।
२४८	सेल्यूकसका भारत पर आक्रमण ।
२४५	मेगास्थनीज़का राजदूत बन कर चन्द्रगुप्तके दरबारमें आना
२४१	बिन्दुसारका राज्यारोहण ।
२१६	अशोकवर्द्धनका राज्यारोहण ।
२१२	अशोकका राज्याभिषेक ।
२०४	अशोकका कालिंग-युद्ध ।
२०२	शिकार खेलनेकी प्रथाका उठना और धर्म-प्रचारके लिये उपदेशक या राजदूतोंका साम्राज्यके भीतर और बाहर भेजा जाना ।

विक्रमीय संवत्के पूर्व	घटनाएँ
२००	प्रथम लघु शिलालेखका खुदवाया जाना ।
२००—१६६	चतुर्दश शिलालेख तथा कलिंग-शिलालेखका खुदवाया जाना और धर्म-महामात्रोंका नियुक्त होना ।
१६४ या १६३	धर्मप्रचारार्थ महेन्द्रका सिंहल द्वीप या लंका-के लिये प्रस्थान ।
१९२	बौद्ध धर्मके पवित्र स्थानोंमें अशोककी यात्रा।
१८५	सप्त स्तंभ-लेखोंका प्रकाशित होना ।
१८३—१७५	लघु स्तंभ-लेखोंका खुदवाया जाना ।
१७१	अशोककी मृत्यु । उसका एक पोता दशरथ साम्राज्यके पूर्वीय प्रान्तोंका और कदाचित् दूसरा पोता संप्रति पश्चिमीय प्रान्तोंका सम्राट् हुआ ।
१२८	मौर्यवंशके अन्तिम राजा वृहद्रथका अपने सेनापति पुष्यमित्रके हाथसे मारा जाना । इसके पश्चात् पुष्यमित्रके द्वारा सुंगवंशकी स्थापना ।

द्वितीय खण्ड ।

अशोकके धर्म-लेख ।

प्रथम अध्याय

लघु शिला-लेख ।

[स०=सहसराम; रू०=रूपनाथ; बै०=बैराट]

रूपनाथका प्रथम लघु शिला-लेख

मूल

(१) देवानं पिये हेवं आहा [:—] सातिलेकानि अढातियानि वय सुमि पाका सवके[क] नो चु बाढि[ख] पकते[ग] [;] सातिलके चु छवछरे[घ] य सुमि हकं सघ उपेते

पाठान्तर

क. स० तथा बै० "उपासके" । ख. स० तथा बै० "बाढं" ।
ग. स० "लकंते" । घ. स० "सद्वछले" ।

(२) बाढि चु पकते [।] यि इमाय कालाय जबुंदिपसि[च] अमिसा देवा हुसु ते दानि मिसा कटा [।] पकमसि हि एस फले [।] नो च ऐसा महतता[छ] पापोतवे [।] खुदकेन हि क-

(३) पि परुममिनेन[ज] सकिये पिपुले पि स्वगे आरोधवे[झ] [।] एतिय अठाय च सावने कटे खुदका च उडाला च पकमंतु[ट] ति [।] अता[ठ] पि च जानंतु इयं पकरव

(४) किति [?] चिरठितिके[ड] सियां [।] इय हि अठे वढि वढिसिति विपुल च वढिसिति, अपलधियेना दियढिय वढिसत [।] इय च अठे पवतिसु लेखापेत वालत हध च [।] अथि

(५) सिलाठुभे सिलाठंभासि लाखापतवयत [।] एतिना[ढ] च वयजनेना यावतक तुपक अहाले सवर विवसेतवायुति [।] व्युठेना[ण] सावने कटे २५६ स-

(६) तविवासा त [।]

च. स० 'जंबुदीपसि अमिसं देवा संता मुनिसा मिंस देव"। छ. वै० "महतनेव"। ज. स० "कममीनेना"। झ. वै० "आलाधेतवे".। ट. वै० "पलवमतु"। ठ. स० तथा वै० "अंता"। ड. स० "चिलठितिके"। ढ. "एतिना" से लेकर "विवसेतवायुति" तक जो वाक्य है वह स० तथा वै० में नहीं है। ण. स० "विवुथेन दुवे सपंनालातिसता विवुथाति २५६"।

संस्कृत-अनुवाद

देवानां प्रियः एवं आहः—सातिरेकाणि सार्धद्वयानि* वर्षाणि अस्मि अहं श्रावकः न तु वाढ़ं प्रकान्तः। सातिरेकः तु संवत्सरः यत् अस्मि संघं उपेतः वाढ़ं तु प्रकान्तः। ये अमुस्मै कालाय जंबूद्वीपे असृषा देवाः अभूवन् ते इदानीं मृषा कृताः। प्रक्रमस्य हि इदं फलम्। न तु इदं †महत्तया [एव] प्राप्तव्यम्। क्षुद्रकेण हि केनापि प्रक्रममाणेन शक्यः विपुलोऽपि स्वर्गः आराधयितुम्। एतस्मै अर्थाय च श्रावणं कृतं क्षुद्रकाः च उदाराः च प्रक्रमन्तां इति। अन्ताः अपि च जानन्तु, अयं प्रक्रमः किमिति चिरस्थितिकः स्यात्। अयं हि अर्थः वर्धिष्यते, वाढ़ं वर्धिष्यते, विपुलं च वर्धिष्यते, अवरार्ध्येन द्व्यर्धं वर्धिष्यते। इमं च अर्थं पर्वतेषु लेखयत परत्र इह च। सति शिलास्तंभे, शिलास्तंभे लेखितव्यः इति। एतेन च व्यंजनेन यावत्कः तावकः आहारः सर्वत्र विवासितव्यमिति। व्युष्टेन श्रावणं कृतं २५६ सत्र-विवासात्।

---

* राव साहेव पं० कृष्ण शास्त्रीने इसे "अर्द्धतृतीयाणि" का अपभ्रंश माना है ("The new Asokan edict of Maski", Hyderabad Archaelogical series No, 1)

† "महात्मनेव" अथवा "महत्वेव"

हिन्दी-अनुवाद।

उद्योगका फल[१]।

देवताओंके प्रिय[२] इस तरह कहते हैं:—ढ़ाई वर्षसे अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ पर मैंने अधिक उद्योग नहीं किया, किन्तु एक वर्षसे अधिक हुए जबसे मैं संघमें आया हूँ

टिप्पणियां।

१ रूपनाथ वाला प्रथम लघु शिलालेख उत्तरी भारतके तीनों प्रथम लघु शिला-लेखोंमें सबसे अधिक सुरक्षित अवस्थामें है। उत्तरी भारतके बाकी दो लघु शिला लेख बैराट और सहसराममें हैं।

२ अशोकके और लेखोंमें 'पियदासि" अर्थात प्रियदर्शी शब्द भी मिलता है। मास्कीके प्रथम लघु शिला-लेखको छोड़ कर और किसी लेखमें अशोकका नाम नहीं पाया जाता। पियदासि या प्रियदर्शी अशोकका दूसरा नाम नहीं बल्कि एक सम्मान-सूचक पदवी थी। अष्टम शिला-लेखसे सूचित होता है कि "देवानं पिया" (बहुवचन) और "राजानो" (बहुवचन) एक ही अर्थमें प्रयुक्त हुए हैं अर्थात् "देवानां प्रिय" अशोकका नाम नहीं बल्कि एक पदवी थी जिसे बौद्ध राजा अपने नामके पहले

लगाते थे (देखिये Indian Antiquary 1891p. 231; J. R. A. S. 1901 p. 577) इसका अर्थ वही है जो अंगरेज़ीमें "His Gracious Majesty" या "His Majesty" का है। अशोकके लेखोंमें "देवानं पिय पियदसि" के कई पाठान्तर पाये जाते हैं। किसी लेखमें केवल "देवानं पिय" किसीमें केवल "पियदसि राजा" किसीमें "राजा पियदसि" और किसी किसीमें पूरा "देवानं पिय पियदसि" मिलता है। बौद्ध साहित्यमें "देवानं पिय" का जो अर्थ है वही अर्थ संस्कृत साहित्यमें नहीं है। संस्कृतमें "देव-प्रिय" शब्दके निम्नलिखित कई अर्थ दिखलायी पड़ते हैं:—
(१) देवताओंके प्रिय अर्थात् महादेव
(२) देवताओंका प्रिय अर्थात् उनका आहार (छाग या बकरा) (३) पशु-तुल्य या मूर्ख (४) गृह-त्यागी या संन्यासी। इनमेंसे पहले तीन अर्थ अशोकके लिये विशेषण रूपसे प्रयुक्त नहीं हो सकते। चौथा अर्थ भी बहुत अच्छा नहीं जंचता। पाणिनिका एक सूत्र "षष्ठ्या आक्रोशे" है। इस सूत्रका अर्थ यह है कि आक्रोश या घृणा प्रगट करनेमें षष्ठी विभक्तिका लोप नहीं होता। अलुक् समासके प्रकरणमें इस सूत्रका उदाहरण कात्यायनने इस प्रकार दिया है—"देवानां प्रिय इति च मूर्खे" अर्थात् देवानां प्रियका अर्थ मूर्ख है। भट्टोजी दीक्षितने इस पर अपनी सिद्धान्त-कौमुदीमें लिखा है कि "अन्यत्र देव प्रियः" अर्थात् मूर्खके अर्थमें "देवानां प्रियः" इस रूपमें अलुक् समास होता

तबसे मैंने अच्छी तरह उद्योग किया है । इस बीच जम्बूद्वीप[3] में जो देवता सच्चे माने जाते थे

है पर अन्यत्र अर्थात् साधु अर्थमें "देव-प्रियः" इस रूपमें षष्ठी तत्पुरुष समास हो जाता है। यदि "देवानं पिय" इस पदका पशुतुल्य अथवा मूर्ख राजा प्रियदर्शी अशोक यह अर्थ किया जाय तो उचित न होगा। अशोकके पौत्र दशरथने भी अपनेको "देवानं पिय" इस नामसे लिखा है। सिंहल या लंका देशका बौद्ध राजा तिष्य भी "देवानं पिय तिस्ये" इस नामसे विख्यात था। उसकी यह उपाधि इतनी प्रसिद्ध थी कि कात्यायनने अपने पाली व्याकरणमें उदाहरणके तौर पर लिखा है—"क्व गतासि त्वं देवानं पिय तिस्य" अर्थात् "देव-प्रिय तिष्य तुम कहां गये थे।" अन्य तीन बौद्ध राजाओंने भी इस उपाधिको ग्रहण किया था। इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह उपाधि उनके धर्म-गौरवकी सूचक थी। जिस प्रकार इंगलैंडके राजा अपने नामके आगे " Defender of the Faith" (धर्म-रक्षक) यह उपाधि लगाते हैं उसी तरह बौद्ध राजा भी अपना धार्मिक गौरव प्रगट करनेके लिये "देवानां प्रियः" यह पदवी अपने नामके पहिले लिखते थे। ऐसा मालूम पड़ता है कि बादको बौद्ध धर्मके विद्वेषियोंने अपने लेखों और ग्रंथोंमें इन दोनों शब्दोंको निन्दासूचक अर्थमें प्रयोग करना आरम्भ किया।

३ जम्बूद्वीपः—पुराणोंमें दिये गये एक महाद्वीपका नाम। यहां पर यह भारतवर्षके लिये प्रयुक्त हुआ है।

वे अब झूठे सिद्ध कर दिये गये हैं[४] । यह उद्योगका फल है । यह (उद्योगका फल)

---

४ सिलवैं लेवी (Sylvain Levi) नामी एक फ्रांसीसी विद्वान्ने इस वाक्यका अर्थ इस प्रकार किया है—"इस बीच जम्बूद्वीपमें जो राजा अब तक (मनुष्योंके साथ) नहीं मिलते जुलते थे वे अब मिलने जुलने लगे हैं" । सिलवैं लेवी महाशय "देव" शब्दको देवताओंके अर्थमें नहीं बल्कि राजाओंके अर्थमें और "मिसा" शब्दको मृषा अर्थात् झूठे-के अर्थमें नहीं बल्कि मिश्राः अर्थात् "मिल जुल गये" इस अर्थमें लेते है । उनका कहना है कि संस्कृत मृषाका प्राकृत अपभ्रंश मिसा नहीं बल्कि मुसा होता है और संस्कृत मिश्राः का अपभ्रंश मिसा होता है (देखो Journal Asiatique, Jan.-Feb., 1911) इस पर जर्मन विद्वान् हुल्श (Hultzsch) ने लिखा कि अशोकके लेखोंमें कहीं भी देव शब्द राजाके अर्थमें नहीं प्रयुक्त हुआ, इस लिये लघु शिला-लेखोंमें जहां कहीं देव शब्द आता है वहां उसका अर्थ देवता होना चाहिये । अतएव हुल्श साहबने इस वाक्यका अर्थ इस प्रकार किया है—"इस बीच जम्बूद्वीपमें जो देवता अब तक मनुष्योंके साथ नहीं मिलते जुलते थे वे अब (मनुष्योंसे) मिलने जुलने लगे हैं" (देखो J. R. A. S. 1911, p. 1114) फ़्लीट साहबने अपने एक लेखमें लिखा है कि इस वाक्यसे अशोकका कदाचित् यह तात्पर्य

केवल बड़े[५] ही लोग पा सकें ऐसी बात नहीं है, क्योंकि छोटे लोग भी उद्योग करें तो महान् स्वर्गका सुख पा सकते हैं । इस लिये यह अनुशासन लिखा गया[६] कि "छोटे और बड़े उद्योग करें" । मेरे पड़ोसी[७] राजा भी इस अनुशासनको जानें और मेरा उद्योग

रहा हो कि "अपने उद्योगसे जम्बूद्वीपको मैंने ऐसा आदर्श बौद्ध देश बना दिया है कि उसमें देवताओं और मनुष्योंमें कोई भेद नहीं रह गया है" (देखो J. R. A. S. 1911 p. 1100) श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकरने जुलाई १९१२ के "इन्डियन ऐन्टिक्वेरी" में लिखा है कि अशोकका तात्पर्य इस वाक्यसे कदाचित् यह रहा हो कि "मैंने लोगोंको धर्मकी शिक्षा देकर पुण्यवान् और देवताओं-की तरह स्वर्गके अधिकारी बना दिया है जिससे देवता और मनुष्य एक दूसरेके तुल्य हो गये हैं" (देखो Indian Antiquary, 1912 p, 170) ।

५ बड़े लोग जैसे कि अशोक ।

६ लेखमें "कटे" अर्थात् "कृतम्" यह शब्द आया है पर ब्रह्मगिरि वाले लघु शिला-लेखमें "सावापिते" अर्थात् "श्रावितम्" यह शब्द दिया गया है । इस वाक्यमें जिस अनुशासनका उल्लेख किया गया है वह यहीं पर दे दिया गया है अर्थात्—"खुदका च उडाला च पकमंतु ति" अर्थात् "छोटे और बड़े उद्योग करें ।

७ पड़ोसी राजा जैसे चोड़, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी (लंका) के राजा और अन्तियक (Antiochos)

चिरस्थित रहे। इस बातका विस्तार होगा और अच्छा विस्तार होगा, कमसे कम डेढ़[8] गुना विस्तार होगा। यह अनुशासन यहां[9] और दूरके प्रान्तोंमें पर्वतोंकी शिलाओं[10] पर लिखा जाना चाहिये; जहां कहीं शिलास्तंभ हो वहां यह अनुशासन शिलास्तम्भ पर भी लिखा जाना चाहिये। इस[11] अनुशासनके अनुसार जहां तक आप लोगोंका अधिकार हो वहां

आदि यवन राजा जिनका उल्लेख द्वितीय "चतुर्दश-शिलालेख" में किया गया है।

८ डेढ़ गुना अर्थात् बहुत अधिक। हिन्दीमें भी कहावत है "दिन दूना रात चौगुना"।

९ "यहां" अर्थात् पाटलिपुत्रके समीप वाले प्रान्तोंमें। "दूरके प्रन्तोंमें" जैसे कि दक्षिण प्रान्तमें मैसूरके पास सिद्धपुर, जतिंग रामेश्वर और ब्रह्मगिरि इन तीन स्थानोंमें और निज़ामकी रियासतमें मास्की नामक स्थानमें लघु शिला-लेख पाये जाते हैं।

१० यह लेख सात स्थानोंमें शिलाओं पर खुदा हुआ मिलता है पर शिलास्तम्भमें खुदा हुआ यह लेख अभी तक कहीं भी नहीं मिला।

११ "इस अनुशासनके अनुसार जहां तक आप लोगोंका अधिकार हो वहां वहां आप लोग सर्वत्र इसका प्रचार करें" इस वाक्यका अर्थ सारनाथ वाले स्तम्भ-लेखसे स्पष्ट हो जाता है। इस वाक्यसे सूचित होता है कि यह लेख राज्यके अफ़सरोंको सम्बोधन करके लिखा गया था। मूलमें यह वाक्य इस प्रकार

वहां आपलोग सर्वत्र इसका प्रचार करें। यह[12] अनुशासन (मैंने) उस समय लिखा जब (मैं) प्रवास कर रहा था और अपने प्रवासके २५६ वें पड़ावमें था।

है:—"एतिना च वयजनेना यावतक तुपक अहाले सवर विधसेतवायु ति'। "एतिमा वयजनेना" अर्थात् "एतेन व्यंजनेन" का अर्थ है "इस व्यंजन अर्थात् अनुशासन या आज्ञाके अनुसार" और 'अहाले" का अर्थ है आहार अर्थात् भोग या भोजन अथवा "आयका द्वार" अर्थात् जहां जहां अधिकार हो और जहांसे कर मिलता हो (देखो Indian Antiquary 1908 p. 20-23)

१२ प्रथम लघु शिला-लेखके इस अंशका अर्थ भिन्न भिन्न विद्वानोंने भिन्न भिन्न रूपसे किया है। इस अंशके बारेमें इन विद्वानोंके मतोंको संक्षेपमें फ़्लीट साहबने अपने एक लेखमें दे दिया है जो १९०४ के जे० आर० ए० एस० नामक पत्रिकामें छपा है (देखो J. R. A. S. 1904 p. 1-26) इस शिला लेखका यह अंश बड़े महत्वका है। "व्युठेना सावने कट्टे २५६ सतविवासात" इस वाक्यमें 'व्युठेना" और 'सत विवासा" इन दोनों शब्दोंके अर्थमें विद्वानोंका बड़ा मतभेद है। "व्युठेना" संस्कृत व्युष्टेन और "विवासा" संस्कृत विवासात्का अपभ्रंश है। व्युष्ट यह शब्द विपूर्वक वस् धातुमें क्त प्रत्यय लगानेसे सिद्ध होता है और विवास

शब्द विपूर्वक वस् धातुमें घञ् प्रत्यय लगानेसे बनता है। पहिले ब्युलर, फ़्लीट, आदि कई विद्वान् व्युष्टेनका अर्थ लगाते थे कि "जो चला गया हो अर्थात् बुद्ध"। अब प्रायः सब विद्वान् मानने लगे हैं कि व्युष्ट शब्दका अर्थ "विवासित" अथवा "प्रवासित" अथवा "प्रोषित" है और यह शब्द बुद्धके लिये नहीं बल्कि अशोकके लिये आया है। पहिले ब्युलर, फ़्लीट आदि विद्वान् विवासका अर्थ "बुद्ध भगवानका निर्वाण" करते थे अर्थात् उनके मतमें यह शिला-लेख बुद्ध-निर्वाणके २५६ वें सालमें लिखा गया किन्तु इस मतका पूरा पूरा खंडन आज कल हो गया है। टामस साहबने शिला लेखके इस अंशकी जो व्याख्या की है उससे इसका अर्थ बहुत कुछ साफ़ हो गया है। सहसराम वाले प्रथम लघु शिलालेखमें "दुवे सपंनालातिसता" अर्थात् 'द्वे षट्पञ्चाशे रात्रिशते" यह लिखा है। यहां पर रात्रिसे केवल रातका ही अर्थ नहीं बल्कि दिन और रात दोनोंका अर्थ लेना चाहिये। सहसराम वाले शिला-लेखके इस उद्धृत किये हुए अंशसे रूपनाथ वाले शिलालेखमें जो २५६ संख्या दी हुई है उसका अर्थ साफ़ हो जाता है अर्थात् "हमारे विवास या प्रवास की २५६ वीं रातको यह शिला-लेख लिखा गया"। "सत विवासा" में जो सत शब्द है उसके भिन्न २ दो अर्थ टामस साहबने किये हैं अर्थात् एक अर्थ "शत"=१००और दूसरा अर्थ "सत्र"= ठहरनेका स्थान या पड़ाव। इस लिये

"२५६ सत-विवासा" का अर्थ या तो "२५६ वें पड़ावसे" या "प्रवासके २५६ वे दिनको" यह होगा। (देखो Indian Antiquary 1908 p. 20-23; Journal Asiatique, 1910 p. 507-22) फ्लीट साहबका मत इससे बिल्कुल भिन्न है। उनका मत संक्षेपमें हम यहां पर लिखते हैं:—दीपवंश और महावंशमें लिखा है कि भगवान् बुद्धका निर्वाण होनेके २१८ वर्ष बाद महाराज अशोक राज-सिंहासन पर बैठे थे। यह भी एक प्रकार से सर्व-सम्मत है कि वे ३७ वर्ष तक मगधके सिंहासन पर स्थित थे। २१८ में ३७ जोड़नेसे २५५ होता है। बुद्ध-निर्वाणके २५५ सालके बाद सातवें या आठवें महीनेमें महाराज अशोकने राज-सिंहासन छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण की होगी; तभी वे संघमें भी आये होंगे। इस प्रकारसे उन्होंने ८ मास १६ दिन पूरा होनेपर २५६ वीं रातको यह शिला-लेख लिखवाया होगा। अब प्रश्न यह होता है कि प्रव्रज्या ग्रहण करके महाराज अशोक कहां निवास करते थे। ब्रह्मगिरि और सिद्धपुरके लेखोंसे इस प्रश्नका समाधान हो जाता है। उन दोनों लेखोंमें सुवर्णगिरिका नाम आया है। इसी सुवर्णगिरिसे यह दोनों शिला-लेख प्रकाशित किये गये थे। ब्रह्मगिरि और सिद्धपुरके लेखोंसे पता लगता है कि राजपुत्र और महामात्योंने महाराज अशोककी ओरसे इन दोनों शिला-लेखोंको प्रकाशित किया था। इससे अनुमान किया जाता है कि महाराज अशोक इस समय राज-कार्य

छोड़ कर सुवर्णगिरिके किसी संघमें रहते थे। कोई कोई विहार प्रान्तके वर्तमान सोनगिरिको प्राचीन सुवर्णगिरि कहते हैं। वर्तमान सोनागिरि बौद्धोंका तीर्थ-स्थान भी है। किसी समय इसी स्थानपर प्राचीन राजगृह नगर बसा हुआ था। संभव है पवित्र स्थान समझ कर महाराज अशोकने इसी जगह अपने जीवनका अवशिष्ट भाग विताया हो और इसी सुवर्णगिरिसे अपने प्रवासकी २५६ वीं रातको रूपनाथ तथा सहसराम आदि स्थानोंमें शिला-लेख प्रकाशित किये हों। किसी किसीका मत है कि यह सुवर्णगिरि विहारमें नहीं बल्कि दक्षिणमें किसी स्थानपर था। एक प्रश्न यह भी उठता है कि इस लेखमें २५६ वीं रात्रिका विशेष रूपसे उल्लेख करनेकी क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यह है कि प्रवासकी २५६ वीं रात या २५६ वें दिनको बुद्ध भगवान्के निर्वाणसे २५६ साल बीत चुके थे। बुद्ध भगवान्के निर्वाणसे २५६ साल पूरे होनेकी वर्ष-गांठ मनानेके लिये अशोकने लघु शिला-लेख खुदवाये थे। इस लिये यह सिद्ध होता है कि इस शिला-लेखमें २५६ की संख्या इस बातकी सूचक है कि बुद्ध भगवान्का निर्वाण अशोकके २५६ साल पहिले हुआ था। (देखो J. R.A. S. 1910 p. 1301-8; 1911 p. 1091-1112)

हुल्श और फ़्लीट साहबका मत है कि इस लेखका 'व्युठेना" से लगाकर "सत विवासात" तक जो अंतिम वाक्य है

यह अशोकके लेखका अंश नहीं है बल्कि जिन राज-कर्मचारियोंके हाथमें इस लेखके लिखनेका काम सुपुर्द था उन्हीं लोगोंने लेखके अन्तमें इसे जोड़ दिया था, क्योंकि यह अंतिम वाक्य भी यदि अशोकका लिखा होता तो उसमें "मे" या "मया" अशोकने अवश्य लिख दिया होता । (देखो J. R. A. S. 1909. p730 ; p.994.)

अशोकने बौद्ध धर्मको अपने जीवनके प्रथम भागमें ग्रहण किया या अंतिम भागमें, इस विषय पर भी भिन्न २ विद्वानोंका भिन्न २ मत है। अशोकके लेखोंसे प्रमाण संग्रह करके कुछ विद्वानोंने सिद्ध किया है कि राज-सिंहासनपर आनेके नवम वर्षमें कलिंग-विजय कर लेनेपर महाराज अशोकने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। दूसरे पक्षके विद्वानोंका मत है कि अशोकने अपने राज्यकालके शेष भागमें अर्थात् राज सिंहासनपर आनेके ३० या ३२ साल बाद बौद्ध मतका अवलम्बन किया था। सेना, टामस और विन्सेन्ट स्मिथका मत है कि अशोकने अपने राज्यकालके प्रथम भागमें बौद्ध धर्म ग्रहण किया। ब्युलर और फ़्लीट ऊपर लिखे हुए दूसरे मतके पोषक हैं।

ब्रह्मगिरिका प्रथम लघु शिला-लेख

[ब्र० = ब्रह्मगिरि; सि० = सिद्धपुर; ज० = जतिंग रामेश्वर]

मूल

(१) सुवंरणगिरीते अयपुतस महामाताणं च वचनेन इसिलसि महामाता आरोगियं वतविया हेवं च वतविया [।] देवाणं पिये आणपयाति[क] [।]

(२) अधिकानि अढातियानि वसानि य हकं.........नो तु खो बाढ़ं पकंते हुसं [।] एकं सवछरं सतिरेके तु खो संवछरं

(३) यं मया संघे उपयीते बाढं च मे पकंते [।] इमिना चु कालेन अमिसा समाना मुनिसा जंबुदीपासि

पाठान्तर

क, सि० "हेवं आह" ।

(४) मिसा देवहि [।] पकमस हि इयं फले [।] नो हीयं सक्ये महात्पेनेव पापोतवे [।] कामं तु खो खुदकेनापि

(५) पकममिणेणा विपुले स्वगे सक्ये आराधेतवे [।] एतायठाय इयं सावणे सावापितेख [।]

(६) ....महात्पा च इमं पकमेयुति अंता च मे जानेयु चिराठितीके च इयं

(७) प[कमे होतु] [।]इयं च अठे वढिसिति विपुलं पि च वढिसिति अवरधिया दियाढियं

(८) [वढ़ि] सिति [।] इयं च सावणे सावपते व्यूथेन २५६ [।]

पाठान्तर

ख. सि० "सावित" ।

संस्कृत-अनुवाद ।

सुवर्णगिरितः आर्यपुत्रस्य महामात्यानां च वचनेन इसिले महामात्याः आरोग्यं वक्तव्याः एवं च वक्तव्याः । देवानां प्रियः आज्ञापयति—अधिकानि अर्धतृतीयानि वर्षाणि यत् अहं [उपासकः अभवं] न तु खलु बाढं प्रक्रान्तः । अभूवं एकं संवत्सरं । सातिरेकः तु खलु संवत्सरः यत् मया संघः उपेतः । बाढं च मया प्रक्रान्तम् । अमुना तु कालेन अमृषा समानाः मनुष्याः जम्बूद्वीपे मृषा देवैः । प्रक्रमस्य हि इदं फलं । नहि इदं शक्यं महात्मनैव प्राप्तुम् । कामं तु खलु क्षुद्रकेणापि प्रक्रममाणेन विपुलः स्वर्गः शक्यः आराधयितुम् । एतस्मै अर्थाय इदं श्रावणं श्रावितम् । [क्षुद्रकाः च] महात्मानः च इमं प्रक्रमेरन् अन्ताः च मे जानीयुः चिरस्थितिकः च अयं [प्रक्रमः भवतु ।] अयं च अर्थः वर्धिष्यते, विपुलं अपि च वर्धिष्यते, अवराध्यैन द्व्यर्धं वर्धिष्यते । इदं च श्रावणं श्रावितं व्युष्टेन २५६ ।

हिन्दी-अनुवाद[1]।

सुवर्णगिरिसे[2] आर्यपुत्र[3] (कुमार) और महामात्यों की ओरसे इसिलाके महामात्योंको आरोग्य

टिप्पणियां।

१ मैसूरकी रियासतमें सिद्धपुर, जतिंग रामेश्वर और ब्रह्मगिरि इन तीन स्थानों-में जो तीन लघु शिला-लेख हैं उनमेंसे ब्रह्मगिरि वाला शिला-लेख सबसे अधिक सुरक्षित अवस्थामें है। इन तीनों लेखोंकी भाषासे पता लगता है कि वे अशोक-साम्राज्यके दक्खिनी प्रान्त वाले राज-प्रतिनिधिकी ओरसे लिखे गये थे।

२ "सुवर्णगिरि" और "इसिला" यह दोनों स्थान वर्तमान समयमें कहां पर हैं इसका निश्चय अभी नहीं हुआ है। श्री व्युलर का मत था कि सुवर्णगिरि पश्चिमी घाटमें कहीं पर है। फ़्लीट का मत था कि बिहार प्रान्तमें पटना ज़िलेमें सोनगिरि नामक पर्वत ही प्राचीन सुवर्णगिरि है। फ़्लीट साहबका अनुमान था कि महाराज अशोक अपने अंतिम समयमें राज-कार्य छोड़ कर इसी सुवर्णगिरिके किसी संघमें रहते थे और यहींसे उन्होंने अपने प्रवासकी २५६ वीं रातको ब्रह्मगिरि आदि स्थानोंमें शिला-लेख प्रकाशित कराये थे। संभवतः इसिला नामी स्थान उत्तरी मैसूरमें सिद्धपुरके पास कहीं रहा होगा।

३ आर्यपुत्र अथवा कुमार कदाचित् अशोकके दक्खिनी प्रान्तका राज-प्रतिनिधि था।

कहना और यह सूचित करना कि देवताओंके प्रिय आज्ञा देते हैं कि अढ़ाई वर्षसे अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ परन्तु एक वर्ष। अधिक उद्योग नहीं किया। किन्तु एक वर्षसे अधिक हुए जबसे मैं संघम[४] आया हूं तबसे मैंने खूब उद्योग किया है। इस बीच जम्बूद्वीपमें[५] जो मनुष्य सच्चे माने जाते थे वे अब अपने देवताओंके सहित झूठे सिद्ध कर दिये गये हैं। यह उद्योगका फल है। यह (उद्योगका फल) केवल बड़ेही[६] लोग प्राप्त कर सकते हैं ऐसी बात नहीं है, क्योंकि छोटे लोग भी उद्योग करें तो महान् स्वर्गके सुखको पा सकते हैं। इस लिए यह अनुशासन लिखा गया कि छोटे और बड़े (इस उद्देशसे) उद्योग करें। मेरे पड़ोसी राजा भी इस अनुशासनको जानें और मेरा यह उद्योग चिरस्थित रहे। इस बातका विस्तार होगा और खूब विस्तार होगा, कमसे कम डेढ़गुना[७] विस्तार होगा। यह[८] अनुशासन (मैंने) आपने

४ "संघमें आया हूं"=बौद्ध संन्यासी या भिक्षु हुआ हूं।

५ जम्बूद्वीपके जिन मनुष्योंका उल्लेख यहां पर किया गया है वे ब्राह्मण लोग हैं जो भूदेव भी कहे जाते हैं। रूपनाथ वाले शिलालेखमें मनुष्योंका नहीं बल्कि देवताओंका उल्लेख है।

६ "बड़े लोग" जैसे कि अशोक।

७ "डेढ़ गुना" अर्थात् बहुत अधिक।

८ मूल लेखमें यह वाक्य इस प्रकार है:— "इयं च सावणे सावपते व्यूथेन २५६"। "व्यूथेन" संस्कृत व्युष्टेनका अपभ्रंश है

जो विपूर्वक वस् धातुमें क्त प्रत्यय लगानेसे बना है। पहिले व्युलर, फ़्लीट आदि विद्वानोंका मत था कि "व्युष्ट" शब्द बुद्ध भगवानके लिए आया है। वे लोग इसका शाब्दिक अर्थ यह करते थे कि "जो इस संसारसे चला गया हो या जिसने निर्वाण-पद प्राप्त कर लिया हो।" किन्तु अब प्रायः सब विद्वान् इस बातपर सहमत है कि व्युष्ट शब्दका अर्थ "विवासित" या "प्रवासित" अथवा 'प्रोषित' है और यह शब्द बुद्धके लिये नहीं बल्कि अशोकके लिये आया है। उसने अपने प्रवासके २५६ वें दिन या २५६ वें पड़ावसे यह लेख प्रचारित किया था।

मास्कीका प्रथम लघु शिला लेख

मूल

(१) देवानं पियस असोकस ....ढत

(२), नि वसानि यं अं सुमि बुं पा शके........तिरेके

(३)....मि संघं उपगते बा....मि उपगते [।] पुरे जंबु

(४)....सि [देवा हुसु] ते दानि मिसिभूता [।] इय अठे खुद

(५) के न हि धमयु तेन सके अधिगतवे न हेवं दखितावियं उडा

(६) लके व इम अधिगद्देया ति [।] खुदके च उडालकेक च वत-

(७) विया हेवं वे कलंतं भदके ठेति....तक च वाधि

(८) सिति चा दिय ढिय हेसाति [।]

संस्कृत-अनुवाद

देवानां प्रियस्य अशोकस्य [वचनेन एवं वक्तव्यं सातिरेकाणि] अर्ध-तृतीयाणि वर्षाणि यत् अहं अस्मि उपासकः [न खलु बाढं प्रक्रांतः।] साति रेकः [तु संवत्सरः यत] अस्मि संघं उपगतः बाढं [च अ] स्मि उपगतः। पुरा जाम्बूद्वीपे [ये अमृषाः देवाः अभूवन्] ते इदानीं मृषीभूताः। अयं अर्थः क्षुद्रकेण हि धर्मयुतेन शक्यः अधिगन्तुं। न एवं द्रष्टव्यं उदाराः एव इमं अधि-गच्छेयुः इति। क्षुद्रकाः च उदारकाः च वक्तव्याः एवं वै भद्रं कुर्वतः [अयं अर्थः चिरस्थितिकः च] वर्धिष्यते च द्व्यर्धं भविष्यति।

हिन्दी-अनुवाद[1]।

देवताओंके प्रिय अशोक[2] की ओर से ऐसा कहना:—अढ़ाई वर्षसे अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ हूँ पर अधिक उद्योग नहीं किया (पर) एक वर्षसे अधिक हुए जबसे मैं संघमें

टिप्पणियां।

१—यदि श्री ब्युलर का मत ठीक है कि सुवर्णगिरि पश्चिमी घाटमें कहींपर था तो संभव है मास्की हीके आस पास वह स्थान रहा हो। मास्कीमें बहुत सी प्राचीन सोनेकी खाने भी हैं इससे संभव है मास्कीके आस पासका स्थान सुवर्णगिरिके नामसे पुकारा जाता रहा हो। पर फ़्लीट का मत है कि सुवर्णगिरि दक्षिणमें नहीं बल्कि बिहार प्रान्तमें था। उनका कहना है कि आज कलके पटना ज़िलेमें जो सोनगिरि नामक पहाड़ी है वही प्राचीन सुवर्णगिरि है। मास्की निज़ामकी रियासतमें रायचूर जिलेमें है।

२—इस लेखका महत्व प्रधानतया इस बातमें है कि यह लेख अशोकके नामसे लिखा हुआ है। इससे पाहिले अशोकके जितने लेख मिले थे उनमेंसे किसीपर भी अशोकका नाम नहीं था। उन सबोंपर केवल "देवानं पिय" और

आया हूं, तबसे मैंने खूब उद्योग किया है। पहिले जम्बूद्वीपमें जो देवता थे वे अब मृषा[१] (झूठे) सिद्ध हो गये हैं। यह बात छोटे लोग भी, यदि धर्म करें तो, प्राप्त कर सकते हैं। यह न समझना चाहिये कि केवल बड़े लोगही यह कर सकते हैं। बड़े और छोटे सबोंसे यह कहना चाहिये कि "ऐसा करना भली बात है"। यह (उद्योग) चिरस्थित रहेगा और इसका विस्तार होगा, कमसे कम डेढ़गुना विस्तार होगा[४]।

"पियदासि" के नाम मिलते थे। फ्रांन्सीसी विद्वान सेना ने बौद्ध ग्रन्थोंका हवाला देकर इस बातको पूरी तरहसे सिद्ध कर दिया है कि "देवानं पिय" और "पियदासि" अशोक हीके लिए आये हैं और उसीके सूचक हैं। मास्कीके इस नये लेखसे अब इस बातमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता।

३—मूल लेखमें "मिसिभुता" (संस्कृत "मृषी भूताः") शब्द आया है। 'मृषीभूताः' शब्द 'च्वि'प्रत्यय लगानेसे बना है, जिससे सूचित होता है कि अशोकने पहिली बार जम्बूद्वीपके प्राचीन देवताओंको मिथ्या सिद्ध किया।

४ इस लेखमें लगभग वही सब बातें लिखी हुई हैं जो रूपनाथ और सहसरामके लेखोंमें मिलती हैं। रुपनाथ और सहसराम वाले लेखोंकी परीक्षा करके फ्रांसीसी विद्वान सेनाने यह सिद्धान्त निकाला है कि दोनों लेख अशोकके

सब लेखोंसे प्राचीन हैं। इस लिए मास्कीका लेख भी, जो इन दोनों लेखोंसे इतना मिलता जुलता है, उसी समयका अर्थात् राज्याभिषेकके बाद अशोकके प्रारंभिक राज्य-कालका होगा। पर जिस प्रकार रूपनाथ और सहसरामके लेखों में "व्यूथ" और २५६ की संख्या मिलती है उसी प्रकार मास्कीके लेखमें न तो "व्यूथ" शब्द आया है और न २५६ की संख्या ही मिलती है।

ब्रह्मगिरिका द्वितीय लघुशिला-लेख

मूल

(८) से हेवं देवानं पिये

(९) आह [।] मातापितिसु सुस्रूसितविये [।] हेमेव गरुत्वं प्राणेसु, द्रहियितव्यं [।] सचं

(१०) वतवियं [।] से इमे धंमगुण पवतितविया [।] हेमेव अंतेवासिना

(११) आचरिये अपचायितविये [।] ञातिकेसु, च कु यथारहं पवतितविये

(१२) एसा पोराणा पकिती दिघावुसे च [।] एस हेवं एस कटिविये

(१३) च [।] पडेन लिखितं लिपिकरेण [।]

संस्कृत-अनुवाद ।

तत् एवं देवानां प्रियः आह । मातापित्रोः शुश्रूषितव्यं, गुरुत्वं प्राणेषु दृढ़-यितव्यं, सत्यं वक्तव्यम् । ते इमे धर्मगुणाः प्रवर्त्तयितव्याः । एवमेव अन्ते-वासिना आचार्यः अपचेतव्यः । ज्ञातिकेषु च कुले यथार्हं प्रवर्त्तयितव्यम् । एषा पुराणी प्रकृतिः दीर्घायुषे च (भवति)। एतत् एवं एतत् कर्त्तव्यं च। पड़ेन लिखितं लिपिकरेण ।

हिन्दी–अनुवाद ।

"धम्म" के सिद्धान्त

देवताओंके प्रिय इस तरह कहते हैं:—माता और पिताकी सेवा करनी चाहिये। (प्राणियोंके) प्राणोंका आदर दृढ़ताके साथ करना चाहिये (अर्थात् जीव-हिंसा न करनी चाहिये), सत्य बोलना चाहिये, "धम्म" (धर्म्म) के इन गुणोंका प्रचार करना चाहिये। इसी प्रकार विद्यार्थीको आचार्यकी सेवा करनी चाहिये और अपने जाति भाइयोंके प्रति उचित बर्ताव करना चाहिये। यही प्राचीन (धर्मकी) रीति है। इससे आयु[2] बढ़ती है और इसीके

टिप्पणियां ।

१ द्वितीय लघु शिला-लख केवल उत्तरी मैसूरमें ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर और जातिंग रामेश्वर इन तीनों स्थानोंके प्रथम लघु-शिलालेखके नीचे लिखा हुआ मिलता है। इसकी लेख-शैली अशोकके और लेखोंकी शैलीसे भिन्न है। इस लेखकी शैली कुछ२ उपनिषदूसे मिलती जुलती है।

२ देखिये मनु-अध्याय २, श्लोक १२१—

अनुसार (मनुष्यको) चलना चाहिये ।

"अभिवादन-शीलस्य नित्यं वृद्धोप सेविनः
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशो-
बलम् ॥"

३ "लिपिकरेण" यह शब्द खरोष्ठी लिपिमें लिखा हुआ है। पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्तमें मानसेरा और शाहबाज़गढ़ीके जो चतुर्दश शिलालेख हैं वे भी इसी लिपि

पड नामक लिपिकर³ या (लेखक)ने यह लिखा ।

में लिखे हुए हैं। मालूम पड़ता है "पड" पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्तका निवासी था और उसने यह प्रगट करनेके लिए कि मैं दोनों अक्षरोंका लिखना जानता हूँ "लिपिकरेण" शब्दको खरोष्टी लिपि में लिख दिया ।

भाब्रू शिला-लेख ।

मूल ।

(१) पियदसि लाजा मागधं* संघं अभिवादनं† आहा [:] अपाबाधतं च फासु विहालतं चा [।]

(२) विदित वे भंते आवतके हमा बुधसि धंमसि संघसीति गलवे च पसादे च [।] ए केंचि भंते

(३) भगवता बुधेन भासिते सवे से सुभासिते वा ए चु खो भंते हमियाये दिसेया हेवं सधंमे

(४) चिलठितीके होसतीति अलहामि हकं तं वतवे [।] इमानि भंते धंमपलियायानि विनयसमुकसे

(५) अलियवसानि अनागतभयानि मुनिगाथा मोनेयसूते उपतिसपसिने ए चा लाघुलो [-]

* श्री हुल्श इसे "मागधे" पढ़ते हैं (J, R, A, S. 1909-p. 727)

† श्री हुल्श इसे "अभिवादेतूनं" पढ़ते हैं (J. R. A. S. 1909- 727)

(६) वादे मुसावादं आधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते एतान भंते धंमपालिया-यानि इछामि

(७) किंति[?] बहुके भिखुपाये च भिखुनिये चा अभिखिनं सुनयु चा उपधालेयेयु चा

(८) हेवं हेवा उपासका चा उपासिका चा [:] एतेनि भंते इमं लिखापयामि अभिहेतं म जानंतति।

संस्कृत-अनुवाद।

प्रियदर्शी राजा मागधं संघं अभिवादनं आह अपाबाधत्वं च भवतु विहारत्वं च। विदितं वो भदन्ताः यावत् अस्माकं बुद्धे धर्मे संघे इति गौरवं च प्रसादः च। यत् किंचित् भदन्ताः भगवता बुद्धेन भाषितं सर्वं तत् सुभाषितं एव। यत तु खलु भदन्ताः मया दिश्यते एवं सद्धर्मः चिरस्थितिकः भविष्यति इति अर्हामि तत् वक्तुं। इमे भदन्ताः धर्मपर्यायाः—विनय-समुत्कर्षः आर्यवंशाः अनागत-भयानि मुनिगाथा मौनेयसूत्रं उपतिष्यप्रश्नः एवं च राहुलवादः मृषावादं अधिकृत्य भगवता बुद्धेन भाषितः। एतान् भदन्ताः धर्मपर्यायान् इच्छामि किमिति बहवः भिक्षवः भिक्षुक्यः च अभीक्ष्णं श्रृणुयुः अवधारयेयुः च एवं एव उपासकाः च उपासिकाः च। एतेन भदन्ताः इदं लेखयामि अभिप्रेतं मे जानन्तु इति।

हिन्दी-अनुवाद[1]

अशोकके प्रिय बौद्ध ग्रंथ

प्रियदर्शी राजा मगधके[2] संघको अभिवादन—(पूर्वक संबोधन करके) कहते हैं कि (वे)

टिप्पणियां।

१ अशोकके लेखोंमें माब्रू शिला-लेख बड़े महत्वका गिना जाता है। क्योंकि यह अशोकके बौद्ध-धर्म ग्रहण करनेका बड़ा अच्छा प्रमाण है। इसमें बौद्ध धर्मके त्रिरत्न अर्थात् बुद्ध धर्म और संघ तथा बौद्ध धर्मके सात ग्रंथोंका उल्लेख है जिनकी ओर अशोक भिक्षुक और भिक्षुकी तथा उपासक और उपासिका सबोंका ध्यान विशेष करके खींचना चाहते थे। इस लेखसे यह बात भी सिद्ध होती है कि विक्रमसे पूर्व तीसरी शताब्दीमें बौद्ध धर्मके ग्रन्थ उसी नाम और रूपमें विद्यमान थे जिस नाम और रूपमें वे आजकल मिलते हैं।

२ 'मागधके' मागधं हुल्श साहेब 'मागध' के स्थानपर इसे 'मागधे' पढ़ते हैं और इसे "प्रियदर्शी, राजा"का विशेषण समझ कर कुल वाक्यका अर्थ इस प्रकार करते हैं–मगधके 'प्रियदर्शी राजा संघको अभिवादन पूर्वक संबोधन करके कहते हैं कि वे विघ्न-हीन और सुख से रहें।'

विघ्नहीन और सुखसे रहें:–हे भदन्तगण, आपको मालूम है कि बुद्ध, धर्म[३] और संघमें हमारी कितनी भक्ति और गौरव है। हे भदन्तगण जो कुछ भगवान् बुद्धने कहा है सो सब अच्छा कहा है। पर, भदन्तगण, मैं अपनी ओरसे (कुछ ऐसे ग्रंथोंके नाम लिखता हूं जिन्हें मैं अवश्य पढ़े जानेके योग्य समझता हूं)। हे भदन्तगण (इस विचारसे कि) "इस प्रकार सद्धर्म चिरस्थायी रहेगा" मैं इन धर्मग्रंथों[४] (का नाम लिखता हूं) यथाः—विनय समुत्कर्ष, आर्यवंश, अनागतभय, मुनिगाथा, मौनेयसूत्र, उपतिष्य-प्रश्न, राहुलवाद जिसे भगवान् बुद्धने झूठ बोलनेके बारेमें कहा है। इन धर्म-ग्रन्थोंको हे भदन्तगण मैं चाहता हूं कि बहुतसे भिक्षुक और भिक्षुकी बारबार श्रवण करें और धारण करें और इसी प्रकार उपासक तथा उपासिका भी (सुनें और धारण करें)। हे भदन्तगण मैं इसलिये यह (लेख) लिखवाता हूं कि लोग मेरा अभिप्राय जानें।

---

३ बुद्ध, धर्म और संघ यह तीनों बौद्धोंके त्रिशरण या त्रिरत्न कहलाते हैं। बौद्ध लोग अब तक लंकामें बौद्ध धर्मकी दीक्षा लेनेके समय "बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि" यह मन्त्र बोलते हैं।

४ यह सातो ग्रंथ कौन २ से हैं इसका पता अब निश्चित रूपसे लग गया है यथाः—

	पाली	संस्कृत	कहां मिला
(१)	विनय समुकसे—	विनय-समुत्कर्षः—	पाटिमोक्ख
(२)	अलियवसानि—	आर्यवंशाः--	अंगुत्तर निकाय द्वितीय भाग
(३)	अनागतभयानि-	अनागतभयानि --	अंगुत्तर निकाय, तृतीय भाग
(४)	मुनिगाथा--	मुनिगाथा--	सुत्तनिपात (मुनिसुत्त) प्रथम भाग
(५)	मोनेय सूते—	मौनेयसूत्रम्--	सुत्तनिपात (नालक सुत्त) तृतीय भाग
(६)	उपतिस पसिने--	उपतिष्यप्रश्नः--	सुत्तनिपात, चतुर्थ भाग
(७)	लाघुलोवादे—	राहुलवादः--	मज्झिम निकाय (राहुलोवाद सुत्त) प्रथम भाग

द्वितीय अध्याय।

चतुर्दश शिला-लेख।

[गि० = गिरनार; का० = कालसी; धौ० = धौली; जौ० = जौगढ़;
शा० = शाहबाज़गढ़ी; मा० = मानसेरा]

प्रथम शिला-लेख।

मूल

गि० (१) इयं धंमलिपी देवानं प्रियेन
का० (१) इयं धमलिपि देवानं पियेना
धौ० (१) इयं .... सि पवतासि [दे]वानं पि[ये]
जौ० (१) इयं धंमलिपी खपिंगलसि पवतासि देवानं पियेन
शा० (१) [अ]यं ध्रमदिपि देवन प्रिअस
मा० (१) अयि ध्रमदिपि [दे]वन [प्रि]येन

गि० (२) प्रियदसिना राञा लेखापिता [:-] इध न किं—(३)चि जीवं
का० पियदसिना लेखिता [:-] हिदा ना किछि जिवे
धौ० .... जिना [लिखा]...[:-] .... जीवं
जौ० पियदसिना लाजिना लिखापिता[:-] हिद नो किछि जीवं
शा० रञो लिखापितु [:-] हिद नो किचि जिवे
मा० [प्रिय]द्र[शिन] रन [लि]खपित[:-] हिद नो किचि जिवे

गि० आरभित्पा प्रजूहितव्यं (४) न च समाजो कतव्यो [।]
का० आलभि[तु] पजोहितविये (२) नो-पि-चा समाजे कटविये [।]
धौ० आलभितु पजोहि.......... (२) [नोपि]च समा.... .... [।]
जौ० आलभि[तु] पजोहितविये (२) [नो]पि च समाजे कटविये [।]
शा० आर[भि]त प्रयुहोतवे नो पि च समज कट[व] [।]
मा० आरभि[त] प्रयु (२) होतवियें नो पि च समज कटविय [।]

गि० वहुकं हि दोसं (५) समाजंहि पसति देवानं प्रियो

का० बहुका हि दोसा समाजसा देवानं पियै
धौ० ....
जौ० बहुकं हि दोसं समाजसि दखति देवानं पिये
शा० [व]हुक हि दोषं सम . स देवन प्रियो
मा० बहुक हि [दोष समसज देव]नं प्रिये

गि० प्रियदसि राजा [।] (६) अस्ति पि तु एकचा समाजा
का० पियदसी लाजा दखति [।] अथि पि चा एकतिया स[मा]ज
धौ० .... [।] ....[तिया] [स]माजा
जौ० पियदसी लाजा [।] अथि पि चु एकतिया समाजा
शा० प्रियद्रशि रय दखति [।] अस्ति पि च एकतिए समये
मा० प्रि[यद्रशि र]ज ... खति [।] अस्ति पि चु (३) एकतिय समज

गि० साधुमता देवानं (७) प्रियस प्रियदसिनो राञो [ ]
का० साधुमता देवानं पियसा पियदसिसा लाजिने

धौ॰ साधुमता देवा... .... (३) [पिय] दसिने [ला]जि[ने]
जौ॰ साधुमता देवानं पियस (३) पियदसिने लाजिने [।]
शा॰ स्रेस्टमति देवन प्रिअस प्रिअद्रशिस रञो [।]
मा॰ सधुमत देवन प्रियस प्रियद्रशिने रजिने [।]

गि॰ पुरा महानसंहि (८) देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो
का॰ (३-) पुले महानससि देवानं पियसा प्रियदसिसा लाजिने
धौ॰ .... मह........ ....नं .... पिय.... ....
जौ॰ पुलुवं महानससि देवानं पियस पियदसिने लाजिने
शा॰ पुर महनससि देवनं प्रिअस प्रिअद्रशिस रञो
मा॰ पुर महनससि देवन प्रि....स प्रि...शिस र(४)जिने

गि॰ अनुदिवसं ब-(९)हूनि प्राणसतसहस्रानि आरभिसु
का॰ अनुदिवसं बहुनि पानसहसानि आलभियिसु
धौ॰ ...न...... ...... पानसतस... [आ]लभियिसु

जौ० अनुदिवसं बहूनि पानसतसहसानि आलभियिसु
शा० अनुदिवसो बहुनि प्रणशतसहस्रानि अरभियिसु
मा० अनुदिवः बहुनि प्रणशतसहस्रानि अर...सु

गि० सूपाथाय [।] (१०) से अज यदा अयं धंमलिपी लिखिता
का० सुपठाये [।] से इदानि यदा इयं धंमलिपि लेखिता तदा
धौ० सूपाठाये [।] (४) से [अज] अदा इ[यं] धंमलिपी लिखिता
जौ० सूपठाये [।] (४) से अज अदा इयं धंमलिपी लिखता
शा० सुपठये [।] सो इदानि यद अय (३) ध्रमदिपि लिखित तद
मा० सुपथ्रये [।] से इ.नि ... अयि ध्रमदिपि लिखित तद

गि० ती एवं प्रा-(११)णा आरभरे सूपथाय द्वो मोरा
का० तिंनि येवा पानानि आलभियंति (४) दुवे मजुला
धौ० तिंनि ... .[ल]भिय ... .
जौ० तिंनि येव पान.नि आलभियंति दुवे मजूला

शा० त्रयो वो मगा हंअंति मजुर दुवि २
मा० तिनि ये. प्रगात्रि अ. भि. ति दुवे २ मजु-(५)र
गि० एको मगो [।] सोपि (१२) मगो न धुवो [।] एते पि
का० एके मिगे [।] सेपि च मिगे नो धुवे [।] एतानि पिच
धौ० ... ...
जौ० एके मिगे [।] सेपि चु मिगे नो धुवं [।] एतानि पि चु
शा० म्रुगो १ [।] सोपि म्रुगो नो ध्रुवं [ ] एत पि
मा० एके १ म्रिगे [।] सेपि चु म्रिगे नो ध्रुवं [।] एतानि पि चु

गि० त्री प्राणा पछा न आरभिसरे [।]
का० तिनि पानानि नो आलभियिसंति [।]
धौ० तिंनि पानानि पछा नो आलभियिसंति [।]
जौ० तिनि पानानि (५) पछा नो आलभियिसंति [।]
शा० प्रणात्रयो पछ न अरभिशंति [।]
मा० तिनि प्रणानि पछ नो अरभि...... [।]

संस्कृत-अनुवाद ।

इयं धर्मलिपिः देवानां प्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा लेखिता। इह न कश्चित् जीवः आलभ्य प्रहोतव्यः। नअपिच समाजः कर्त्तव्यः। बहुकान् हि दोषान् समाजस्य देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा पश्यति। सन्ति अपि च एकतये (एके) समाजाः साधुमताः देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः। पुरा महानसे देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः अनुदिवसं बहूनि प्राणशत सहस्राणि आलप्सत सूपार्थाय तत् इदानीं यदा इयं धर्मलिपिः लेखिता तदा त्रयः एव प्राणाः आलभ्यन्ते द्वौ मयूरौ एकः मृगः सः अपि च मृगः न ध्रुवः। एते अपि च त्रयः प्राणाः न आलप्स्यन्ते ।

हिन्दी-अनुवाद

जीव-हिंसाका त्याग और प्राणियोंका आदर।

यह धर्म-लेख[1] देवताओंके प्रिय प्रियदर्शीने लिखवाया है। यहां (इस राज्यमें) कोई जीव मारकर होम न किया जाय और न समाज[2] किया जाय। क्योंकि देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी

टिप्पणियां

१—धर्म-लेख:—धर्म संबंधी जो लेख अशोकने सर्वसाधारणके वास्ते प्रसिद्ध २ पर्वतोंकी शिलाओंपर और पत्थरके खम्भोंपर खुदवाये थे वही 'धर्म-लेखके' नामसे कहे गये हैं। इन लेखोंमें धर्म्म शब्दका उल्लेख बार बार हुआ है। विदेशी इतिहास लेखकोंने इसका अनुवाद Sacred Law अथवा Law of piety किया है। अशोकने राजके काममें सहूलियत और अपने प्रजाकी आध्यात्मिक उन्नतिके लिए इन लेखोंको सब जगह खुदवाया था।

२—समाज:—समाज शब्दसे अशोकका क्या तात्पर्य था यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। व्युलर साहबका मत है कि समाज एक प्रकारका मेला होता था जिसमें सब लोग जमा होकर खाते पीते थे। विन्सेन्ट स्मिथ साहबका मत है कि समाज एक प्रकारका उत्सव था जो कदाचित् सालमें एक बार पाटलिपुत्रमें मनाया जाता था और जिसमें नाच रंग गाना बजाना और खाना पीना किया जाता था ऐसा मालूम पड़ता है कि अशो-

राजा समाजमें बहुतसे दोष देखते हैं। तथापि एक प्रकारके ऐसे समाज हैं जिन्हें देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा पसन्द करते हैं। पहिले देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजाकी पाकशालामें प्रतिदिन कई सहस्त्र जीव सूप (शोरवा) बनानेके लिए मारे जाते थे, पर अबसे जब कि यह धर्म-लेख लिखा जा रहा है केवल तीनही जीव मारे जाते हैं (अर्थात्) दो मोर और एक मृग। पर मृगका मारा जाना नियत नहीं है। यह तीनों प्राणी भी भविष्यमें न मारे जायँगे।

कने इस उत्सवको बन्द करके दूसरे प्रकारके पवित्र और धार्मिक उत्सव प्रचलित किये। श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकरने महाभारत, हरिवंश और बौद्ध ग्रन्थोंसे प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि प्राचीन समयमें दो प्रकारके समाज या उत्सव होते थे। जिनमेंसे एक प्रकारके उत्सवोंमें केवल गाना बजाना और खेलकूद होता था और दूसरे प्रकारके समाजमें खाना पीना भी होता था और मांस भी पकाया जाता था।

अशोकके इस लेखमें दो प्रकारके समाजोंका उल्लेख किया गया है। कुछ समाज तो ऐसे थे जिनका होना उसने बिलकुल ही मना कर दिया था पर दूसरे प्रकारके समाज ऐसे थे जिन्हें वह बहुत पसन्द करता था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अशोकने उसी समाजका होना मना किया होगा जिसमें मांसके लिए पशुओंकी हिंसा होती थी। दूसरे प्रकारके समाजमें हिंसा नहीं होती थी, इसीलिये अशोकको वे पसन्द थे। ऐसा मालूम

पड़ता है कि अशोकने इन दूसरे प्रकारके समाजोंमें सुधार करके उन्हें धर्मका प्रचार करनेके लिए अपने मतलबका बना लिया था। चतुर्थ शिला-लेखमें "विमान", "हाथी", "आतिशबाजी" तथा "दिव्यरूप" इन सबोंका उल्लेख हुआ है। मालूम पड़ता है यह सब चीजें इन्हीं दूसरे प्रकारके "समाजो" में दिखलायी जाती थीं (Indian Antiquary *1913*. p. 255)। श्री टामस ने थोड़ेसे प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि समाज एक प्रकारका विस्तीर्ण अखाड़ा या मैदान था जिसके चारों ओर दर्शकोंके लिए मंच बने रहते थे। इस अखाड़ेमें मनुष्यों और पशुओंके बीच अथवा दो पशुओंके बीच द्वन्द्व-युद्ध होता था। इसी भयानक उत्सवको अशोकने अपने लेखमें मना किया है (J. R. A. S. 1914. p. 392)

श्रीयुत एन० जी० मजुमदार महाशयने सन् १९१८ के इण्डियन एन्टिक्वेरी नामक पत्रमें समाजका अर्थ "प्रेक्षणक" या "नाटक" किया है। इसके समर्थनमें उन्होंने कामसूत्र (पेज ४९-५१ चौखंभा सीरीज़) का प्रमाण उद्धृत किया है। जातकोंमें भी "समाज" नाटकके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है (देखये कणवेर जातक)। रामायणमें भी "समाज" कदाचित् इसी अर्थमें आया है। (देखो Indian Antiquary, *1918*. p. *221*)

इण्डियन एन्टिक्वेरीके दिसम्बर १९१९ वाले अंकमें परलोकवासी विन्सेन्ट स्मिथ साहब ने श्रीयुत एन० जी० मजुमदारके पूर्वोक्त मतको स्वीकार कर लिया है और इस बातपर ज़ोर दिया है कि समाजका अर्थ "नाटक" ही है (देखिये Indian Antiquary *1919*, p. 235)

द्वितीय शिलालेख

मूल

गि० (१)	सर्वत	विजितंहि	देवानं	प्रियस	प्रियदसिनो	राजो
का०	सवता	विजितासि	देवानं	पियसा	प्रियदसिसा	लाजिने
धौ० (१)	सवत	विजितासि	देवानं	पियस	प्रियदसिने (२)	....
जौ०	सवत	विजितासि	देवानं	पियस	पियदसिने	लाजिने
शा०	सत्रत्र	विजिते	देवनं	प्रियस	प्रिद्रशिस	
मा०	स. त्र	·जितासि	देवन	प्रियस	प्रियद्राशिस	रजिने
गि०(२)	एवमपि प्रचंतेसु	यथा	चोडा	पाडा	सतियपुतो	केतलपुतो
का०	येच अंता	अथा	चोडा	पंडिया	सातियपुतो	केललपुतो
धौ०	....	....	....	....	....	....

जौ० एवापि अंता अथा चोंडा पंडिया सतियपुते ....
शा० येच अंत यथ चोड (४) पंडिय सतियपुत्र केरलपुत्र
मा० येच अंत अथ (६) चोड पंडिय सतियपुत्र. केरलपुत्रे

गि० आतंब (३) पंणी अंतियको योनराजा ये वा पि
का० तंबपंनि (५) अंतियोगे नाम योनलाजा ये चा अंने
धौ० .... [अं]तियोके नाम योनलाजा (६) [ए] वा ..
जौ० .... अंतियोके नाम (७) योनलाजा एवापि
शा० तंबपंनि अंतियोको नम योनरज ये च अंजे
मा० .बपणि -तियोके नम योन .... येच ....

गि० तस अंतियकस सामीपं (४) राजानो सर्वत्र देवानं प्रियस
का० तसा अंतियोगसा सामंता लाजानो सवता देवानं पियसा
धौ० स अंतियो[क]स सामंता लाजाने सवत देवा पियेन
जौ० तस अंतियोकस सामंता लाजाने सवत देवानं पियेन

शा० तस अंतियोकस समंत रजनो सत्रत्र देवनं पियस
मा० -स ...... समंत रज, त्रत्र ...... प्रियस

गि० प्रियदसिनो राञो द्वे चिकीछ कता (५) मनुसचिकीछा च
का० पियदसिसा लाजिने दुवे चिकिसका कटा ... मनुसचिकिसा चा
धौ० पियदसिना ... ... च ... ...सा च
जौ० पियदसिना लाजि ... .चिकिसा च
शा० प्रियद्रशिस रञो दुवि २ चिकिस किट मनुशचिकिस ...
मा० प्रियद्रशिस रजिने(७)दुवे २ चिकिस कट मनुशचिकिस च

गि० पसुचिकीछा च [।] ओसुढानिच यानि मनुसोपगानि च
का० पसुचिकिसा चा [।] ओसधानि मुनिसोपगानि चा
धौ० प ... सा च [।] ... धानि (७) आनि मुनि[सो]पगानि
जौ०(८) पसुचिकिसा च [।] ओसधानि आनि मुनिसोपगानि
शा० पशुचिकिस च [।] [५] ओषुढानि मनुशोपकानि
मा० पशुचिकिस च [।] अषाढिनि मनु ... कानि च

गि०(६) पसोपगानि च यत यत नास्ति सर्वत्र हारापितानि च
का० पसोपगानि च अत ता नथि(६) सवता हालापिता चा
धौ० पसुओपगानि च अत त नथि स[व]त हालापिता च
जौ० पसुओपगानि च अत त नथि सव[त] ....
शा० पशोपकानि च यत्र यत्र नस्ति सवत्र हरोपित च
मा० प...कानि च यत्र यत्र नः त्रत्र हरपित च

गि० रोपापितानि च(७) मूलानि च फलानि च यत यत नास्ति
का० लोपातिता चा[।] एवमेवा मुलानि चा फलानि चा अत ता नथि
धौ० लोपापिता च मूला ....
जौ० .... च ... अत त नाथे
शा० बुत च ....
मा० रोपपित च(८) एवमेव मुलानि च फलानि च अत्र अत्र नस्ति

गि० सर्वत्र हारापितानि च रोपापितानि च [।] [८] पंथेसू कूपा च
का० सवता हालापिता चा लोपापिता चा [।] मगेसु लुखानि

धौ० बत हालापिता च(८)लोपापिता च [।] मगे[सु] ञ्पानानि
जौ० (९)सवतु हालापिता च लोपापिता च [।] मगेसु उदुपानानि
शा० कुप च
मा० ... अ हरापित च रोपापित च [।] मगेषु रुछ

गि० खानापिता व्रछा च रोपापिता प्रतिभोगाय पसुमनुसानं [।]
का० लोपितानि उदुपानानि चा खानापितानि पटिभोगाये पसुमुनिसानं [।]
धौ० खानापितानि लुखानि च लोपापितानि पटिभोगाये ....नं [।]
जौ० खानापितानि लुखानि च .... [।]
शा० खनपित प्रतिभोगये पशुमनुशनं [।]
मा० ...पित कु....... ... .तानि पटिभोगये पशुमनुशन [।]

संस्कृत-अनुवाद।

सर्वत्र विजिते देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः ये च अन्ताः यथा-चोडाः पाण्ड्यः सत्यपुत्रः केरलपुत्रः ताम्रपर्णी अन्तियोकः नाम यवन राजः ये च अन्ये तस्य अन्तियोकस्यः-सामन्ताः राजानः सर्वत्र देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः द्वे चिकित्से कृते मनुष्य-चिकित्सा च पशुचिकित्सा च। औषधानि मनुष्योपगानि च पशूपगानि च यत्र यत्र न सन्ति सर्वत्र हारितानि रोपितानि च। एवमेव मूलानि च फलानि च यत्र यत्र न सन्ति सर्वत्र हारितानि च रोपितानि च। मार्गेषु वृक्षाः रोपिता उद्पानानि च खानितानि प्रतिभोगाय पशुमनुष्याणाम्।

हिन्दी-अनुवाद

मनुष्यों और पशुओंके सुखका प्रबन्ध ।

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजाके राज्यमें सब स्थानोंपर तथा जो उनके पड़ोसी राज्य हैं वहां जैसे चोड[1], पांड्य[2], सत्य[3]पुत्र, केरल[4]पुत्र, ताम्र[5]पर्णीमें और अन्तियोक[6] नाम यवन

टिप्पणियां ।

१ चोड—प्राचीन चोड राज्य भारतवर्षके दक्षिण-पूर्वी प्रान्तमें था । वर्तमान नीलौर और पदूदूकोटाके बीचका प्रदेश चोड मंडल या कोरोमंडलके नामसे पुकारा जाता है । इसी चोडमंडलकी उत्तरी सीमा अशोक-साम्राज्यकी दक्षिणी सीमा थी ।

२ पांड्य—भारतवर्षके सबसे दक्खिनी प्रदेश-को पांड्य देश कहते थे । वर्त्तमान मदुरा और तिनीवल्ली जिलोंको प्राचीन पांड्य देशके नामसे पुकारते थे । ताम्रपर्णी नदीके तीरपर कोरकई (Korki) नगर इसकी प्राचीन राजधानी थी । पर बाद-को मदुरा इसकी राजधानी हो गयी ।

३ सत्यपुत्र—विन्सेन्ट स्मिथका मत है कि प्राचीन सत्यपुत्र वर्तमान कोंकणके उस भागको कहते हैं जहां तुलु भाषा बोली जाती है और वर्तमान बंगलौर

नगर जिसका केन्द्र है। दक्षिणाके जिन तीन तामिल राज्योंका नाम प्राचीन ग्रन्थों और शिला-लेखोंमें पाया जाता है वे चोड़, पाण्ड्य और चेर (केरल) के नामसे विख्यात हैं। सत्यपुत्रका नाम अशोकके शिला-लेखको छोड़कर और कहीं नहीं मिलता (Indian Antiquary, 1905, P. 248)

४ केरलपुत्र—मलाबारसे लगाकर कन्या कुमारी तक समग्र प्रदेश प्राचीन केरल-पुत्र राज्यके अन्तर्गत था और वञ्जि नामक नगरी इसकी प्राचीन राजधानी थी। इसका दूसरा नाम चेर भी था। सत्यपुत्र और केरलपुत्र राज्योंके बीचमें चन्द्रगिरि नदी पड़ती है (Indian Antiquary, 1905, P. 248)

५ ताम्रपर्णी—सिंहल या लंकाका प्राचीन नाम ताम्रपर्णी था। दीप वंश और महा वंश नामक लंकाके बौद्ध ग्रन्थोंसे पता लगता है कि वहांके राजा देवानं पिय तिस्स (देवानां प्रियः तिष्यः) और अशोकके बीचमें बहुत अधिक सम्बन्ध था। विन्सेन्ट स्मिथका कहना है कि ताम्रपर्णीसे लंकाका नहीं, बल्कि उस नदीका तात्पर्य है जो प्राचीनकालमें पांड्य देशसे हो कर बहती थी और आजकल तिनीवल्ली जिलेमें बहती है। ताम्रपर्णीका उल्लेख केवल द्वितीय और त्रयो दश शिलालेखमें आता है। उस समय अशोकका सम्बन्ध लंका द्वीपसे नहीं कायम हुआ था (देखिये Ind. Ant. 1918, P. 48)

६ अन्तियोक—सीरिया तथा पश्चिमीय एशियाका अधीश्वर ऐन्टिओकस द्वितीय (Antiochos) जो सेल्युकस नीकेटरका पोता था, उसने वि० पू० २०४ से लगाकर १८६ तक राज्य किया था।

राज और जो उस अन्तियोकके साम॰न्त (पड़ोसी) राजा हैं उन सबके देशोंमें देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजाने दो प्रकारकी चिकित्सा॰एक मनुष्योंकी चिकित्सा और दूसरी पशुओंकी चिकित्साका प्रबन्ध किया है। औषधियां भी मनुष्यों और पशुओंके लिए जहां २ नहीं थीं तहाँ तहाँ लायी और रोपी गयी हैं। इसी तरहसे मूल और फल भी जहां २ नहीं थे सब जगह लाये और रोपे गये हैं। मार्गोंमें पशुओं और मनुष्योंके आरामके लिए वृक्ष लगाये और कुँए खुदवाये गये हैं।

७—सामन्त—गिरनारके द्वितीय शिला लेखमें "सामन्त" के स्थानपर "समीप" शब्द आया है, जिससे मालूम पड़ता है कि "सामन्त राजा" का अर्थ यहां "अधीन राजा" नहीं, बल्कि "पड़ोसी राजा" है। ये पड़ोसी राजा वही थे जिनका उल्लेख त्रयोदश शिला-लेखमें आपको मिलेगा (Indian Antiquary 1905, P. 245)

८—चिकित्सा—श्री ब्युलरने चिकित्साका अर्थ "अस्पताल" किया है और उनके मतमें 'मनुष्य चिकित्साका' तथा पशु चिकित्सा' का अर्थ "मनुष्योंके लिए अस्पताल" तथा "पशुओंके लिए अस्पताल" है। पर वास्तवमें चिकित्साका अर्थ केवल "अस्पताल" नहीं, बल्कि "रोगियोंकी दवादारू इत्यादिका प्रबन्ध" है। चिकित्साके प्रबन्धमें अस्पताल भी आ जाता है। (Indian Antiquary, 1905, P. 245)

९—अशोकने पशुओं और मनुष्योंके आरामके लिए जो जो प्रबन्ध किया था उसका पूरा २ हाल सप्तम स्तम्भ-लेखमें दिया गया है।

तृतीय शिलालेख

मूल

गि०(१) देवानं प्रियो पियदसि राजा एवं आह [:-] द्वादसवासाभि-
का० देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं आहा[:-](७) दुवाडसवाभि-
धौ० देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं आहा[:-] दुवाडसवसाभि-
जौ० देवानं पिये पियदसी लाजा हेवं आहा[:-] दुवडसवसाभि-
शा० देवनं प्रियो प्रियद्रशि रज अहति[:-] बदयवषभि-
मा० देवन प्रिये प्रियद्राशि रज एव अह [:-] दुवडशवषभि-

गि० सितेन मया इदं आञपितं [:—] (२) सर्वत विजिते मम युता च
का० सितेन मे इयं आनपयिते [:—] सवता विजितसि मम युता
धौ० सितेन मे इयं आनप.... [:—] ....त विजितसि मे युता

जौ० सितेन मे इयं आ........[:—] ....
शा० सितेन ....[:—] सव- (६) विजिते युता
मा० सितेन मे अयं अञपयिते[:—] सत्रत्र विजितसि मे - ता

गि० राजुके च प्रादेसिके च पंचसु पंचसु वासेसु
का० लजुके पादेसिके पंचसु पंचसु वसेसु
धौ० लजुके [च].... [के] - (१०) पंचसु पंचसु वसेसु
जौ० ....च पादेसिके च (११) पंचसु पंचसु वसेसु
शा० रजुको प्रदेशिके पंचषु पंचषु ५ वषेषु
मा० रजु - प्रदशिके - चषु पंचषु ५ वषेषु

गि० अनुसं - (३) यानं नियातु एतायेव अथाय
का० अनुसयानं निखमंतु एतयेवा अथाये
धौ० अनुसयानं निखमावू अथा अंनाये
जौ० अनुसयानं निखमावू अथा अंन ये

शा० अनुसंयनं निक्रमतु एतिस
मा०(१०)अनुसयनं निक्रमंतु एतयेवं अथ्रये
गि० इमाय धंमानुसस्टिय यथा
का० इमाये धंमनुसथिया यथा
धौ० पि कंमने हेवं इमाये धंमानुथिये [:—]
जौ० पि कंमने ....
शा० वो करण इमिस ध्रमनुशस्ति यथ
मा० इमये ध्रमनुशस्तिये यथं
गि० अञा—(४) य पि कंमाय [:—] साधु मातरि च पितरि च सुसू सा
का० अनाये पि कंमाये [:—] साधु (८) मातपितिसु सुसुसा
धौ० साधु मातापितिसु सुसूसा
जौ० ....सा
शा० अञये पि क्रमये [:—] सधु मतपितुषु सुश्रुष
मा० अञाये पि क्रमने [:—] स मतपि...षु सुश्रुष

गि०	मितासंस्तुत	ञातीनं	ब्राम्हण—(५)	समणानं
का०	मितसंथुत	ञातिक्यानं चा	बंभन—	समणानं चा
धौ०	.... (११)	ञातिसु च	बंभन—	समनेहि
जौ०	मितसंथुतेसु (१२)	ञातिसु च	बंभन—	समनेहि
शा०	मित्रसंस्तुत—	ञतिकनं	ब्रमण—	श्रमणनं
मा०	मित्रसंस्तुत--(११)	ञतिकनं च	ब्रमण—	श्रमननं

गि०	साधु	दानं	प्राणानं	साधु	अनारंभो	अपव्ययता
का०	साधु	दाने	पानानं	अनालंभे		साधु अपवियाता
धौ०	साधु	दाने	जीवेसु	अनालंभे		साधु अपवियति
जौ०	साधु	दाने	जीवेसु	अनालंभे		साधु
शा०	स	....	प्र....	....		....(७) अपवयत
मा०	सधु	दने	प्रणान	अ-रभे		सधु अपवयत

गि० अपभांडता साधु [।] (६) परिसा पि युते आञपयिसाति

का० अपभंडता साधु [।] पलिसापि पि च युतानि गननसि
धौ० अपभंडता साधु [।] पलिसा पि च ....न [सि]
जौ० ....
शा० अपभंडत सधु [।] परि पि युतानि गणनसि
मा० अपभडत सधु [।] परिष पि च युतनि गणनासि

गि० गणनायं हेतुतो च व्यंजनतो च [।]
का० अनपयिसंति हेतुवता चा वियंजनते च [।]
धौ० युु[ता]नि आनपयिसति. तुते च वियंज....
जौ० .... (१३) हेतुते च वियजनते च [।]
शा० अणपेशंति हेतु [तो] च वजनतो च [।]
मा० अणपयिशति हेतुते च विय (१२)नते च [।]

संस्कृत-अनुवाद

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह । द्वादश वर्षाभिषिक्तेन मया इदं आज्ञप्तम् :—सर्वत्र विजिते मम युक्ताः रज्जुकाः प्रादेशिकाः पंचसु पंचसु वर्षेषु अनुसंयानं निष्क्रामन्तु एतस्मै एव अर्थाय अस्यै धर्मानुशिष्ट्यै यथा अन्यस्मै अपि कर्मणे । साधुः मातापित्रोः शुश्रूषा । मित्रसंस्तुतज्ञातीनां च ब्राह्मण श्रमणानां च साधु दानम् । प्राणानां अनालंभः साधुः । अल्पव्ययता अल्पभाण्डता साधुः । परिषदः अपि च युक्तान् गणने आज्ञापयिष्यन्ति हेतुतः च व्यंजनतः च ।

हिन्दी अनुवाद

धर्म प्रचारके लिए हर पांचवें वर्ष राज्य-कर्मचारियोंका दौरा।

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—राज्याभिषेकके १२ वर्ष बाद मैंने यह आज्ञा दी है:—मेरे राज्यमें सब जगह युत[1] (युक्त) लाजुक[2] (रज्जुक) और पोदसिक[3] (प्रादेशिक) पांच पांच वर्षपर इस कामके लिए (अर्थात्) धर्मानुशासनके लिए तथा और

टिप्पणियां।

१—युत (युक्त)—श्रीब्युलरने 'युत' का अर्थ राज़भक्त किया है और उसे "रज्जुक" तथा 'प्रादेशिक"का विशेषण मानकर मेरे "राजभक्त रज्जुक तथा प्रादेशिक" ऐसा अर्थ किया है। पर गिरनारके तृतीय शिलालेखमें युत तथा रज्जुक और रज्जुक तथा प्रादेशिकके बीचमें "चा" आया है जिससे मालूम पड़ता है कि युत' रज्जुकका विशेषण नहीं बल्कि एक संज्ञा है। युत शब्द मनुस्मृति और कौटिलीय अर्थशास्त्रमें भी कई बार आया है। हम यहांपर मनुस्मृतिका एक श्लोक उद्धृत करते हैं जिसमें युक्त आया है यथाः—"प्रणष्टा-धिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम्। यांस्तत्र चौरान् गृह्णीयात्तान् राजेभेन

घातयेत् ।" (अध्या० ८ श्लो० ३४) अर्थात् "खोया हुआ धन अगर मिल जाय तो राजपुरुष लोग उसे सुरक्षित रक्खें । उनमें से जो युक्त (राजपुरुष) उस धन को चुरावे उसे राजा हाथीसे मरवा डाले ।" युक्तका अर्थ कुल्लूकने मनुस्मृतिकी टीकामें राजपुरुष किया है। युक्त नामक राजपुरुषोंसे सावधान रहनेके लिए अर्थशास्त्रमें भी कहा गया है यथाः—"मत्स्या यथाऽन्तस्सलिले चरन्तो ज्ञातुं न शक्या सलिलं पिवन्तः। युक्तास्तथा कार्यविधौ नियुक्ताः ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः ॥" (२ अधि० ९ अध्याय) अर्थात् "जिस तरह यह नहीं मालूम हो सकता कि पानीके भीतर चलती हुई मछली पानी पी रही है या नहीं, उसी तरहसे इसका पता भी नहीं लग सकता कि राजकार्यमें लगे हुए युक्त (राजपुरुष) धन अपहरण कर रहे हैं या नहीं ।" इससे मालूम पड़ता है कि युत एक अमीरके छोटे अफ़सर थे जिनका काम राजकर वसूल करना और हिसाब किताब रखना था। वे आजकलके क्लर्क और छोटे छोटे पुलिस अफसरोंका भी काम करते थे। (Indian Antiquary 1908 P. 21; J. R. A. S. 1914 P. 347)

२—लाजुक(रज्जुक):—जैन-ग्रन्थोंके आधारपर श्रीब्यूलरका मत है कि रज्जुक लेखकका काम करते थे। आजकलके कायस्थ जो काम करते हैं वही काम उस समयके रज्जुक लोग करते थे। राज्य-शासनका सम्पूर्ण भार रज्जुक लोगोंपर ही था। उन्हीं लोगोंमेंसे ऊंचे ऊंचे ओहदे-

पर लोग चुन कर रक्खे जाते थे (3. D.M,G.Vol.XL. VII.P.16.4666)। रज्जुक लोगोंके क्या कर्तव्य थे यह चतुर्थ स्तम्भ-लेखमें दिया गया है।

३—पादेशिक (प्रादेशिक):—सेना (senart), कर्न तथा ब्युलरका मत है कि प्रादेशिक एक एक देशके राजा या शासक थे और आजकलके ठाकुर, राव, तथा रावल इत्यादिके पूर्वज थे (3. D. M. G XXX VII P. 106.)। विन्सेन्टास्मिथ का मत है कि प्रादेशिक एक एक जिले के अफसर थे और, ओहदेमें रज्जुकोंसे नीचे थे। प्रादेशिक शब्द युक्त तथा रज्जुकके साथ साथ एक ही स्थानपर आया है जिससे मालूम पड़ता है कि युक्त और रज्जुकोंकी तरह प्रादेशिक लोग भी सरदार या राजा नहीं बल्कि राज-कर्मचारी थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि "प्रादेशिक" शब्द प्रदेशसे बना है। प्रदेशका अर्थ प्रान्त या देशका एक बड़ा हिस्सा है। अर्थशास्त्रमें प्रदेष्टृ शब्द कई बार आया है जिसका अर्थ वही है जो, प्रादेशिकका है। अर्थशास्त्रसे पता लगता है कि 'प्रदेष्टृ' एक प्रकारके राज-कर्मचारी थे जिनका काम राजकर वसूल करना और प्रजा की रक्षा करना था (J. R. A. S. 1914 P. 383,)। विन्सेन्ट स्मिथने युक्त, रज्जुक और प्रादेशिकका अर्थ क्रमसे (Subordinate Officials (मातहत अफसर या कर्मचारी), Commissioner (कमिश्नर) और District officer (जिलेका अफ़सर) किया है।

और कामोंके लिए (सर्वत्र यह कहते हुए) दौरा[4] करें कि—"माता पिताकी सेवा करना तथा मित्र, परीचित, स्वजातीय ब्राह्मण और श्रमणको दान देना अच्छा है। जीवहिंसा न करना अच्छा है। थोड़ा[5] व्यय करना और थोड़ा[6] सञ्चय करना अच्छा है"। परिषद्[7] (अर्थात् बौद्ध संघ) भी युक्त (नामक कर्मचारियों)को भाण्डारका निरीक्षण करने और हिसाब किताबकी जांच करनेके लिए आज्ञा देंगे।

४—"अनुसंयानं निखयंतु" = "दौरा करें।" संस्कृतमें संयानंका अर्थ दौरा या भ्रमण है और उसके पूर्व 'अनु' उपसर्ग लगा देनेसे उसका अर्थ "एक स्थानसे दूसरे स्थानमें भ्रमण करना" हो जाता है। किसी किसीने अनुसंयानंका अर्थ "महासभा या साधारण सभा" किया है।

५—" अपव्ययता " = अल्पव्ययता = कम खर्च करना।

६—" अपभांडता " = अल्पभांडता = कम संचय करना।

७—इस अन्तिम वाक्यका अर्थ भिन्न भिन्न विद्वानोंने भिन्न भिन्न प्रकारसे किया है। श्रीसेनाने इसका अर्थ इस प्रकार किया है:—"परिषद् (भिक्षु गण) भक्त उपासकों (युते) को भाव (हेतु) और शब्द (व्यंजन) के अनुसार शिक्षा दें"। सेना साहबने युत (युक्त) शब्दको भक्त उपा-

सकके अर्थमें लिया है। श्रीब्यूलरने इस वाक्यका अर्थ इस प्रकार किया है:—"परिषद् (अर्थात् सब सम्प्रदायके भिक्षु और महन्त) वास्तविक भाव (हेतु) और अक्षर (व्यञ्जन) के अनुसार उचित शिक्षा (युक्तानि) देंगे"।

ब्यूलर (युक्त) को उचितके अर्थमें लिया है और हेतुको भाव तथा व्यंजनको अक्षरके अर्थमें लिया है। (Indian Antiquary 1908 P. 21; J. R. A. S. 1914 P. 388)

चतुर्थ शिला-लेख

मूल

गि०	(१)	अतिकातं	अंतरं	बहूनि	वाससतानि	वढितो	एव
का०		अतिकंतं	अंतलं	बहुनि	वससतानि	वढिते	व
धौ०		अतिकंतं	अंतलं	बहूनि	वससतानि	वढिते	व
जौ०		अतिकंतं	अंतलं	बहूनि	वससतानि	वढिते	व
शा०		अतिक्रतं	अंतरं	बहुनि	वषशतानि	वढितो	व
मा०		अतिक्रतं	अंतरं	बहुनि	वषश-नि	वढिते	वं

गि०	प्राणारंभो	विहिंसा	च	भूतानं	ञातीसु	(२)	असंप्रतिपती
का०	पानालंभे	विहिसा	चा	भुतानं	नातिनं		असंपटिपाति
धौ०	पानालंभे	विहिसा	च	भूतानं	नातिसु		असंपटिपाति

जौ० पानालंभे ....
शा० प्रणारंभो विहिस च भुतनं ञतिनं असंपटिपति
मा० प्रणंरभे विहिस च भुतनं ञतिन असपटिपति

गि० ब्राम्हणस्रमणानं असंप्रतीपती [।] ते अज देवानं प्रियस
का० समनबंभनानं असंपटिपति [।] से अजा देवानं पियसा
धौ० संमनबाभनेसु असंपटिपति [।] (१३) से अज देवानं पियस
जौ० .... [।] (१५) से अज देवानं पियस
शा० श्रमणब्रमणनं असंप्रटिपति [।] सो अज देवनं प्रियस
मा० श्रमणब्रमणनं असंपटिपति [।] (१३) से अज देवन प्रियस

गि० प्रियदसिनो राञो (३) धंमचरणेन भेरीघोसो अहो
का० पियदसिने लाजिने धंमचलनेना भेलिघोसे अहो
धौ० पियदसिने लाजिने धंमचलनेन भेलिघोसं अहो
जौ० पियदसिने लाजिने धंमचलनेन भेल...... ...

शा०	प्रियद्रशिस	रञो (८)	ध्रमचरणेन		भेरिघोष	अहो
मा०	प्रियद्रशिने	र-ने	ध्रमचरणेन		भेरिघोषे	अहो
गि०	धंमघोसो	विमान—	दसणा	च	हस्तिदसणा च	
का०	धंमघोसे	विपन—	दसना ...	(१०)	हथिनि ...	
धौ०	धंमघोसं	विमान—	दसनं		हथीनि	
जौ०	....	....	......		......	
शा०	ध्रमघोष	विमननं	द्रशनं		हस्तिनो	
मा०	ध्रमघोषे	विमन—	द्रशन		हस्तिने	

गि०	(४)	अगिखंधानि	च	अञानि	च	दिव्यानि		रूपानि	दसयिस्या
का०		अगिकंधानि		अंनानि	चा	दिव्यानि		लुपानि	दसयितु
धौ०		अगिकंधानि		अंनानि	च	दिवियानि	(१४)	लूपानि	दसयितु
जौ०		....		......	(१६)	दिवियानि		लूपानि	दसयितु
शा०		जोतिकंधानि		अञानि	चँ	दिवनि		रुपानि	द्रशयितु
मा०		अगिकंधानि		अञानि	च	दिवनि		रूपानि	द्रशेति

गि० जनं [।] मारिसे बहूहि वाससतेहि (५) न भूतपुवे
का० जनस [।] आदिसे बहुहि वससतेहि ना हुतपुलुवे
धौ० मुनिसानं [।] आदिसे बहूहि वससतेहि नो हूतपुलुवे
जौ० मुनिसानं [।] आदिसे बहूहि वससते ... .
शा० जनस [।] यदिश बहुहि वषशतेहि न भुतप्रुवे
मा० जनस [।](१४) अदिशे बहुहि वषशतेहि न हुतप्रुवे

गि० तारिसे अज वढिते देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञो
का० तादिसे अजा वढिते देवानं पियसा पियदसिने लाजिने
धौ० तादिसे अज वढि देवानं पियस पियदसिने लाजिने
जौ० ....
शा० तदिशे अज वढिते देवनं प्रियस प्रियद्रशिस रञो
मा० तादृशे अज वढिते देवन प्रियस : प्रियद्रशिने रजिने

गि० धंमानुसस्टिया अनारं (६) भो प्राणानं अविहीसा भूतानं

का० धंमनुसथिये अनालंभे पानानं आविहिसा भुतानं
धौ० धंमानुसथिया (१५) अनालंभे पानानं आविहिसा भूतानं
जौ० (१७) धंमानुसथिया अनालंभे पानानं अविहिसा भूतानं
शा० ध्रंमनुशस्तिय अनरंभो प्रणानं अविहिस भुतनं
मा० ध्रंमनुशस्तिय अनरभे प्रणानं अविहिस भुतन

गि० आतीनं संपटिपती ब्रह्मणसमणानं संपटिपती
का० नातिसु (११) संपटिपाति वंभनसमनानं संपटिपाति
धौ० नातिसु संपटिपाति मनबंभनेसु संपाटिपाति
जौ० नातिसु संप...... ....
शा० ञतिनं संप्रटिपाति ब्रमण–(८)श्रमणनं संपटिपाति
मा० ञतिन (१५) संपटिपाति बमणश्रमणनं संपटिपाति

गि० मांतरि पितरि सुस्रुसा थैर– सुस्रुसा [।] एस अजे च
का० मातापितिसु सुसुसा [।] एष चा अंने चा

धौ० मातिपितु- सुसूसा वु[ढ]— सुसूसा [।] एस अंने च

जौ० ....[।](१८)एस अंने च

शा० मतपितुषु वुढन सुश्रुष [।] एत अञं च

मा० मतपितुषु सश्रुष वुध्रनं सश्रुष [।] एषे अञे च

गि० बहुविधे धंमचरणे वढिते [,] वढयिसति चेव

का० बहुविधे धंमचलने वधिते [,] वाधियिसति चेवा

धौ० बहुविधे (१६) धंमचलने वढिते [,] वढयिसति चेव

जौ० बहुबिधे धंमचलने वढिते [,] वढयि... ...

शा० बहुविधं ध्रमचरणं वढितं [,] वढिशति चयो

मा० बहुविधे ध्रमचरणे वध्रिते [,] वध्रयिशति येव

गि० देवानं प्रियो (८) प्रियदसि राजा धंमचरणं इदं [।]

का० देवानं पिये पियदसि लाजा इमं धंमचलनं [।]

धौ० देवानं पिये पियदसी लाजा धंमचलनं इमं [।]

जौ० .... [।]
शा० देवनं प्रियस प्रियद्रशिस रञो ध्रमचरणो इम [।]
मा० देवन प्रिये (१६) प्रियद्रशि रज ध्रमचरण इम [।]

गि० पुत्रा च पोत्रा च प्रपोत्रा च देवानं प्रियस
का० पुता च कं नताले चा पनातिक्या चा देवानं पियसा
धौ० पुता पि च नाति पनाति च देवानं पियसं
जौ० ... ...
शा० पुत्र पि च कु नतरो च प्रनतिक च देवनं ...... प्रियस
मा० पुत्र पि च कु नतरो च पणातिक देवनं प्रियस

गि० पियदसिनो राञो (८) वधायिसंति इदं धंमचरणं
का० पियदसिने लाजिने (१८) पवढायिसंति चेव धंमचलनं
धौ० पियदसिने लाजिने (१७) पवढायिसंति येव धंमचलनं
जौ० (१९) पियदसिने लाजिने पवढ़ायिसंति येव धंमच ... ...

शा० (९) प्रियद्रशिस रञो वढेशंति - मचरणं
मा० प्रियद्राशिने रजिने पवढयिशंति ध्रमचरणा

गि० आव संवटकपा धंमम्हि सीलम्हि
का० इमं आव- कपं धंमसि सिलसि चा
धौ० इमं आ- कप धंम[सि] सीलासि च
जौ० ... ...
शा० इमं अव कपं ध्रमे ... शिले ... च
मा० इमं अव कपं ध्रमे शिले च

गि० तिस्टंतो धंमं अनुसासिसंति [।] (१०) एस हि सेस्टे
का० चिठितु धंमं अनुसासिसंति [।] एस हि सेठे
धौ० [चिठि]तु धंमं अनुसासिसंति [।] एस हि से[ठे]
जौ० ....
शा० (१०) तिस्तिति ध्रमं अनुशशिशंति [।] एत हि स्रेठं
मा० (१७) तिस्तितु ध्रमं अनुशशिशंति [।] एषे हि स्रेठे

गि० कंमे य धंमानुशासनं [।] धंमचरणे पि
का० कंमं अं धंमानुसासनं [।] धंमचलने पि चा
धौ० कंमे या धंमनुसासना [।] धंमचलने पि चु
जौ० .... [।] (२०) धंमचलने पि चु
शा० क्रमं यं ध्रमनुशश्रनं [।] ध्रमचरणं पि च
मा० अं ध्रमनुशाशन [।] ध्रमचरणे पि च

गि० न भवति असीलस [।] त इमम्हि अथम्हि (११) वधीच अहीनीच
का० न होति असिलसा [।] से इमसा अथसा वधि अहिनिचा
धौ० (१८) न होति असीलस [।] से इमसा अठस बुढ़ी अहीनिच
जौ० न होति ....
शा० न भोति अशिलस [।] सो इमिस अथ्रस वढि अहिनिच
मा० न होती अशिलस [।] से इमस अथ्र[illegible] वध्रि अहिनिच

गि० साधु [।] एताय अथाय इदं लेखापितं [:–] इमस अंथस

का० साधु [।] एताये अथाये इयं लिखिते [:–] (१३) इमसा अथसा
धौ० साधु [।] एताये ...... इयं लिखिते [:–] इमस अठस
जौ० ... ...
शा० सधु [।] एतये अठये इमं दिपिस्त [:–]* इमिस अठस
मा० सधु [।] एतये (१८) अथ्रये इमं लिखिते [:–] एतस अ. स

गि० वाधि युजंतु हीनि च (१२) मा लोचेतव्या [।] द्वादस-
का० वाधि युजंतु हिनि च मा अलोचयिसु [।] दुवाडस-
धौ० वढी युजंतू हीनि च मा अलोचयिसु [।] (१९) दुवादस-
जौ० .... (२१) हीनि च मा अलोचयि ... .
शा० वढि युजंत हिनि च म लोचेषु [।] (११) बदय-
मा० वध्र युजंतु हिनि च म अनुलोचयिसु [।] दुवदश
गि० वासाभिसितेन देवानं प्रियेन प्रियदसिना राञा

* हुल्श महोदयका पाठ "निपिस्तं" है (J. R. A. S. 1913, P. 654)

का०	वशाभिसितेना	द्वेवानं	पियेना	पियदाशिना	लाजिना
धौ०	वसानि अभिसितस	देवानं	पियस	पियदसिने	लाजिने
जौ०	....	......	......	....	....
शा०	वषभिसितेन	देवनं	प्रियेन	प्रियद्राशिन	रञ
मा०	वषभिसितेन	देवन	प्रियेन	प्रियद्रशिन	रजिन

गि०	इदं	लेखापितं	[।]
का०		लेखितं	[।]
धौ०	यं	लिखिते	[।]
जौ०	...	....	[।]
शा०	इदं -नं	दिपपितं	[।]*
मा०	इयं	लिखपिते	[।]

* हुल्श महोदयने इसे "निपेसितं" पढ़ा है (J. R. A. S. 1913 p 654)

संस्कृत—अनुवाद।

अतिक्रान्तं अन्तरं बहूनि वर्षशतानि वर्धितः एव प्राणालंभः, विहिंसा च भूतानां, ज्ञातीनां असंप्रतिपत्तिः, श्रमणब्राह्मणानां असंप्रतिपत्तिः। तत् अद्य देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः धर्मचरणेन भेरीघोषः अथो धर्मघोषः विमानदर्शनानि हस्तिनः... अग्निस्कन्धाः अन्यानि च दिव्यानि रूपाणि दर्शयित्वा जनस्य। यादृशं बहुभिः वर्षशतैः न भूतपूर्वं तादृशं अद्य वर्द्धितः देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः धर्मानुशिष्ट्या अनालंभः प्राणानां, अविहिंसा भूतानां, ज्ञातिषु संप्रतिपत्तिः, ब्राह्मण—श्रमणानां संप्रतिप्रत्तिः, मातापित्रोः शुश्रूषा। एतत च अन्यत् च बहुविधं धर्मचरणं वर्धितम्। वर्धयिष्यति चैव देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा इदं धर्मचरणम्। पुत्राः च खलु नप्तारः च प्रनप्तारः च देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः प्रवर्धयिष्यंति चैव धर्मचरणं इदं यावत्—कल्पं धर्मशीले च तिष्ठन्तः धर्मं अनुशासिष्यन्ति। एतत् हि श्रेष्ठं कर्म यत् धर्मानुशासनम्। धर्मचरणं अपि न भवति अशीलस्य। तत् अस्य अर्थस्य वृद्धिः अहानिः च साधुः। एतस्मै अर्थाय इदं लिखितम्। अस्य अर्थस्य वृद्धिं युंजन्तु हानिं च मा आलोचयन्तु। द्वादशवर्षाभिषिक्तेन देवानां प्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा लेखितम्।

हिंदी-अनुवाद

धर्मका अनुष्ठान ।

बहुत दिनोंसे—कई सौ वर्षोंसे-(यज्ञके लिए) प्राणियोंका बध जीवोंकी हिंसा, बन्धुओंका अनादर, श्रमण और ब्राह्मणोंको अनादर बढ़ता ही गया । पर[1] आज देवतःओंके

टिप्पणियां ।

१—इस वाक्यसे अशोक का तात्पर्य यह है कि पहिले जहां युद्धभेरी अर्थात् लड़ाई के नगाड़ोंका शब्द होता था वहां अब धर्मभेरी अर्थात् धार्मिक उत्सवोंमें बजने वाले नगाड़ोंका शब्द सुनायी पड़ता है । जहां पहले सेनाओंका जलूस निकलता था वहां अब धर्म-संबंधी जलूस निकलते हैं । ईसवी सन्‌की पांचवीं शताब्दीमें चीनी परिव्राजक फाहियानने अपने भारत-वर्णनमें इसी तरहके एक धार्मिक जलूसका हाल लिखा है जिसे उसने पाटलिपुत्रमें देखा था । वह लिखता है कि हर साल दूसरे मासकी ८ वीं तिथि-को नगर निवासी लोग बुद्धकी मूर्तियों-का जलूस निकालते हैं । वे चार पहिये वाले बांसके बने हुए रथ तैयार करते हैं जो पांच मंजिलके होते हैं । इन रथों-को वे भिन्न भिन्न रंगकी पताकाओंसे

प्रिय प्रियदर्शी राजाके धर्माचरणसे भेरी (युद्धके नगाड़े) का शब्द—नहीं नहीं, धर्मका शब्द-

सजाते हैं। रथके चारों ओर चार बुद्ध-की मूर्तियां स्थापित की जाती हैं और बुद्ध मूर्तिके पास बोधि सत्वकी मूर्ति भी स्थापित रहती हैं, इस प्रकारसे सुशोभित १५ या २० रथ राज-पथपर एक साथ निकाले जाते हैं। उनके सामने गाते बजाते हुए नगरनिवासी गण अपने अपने दलके साथ चलते हैं और पुष्प तथा धूप दीपसे मूर्तिकी पूजा करते हैं। रथके सामने असंख्य दीप जलाये जाते हैं। देशमें इसी तरह अनेक स्थानोंपर रथ-यात्रा निकलती है। अशोकके समयमें कदाचित् इसी तरहके विमान हाथी और अनेक अलौकिक दृश्य जलूसमें दिख-लाये जाते थे और आतिशबाजियां छुड़ायी जाती थीं।

डॉ० आर० भाण्डारकर का मत है कि इस शिलालेखमें जो जो बातें जलूसमें दिखलानेके लिए कही गयी हैं वे सब ऐसी थीं जिनसे लोगोंकी प्रवृत्ति धर्मकी ओर बढ़ सकती थी और जिनका संबन्ध धार्मिक बातोंसे था। अब प्रश्न यह उठता है कि कौन कौन सी चीज़ें जलूसके साथ निकाली या जलूसमें दिखलायी जाती थीं। इस शिलालेखसे विदित होता है कि जलूसमें "विमान दसना" (विमान-दर्शनम्) "हस्तिदसणा" (हस्तिदर्शनम्) "अगिकन्धानि" (अग्निस्कन्धाः) और "अनानि दिव्यानि लुपानि" (अन्यानि दिव्यानि रूपाणि) दिखाये जाते थे। अब आइये देखें कि भाण्डारकरके मतके अनुसार इन शब्दोंका क्या अर्थ है:—

(सुनायी पड़ रहा है) और विमान[२] तथा हाथी[३] (जलूसमें) दिखलाये जाते हैं। जैसा आतिशबाजी[४] (छुड़ायी जाती है) और अन्य दिव्यरूप लोगोंको दिखलाये जाते हैं। जैसे,

---

२—विमानः— विमान देवताओंके रथ होते थे जिन्हें वे जहां चाहें वहां ले जा सकते थे। इस भूलोकमें पुण्याचरण करनेसे मनुष्योंको देवताओंकी पदवी मिलती है और स्वर्गलोकमें जाकर वे विमान-का सुख भोगते हैं। अशोक विमान दिखाकर अपनी प्रजाको यह बतलाना चाहता था कि तुम भी यदि पुण्य करोगे तो इसी तरह "स्वर्ग" और "विमान"-का सुख भोगोगे।

३—हाथी :—बुद्धभगवान्की माताने स्वप्न देखा था कि बोधिसत्व श्वेत हस्ती-के रूपमें उसके गर्भमें प्रवेश कर रहे हैं। भरहत, सांची और गान्धारमें इस तरह की बहुतसी मूर्तियां हैं जिनमें बोधिसत्त्व-का अपनी माताके गर्भमें श्वेत हस्तिके रूप में प्रवेश करनेका चित्र खिंचा हुआ मिलता है। कालसीमें भी उस चट्टानपर जहां अशोकके शिलालेख खुदे हुए हैं, हाथी-का चित्र खुदा हुआ है और उसके दोनों पैरोंके बीचमें "गजतमे" (गजो-त्तमः) अर्थात् बुद्ध भगवान् लिखा हुआ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्सवों और जलूसोंमें हाथी दिखलानेका तात्पर्य यही था कि लोग बुद्धभगवान्-का स्मरण करें और उसमें बुद्धभगवान्-की ओर श्रद्धा उत्पन्न हो।

४:—अग्निस्कन्धाः (अग्निका समूह) भाण्डा-

पंचम शिला लेख।

मूल।

गि०	(१) देवानं	पियो	पियदसि	राजा	एवं	आह [:=]	कलाणं
का०	देवानं	पिये	पियदसि	लाजा		अहा [:—]	कयांने
धौ०	नं	पिये	पियदसी	लाजा	हेवं	आहा [:—]	कयाने
जौ०	देवानं	पिये	पियद............				....
शा०	देवन	प्रियो	प्रियद्रशि	रय	एवं	अहति [:—]	कत्रणं
मा०	देवनं	प्रिये	प्रियद्राशि	रज	एवं	अह [:—]	कलणं

गि०	दुकरं	[।] ये	अ...	कलाणस	सो	दुकरं	करोति [।]
का०	दुकले	[।] ए	आदिकले	कयानसा	से	दुकलं	कलेति [।]
धौ०	दुकले	[।] ए	......	कयानस	से	दुकलं	कलेति [।]

जौ० [।] [।]

शां० करं [।] यो अ.... रो कलणास सो दुकरं करोति [।]

मा० दुकरं [।] ये अदिकरे कयणास से दुकरं करोति [।]

गि० (२) त मया बहु कलाणं कटं [।] त मम पुता च

का० से ममया बहु कयाने कटे [।] ता मम पुता चा

धौ० से मे बहुके कयाने कटे [।] तं ये मे पुता व

जौ० [ ]

शा० से मय बहु कलं किट् [ ] तं मह पुत्र च

मा० तं मय बहु कयणो कटे [ ] तं म पुत्र च

गि० पोत्रा च परं च तेन ये मे अपचं

का० नताले चा [१४] पलं चा तंहि ये अपतिये मे

धौ० [२१] नति व च तेन ये अपतिये म

जौ० [२३] नति व पलं च ते

शा० नतरो च परं च त य मे अपच अछति
मा० [२०] नंतरे परं च तेनं ये अपतिये मे

गि० आव संवटकपा अनुवातिसरे तथा (३) से सुकटं
का० आव कपं तथा अनुवटिसंति से सुकटं
धौ० आव कपं तथा अनुवातिसंति. से सुकटं
जौ० ....
शा० अव कपं तथं ये अनवतिशंति से सुकिटं
मा० अव पं तथं अनुवतिशति से सुकट

गि० कासति [।] यो तु एत देसं पि हापेसाति सो दुकतं
का० कछंति [।] ए चु हेता देसं पि हापयिसंति से दुकटं
धौ० कछंति [।] ए हेत देसं पि हापयिसति से दुकटं
जौ० .... [।] ....
शा० कषंति [।] यो चु अतो कं पि हपेशति सो दुकटं
मा० कषति [।] ये चु अत्र देश पि हपेशति से दुकट

गि० कासति [।] सुकरं हि पापं [।] अतिकांत

का० कछति [।] पापे हि नाम सुपदालये [।] से अतिकंतं

धौ० कछति [।] पापे हि [नाम] (२२) सुपदालये [।] से अतिकंतं

जौ० .... [।] .... (२४) सुपदालये [।] से अ ....

शा० कँ ति [।] पपं हि सुकरं [।] सो अतिक्रतं

मा० कषति [।](२१)पप हि नम सुपदरे व [।] से अतिक्रतं

गि० अंतरं (४) न भूतप्रुवं धंममहामाता नाम [।] त मया

का० अंतलं नो हुतपुलुवा धंममहामाता नाम [।]

धौ० अंतलं नो हूतपुलुवा धंममहामाता नाम [।] से

जौ० .... []

शा० अंतरं न भुतप्रुव ध्रममहमत्र नम [।] सो

मा० अंतरं न भुतप्रुव ध्रममहमत्र नम [।] से

गि० तैदसवासाभिसितन धंममहामाता कता [।]

का० तेदसवसाभिसितेना ममया धंममहामाता कटा [।]
धौ० तेदसवसाभिसितेन मे धंममहामाता नाम कटा [।]
जौ० .... [।]
शा० तिदॣशवषभिसितेन(१२) मय ध्रममहमत्र किट् [।]
मा० त्रेदशवषभिसितेन मय धमम्रहमत्र कट [।]

गि० ते सवपासंडेसु व्यापता धामंधिस्टानाय (५)
का० ते सवपासंडेसु वियापटा (१५) धंमाधिथानाये चा
धौ० ते सवपासंडेसु (२३) वियापटा धंमाधिथानाये
जौ० ... . (२५) .... माधिठाना
शा० ते सव्रप्रषंडेषु वपट ध्रमधिथनये च
मा० ते सव्रपषडेषु (२२) वपुट ध्रमधिथनये च

गि० .... धंमयुतस च योन-
का० धंमवढिया हिदसुखाये चा धंमयुतसा योन-

धौ० धंमवढियेे हितसुखाये च धंमयुतस योन-
जौ० ....
शा० ध्रमवढिये हिदसुखये च ध्रमयुतस योन-
मा० ध्रववध्रिय हिदसुखये च ध्रमयुतस योन-

गि० कंबो. गंधारानं रिस्टिक- पेतेणिक्कानं ये वापि अंञे
का० कंबोज- गंधालानं ए गापि अंने
धौ० कंबोच- गंधालेसु लठिक- पितेनिकेसु ए वापि अंने
जौ० ....
शा० कंबोय- गंधरनं रस्तिकनं पितिनिकनं ये वपि
मा० कंबोज- गंधरनं रट्रक पितिनिकनं ये वपि अञे

गि० अपराता [।] भतमयेसु व (ई) ....
का० अपलंता [।] भटमयेसु बंभनिभेसु अनथेसु
धौ० आपलंत [।] भटि [मयेसु] (२४) लाभनिभि [ये] सु अनाथेसु

जौ०	....	.... (२६)	भनिभि	....
शा०	अपरंत [।]	भटमयेषु	ब्रमणिभेषु	अनथेषु
मा०	अपरत [।]	भटमये (२३) षु	ब्रमणिभ्येषु	अनथेषु
गि०	......	......सखाय	धंमयुतानं	अपरिगोधाय
का०	बुधेसु	हिदसुखाये	धंमयुताये	अपलिबोधाये
धौ०	म[हा]लकेसु च	हितसुखाये	धंमयुताये	अपलिबोधाये
जौ०	....	......	......	......
शा०	बुढेषु	हितसुखये	ध्रमयुतस	अपलिबोधे
मा०	बुध्रेषु	हिदंसुखये	ध्रमयुत	अपलिबोधये
गि०	व्यापता ते [।]	बंधनबधस	पटिविधानाय (७)	....
का०	वियापटा ते [।]	बंधनबधसा	पटिविधानाये	अपलिबोधाये
धौ०	वियापटा से [।]	बंधनबधम	पटिवि[धा]नाये	अपलिबोधाये
जौ०	....	....	....	....

शा० वपट ते [।](१३) बंधनबधस पटिविधनये अपलिबोधये
मा० वियपुट ते [।] बधनबधस पटिविधनये अपालिबोधये

गि० .... प्रजा
का० मोखाये चा एयं अनुबधं पजावति वा
धौ० मोखाये च (२५) इयं अनुबंध प [ज] ति व
जौ०(२७)मोखाये ... .
शा० मोछये इयं अनुबधं प्रजव
मा० मोछये च इयं (२४) अनुबध पज ति व

गि० कताभीकारेसु वा थैरेसु वा व्यापता ते [।] पाटलिपुते च
का०(१६) कटाभिकाले ति वा महालके ति वा वियापटा ते [ ] हिदा
धौ० कटाभीकाले ति व महालके ति व वियापटा से [।] हिद च
जौ० ...(२८)... ... ...
शा० किटभिकरो व महलक व वियपट् [।] इअ
मा० कटभिकर ति व महलक ति व वियपट ते [।] हिदं

गि० बाहिरेसु च (८) ……… ……… …………

का० बाहिलेसु चा नगलेसु सवेसु ओलोधनेसु

धौ० बाहिलेसु च नगलेसु सवेसु सवेसु ओलोधनेसु मे एत्रापि

जौ० ……… … ……… ………… ……… … एवा

शा० बहिरेषु च नगरेषु सव्रेषु ओरोधनेषु

मा० बहिरेषु च नगरेषु सव्रेषु ओरोधनेषु

गि० ……… … ……… ये वा पि ये अञे ञातिका

का० भातिनं च ने भगिनिना ए वा पि अंने नातिक्ये

धौ० भातिनं मे भगिनीनं व (२६) अंनेसु वा नाति[सु]

जौ० ……… … ……… … …… … ………

शा० भ्रतुनं च मे स्पसुनं च ये व पि अंञे ञतिक

मा० भतन चये स्पसुनं (२५) च ये व पि अञे ञतिके

गि० सर्वत व्यापता ते [।] । अयं धंमनिस्रितो ति व

का० सवता वियापटा [।] इयं धंमनिसिते ति वा

धौ० सवत वियापटा [।] स इयं धंमानिसिते ति व
जौ० ....
शा० सवत्र वियपुट [।] यं इयं ध्रमनिश्रिते ति व
मा० सव्रत्र वियपट [।] स इयं ध्रमनिशिति ति व

गि०(८)...... ....
का० दानसंयुते ति वा सवता विजितासि ममा
धौ० धंमाधिथाने ति व दानसयुते व सपुठवियं
जौ० ....,.....
शा० ध्रमधिथने ति व दनसयुते तिव सवत्र विजिते मह
मा० ध्रमधिथने ति व दनसंयुते तिव सव्रत्र विजितसि मत्र

गि० .... धंमग्रहामाता [।] एताय
का० धंमयुतसि वियापटा ते धंममहामाता [।] एताये
धौ० धंमयुतसि वियापटा इमे धंममहामाता [।] इमाये
जौ०(२८) .... [।] ......

शा० ध्रमयुतसि विपयट ते ध्रममहमत्र [।] एतये
मा० ध्रमयुतसि वपुट ते [२६] ध्रममहमत्र [।] एतये
गि० अथाय अयं धंमाक्षिपी लिखिता (१०)
का० अठाये (१७) इयं धंमलिपि लेखिता ...... [:—] चिलथितिक्या होतु
धौ० अठाये (२७) इयं धंमलिपी लिखिता [:—] चिलठितीका [हो] तु
जौ० ....
शा० अठये अयं ध्रमदिपि दिपिस्त * [:—] चिरथितिक भोतु
म० अथ्रये अयि ध्रमदिपि लिखित [:—] चिरठितिक होतु

गि० ....
का० तथा च मे पजा अनुवतंतु [।]
धौ० [तथा] च मे प [जा] अनुवततु [।]
जौ० .... [।]
शा० तथ च प्रज अनुवततु [ ]
मा० तथं च मे प्रज अनुवटतु [।]

* हुल्श साहेब ने इसे "निपिस्त" पढ़ा है (देखिये J. R. A. S., 1913, P. 654).

संस्कृत–अनुवाद ।

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह कल्याणं दुष्करम् । यः यदि कुर्यात् कल्याणस्य सः दुष्करं करोति । तत् मया बहु कल्याणं कृतम् । तत् ये मम पुत्राः च नप्तारः (पौत्राः) च परं च तैः यानि मे अपत्यानि भविष्यन्ति या-वत्कल्पं तथा अनुवर्तिष्यन्ते तत् सुकृतं करिष्यन्ति । ये तु अत्र देशं अपि हापयिष्यन्ति ते दुष्कृतं करिष्यन्ति । पापं हि नाम सुप्रदालयम् (सुप्रचारम् वा) तत अतिक्रान्तं अन्तरं न भूतपूर्वा धर्ममहामात्राः नाम । तत् त्रयोदशवर्षाभिषि-क्तेन मया धर्ममहामात्राः नाम कृताः । ते सर्वपाषण्डेषु व्यापृताः धर्माधि

स्थानाय च धर्मवृद्धयै हितसुखाय च धर्मयुक्तस्य यवनकम्बोजगन्धाराणां राष्ट्रिकप्रतिष्ठानिकानां ये वापि अन्ये अपरान्ताः भृतिमयेषु च ब्राह्मणेभ्येषु अनाथेषु वृद्धेषु (महालकेषु) च हितसुखाय धर्मयुक्तस्य च अपरिबाधाय व्यापृताः ते बन्धन वधस्य प्रतिविधानाय अपरिबाधाय मोक्षाय च एवं अनुबन्धं प्रजावन्तः इति वा कृतापकाराः इति वा महल्लकाः इति वा व्यापृताः ते । इह बाह्येषु च नगरेषु सर्वेषु अवरोधनेषु भ्रातृणां च अन्ये भगनीनां एवं अपि अन्ये ज्ञातिषु सर्वत्र व्यापृताः । एवं अयं धर्मनिश्रितः इति वा धर्माधिष्ठानः इति वा दानसंयुतः इति वा सर्वत्र विजिते मम धर्मयुक्ते व्यापृताः ते धर्ममहामात्राः । एतस्मै अर्थाय इयं धर्मलिपिः लेखिता चिरस्थितिका भवतु तथा च मे प्रजा अनुवर्तन्ताम् ।

हिन्दी—अनुवाद।

धर्म-महामात्रोंकी नियुक्ति।

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा यह कहते हैं:—अच्छा काम करना कठिन है, जो कोई अच्छा काम करता है वह कठिन काम करता है पर मैंने बहुतसे [1]अच्छे काम किये हैं। इसलिये यदि मेरे पुत्र, नाती, पोते और उनके बाद जो लड़के होंगे वे कल्पके अन्त तक वैसा अनुसरण करेंगे तो पुण्य करेंगे, किन्तु जो इस कर्तव्यका) थोड़ा भी त्याग करेगा वह पाप करेगा, क्योंकि पाप करना आसान है। बहुत दिनोंसे धर्म [2]महामात्र (नामक राज कर्मचारी) नहीं नियुक्त हुए थे, पर मैंने अपने राज्या

टिप्पणियां

१—अशोकने अपने किये हुए अच्छे कामोंको सप्तम स्तम्भ लेखमें लिख दिया है उसे देखिये।

२—धर्म-महामात्रः—अपने राज्याभिषेकके १३ वर्ष बाद अशोकने धर्म-महामात्र नामक नये कर्मचारी नियुक्त किये। वे समस्त

भिषेकके १३ वर्ष बाद (धर्म-महामात्र) नियुक्त किये । ये (धर्म-महामात्र) धर्मकी रक्षा करनेके लिये, धर्मकी वृद्धि करनेके लिये धर्म[3]युत (नामक राज कर्मचारियों) के हित और सुखके

राज्यमें तथा यवन, काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक पेटेणिक तथा पश्चिमी सीमा-पर रहनेवाली अन्य जातियोंके बीचमें धर्मका प्रचार और धर्मकी रक्षा करनेके लिये नियुक्त थे। धर्म-महामात्रोंकी पदवी बड़ी ऊंची थी और उनका कर्त-व्य साधारण महामात्रोंके कर्तव्योंसे भिन्न था। धर्म-महामात्रोंके नीचे धर्म-युक्त नामक दूसरी श्रेणीके राजकर्मचारी भी धर्मकी रक्षा और धर्मका प्रचार करनेके लिये नियुक्त थे। वे हर प्रकारसे धर्म महामात्रोंकी सहायता करते थे। स्त्रियां भी धर्म-महामात्रके पदपर नियुक्त की जाती थीं। वे अन्तःपुरमें स्त्रियोंके बीच धर्म रक्षा और धर्म प्रचारका काम करती थीं। सप्तम स्तंभ-लेखमें धर्म महामात्रोंका काम और भी दिया गया है उसे देखिये।

३—धर्मयुत नामके कर्मचारी धर्मकी रक्षा और धर्मका प्रचार करनेके लिये नियुक्त थे। ये लोग धर्म-महामात्रोंके नीचे उनकी आज्ञासे काम करते थे।

लिये तथा [४]यवन, [५]काम्बोज [६]गान्धार ([७]राष्ट्रिक, पेटे[८]णिक अथवा पीतीनिक) तथा पश्चिमी सीमा (पर रहने वाली अन्य जातियोंके) हित और सुखके लिये सब पाषंडी (सम्प्रदायों[९] के) बीचमें

४—यवनः—ग्रीक जातिके लोग यवनके नामसे पुकारे जाते थे। कदाचित् यवनोंमें वे सब विदेशीय जातियां भी शामिल थीं, जो उस समय पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तमें निवास करती थीं। द्वितीय तथा त्रयोदश शिलालेख देखिये।

५—काम्बोजः—हिमालय पर्वतपर रहनेवाली एक जाति विशेषको काम्बोजके नामसे पुकारते थे। किसी किसीका मत है कि आज कलके तिब्बती लोग प्राचीन काम्बोज थे।

६—गान्धारः—गान्धार देश भारत वर्षके पश्चिमोत्तर प्रांतमें स्थित था। प्राचीन पुरुषपुर (पेशावर) और तक्षशिला ये दोनों नगर गान्धारके अन्तर्गत थे। किसी समय पश्चिमी तटसे लगाकर वर्तमान काबुल तकका भूभाग गान्धार राज्यमें शामिल था।

७—राष्ट्रिकः—वर्तमान महाराष्ट्र देशके लोग प्राचीन कालमें राष्ट्रिकके नामसे पुकारे जाते थे।

८—पेटेणिकः—दक्षिणमें गोदावरी नदीके किनारे जो जाति रहती थी उसे पेटेणिकके नामसे पुकारते थे। इसी नदीके किनारेपर समृद्ध शाली प्रतिष्ठान नगरी (जिसे ग्रीक लोग पैथाना Paithana के नामसे पुकारते थे) सम्भवतः पेटेणिक लोगोंकी प्राचीन राजधानी थी।

९—पाषंडः—अशोकके लेखोंमें जहां जहां पाषंड शब्द आया है वहां वहां यह अच्छे

नियुक्त हैं। वे स्वामी और सेवकों, ब्राह्मणों और धनवानों, अनाथों और वृद्धोंके बीच उनके हित और सुखके लिये तथा धर्मयुक्त (नामक राजकर्मचारियों) की[१०] रक्षाके लिये नियुक्त हैं। वे (अन्याय पूर्ण) वध और बन्धकको रोकनेके लिये, रुकावटोंको दूर करनेके लिये तथा रक्षाके लिये और (उन लोगोंका ख्याल रखनेके लिये नियुक्त हैं जो) बड़े परिवार वाले हैं; या विपत्तिसे सताये हुए हैं य बहुत बुड्ढे हैं। वे यहां (पाटलिपुत्रमें) और बाहरके सब

अर्थमें व्यवहार किया गया। अशोक सब पाषंडों अर्थात् सम्प्रदायोंका उचित सम्मान और आदर करता था (द्वादश शिला लेख देखिये)। बादको पाषंड अर्थका कुत्सित अर्थमें व्यवहार होने लगा। मनुने लिखा है:—"कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाषण्डस्थांश्च मानवान्। विकर्मस्थान् शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत् पुरात् ॥" अर्थात् जुवाड़ी, नट, क्रूर, पाषंड (पाखंडी), दूसरी जातिका कर्म करने वाले मनुष्य और शराब बनाने वालोंको राजा शीघ्र अपने नगरसे निर्वासित कर दे। इस स्थलपर कुल्लूक भट्टने मनुस्मृतिकी टीकामें "पाषंड" शब्दका 'श्रुतिस्मृति बाह्यव्रतधारी" अर्थात् "वेद और स्मृति के विरुद्ध धर्मका पालन करने वाला यह अर्थ किया है इस प्रकार "पाषण्ड" शब्द--अशोकके बाद क्रम क्रम से नीच, दुष्कर्मकारी, दम्भी इत्यादि अर्थों-में प्रयुक्त होने लगा।

१०—"धर्मयुक्त (नामक राज कर्मचारियों) की रक्षाके लिये"=' धंमयुताये अपलि-बोधाये" (कालसी) गिरनारमे अपलि

नगरोंमें सब जगह हमारे भाइयों बहिनों तथा दूसरे रिश्तेदारोंके अन्तः''पुरमें नियुक्त हैं । ये धर्म-महामात्र मेरे राज्यमें सब जगह धर्म और दान सम्बन्धी कार्योंका (निरीक्षण करनेके लिये) धर्म युक्त नामक कर्मचारियोंके बीच नियुक्त हैं इस धर्म-लेखके लिखनेका यह उद्देश्य है कि यह बहुत दिनों तक स्थिर रहे और मेरी प्रजा इसके अनुसार आचरण करे ।

बोधायेके स्थानपर 'अपरि गोधाय" शब्द आया है। टामस साहबने सिद्ध किया है कि "परिगाध" शब्द "परि-गृद्ध" शब्दका अपभ्रंश है और परि पूर्वक गृध धातुसे बना है । इसलिये वे परिगोधका अर्थ "लोभ" और अपरि गाधका अर्थ 'लोभका अभाव' करते हैं। उनके मतसे "धंमयुताये अपलिबोधाये अथवा "धंमयुतानं अपरिगोधाय" का अर्थ "धर्मयुत नामक कर्मचारियोंके लोभको दूर करनेके लिये अर्थात् उनके लोभसे प्रजाकी रक्षा करनेके लिये" यह होना चाहिये । (J. R. A. S., 1915 P. 99.)

११—अन्तः-पुरोंमें स्त्रियां धर्म-महामत्राके पदपर नियुक्त थीं। वे महामात्रके नामसे पुकारी जाती थीं । द्वादश शिला लेखमें स्त्री महामात्रका नाम आया है उसे देखिये। इस पंचम शिला लेखमें अशोकने लिखा है कि "धम महामात्र हमारे भाइयों, बहिनों तथा दूसरे रिश्ते दारोंके अन्तःपुरमें नियुक्त हैं ।" जिससे पता लगता है कि जिस समय यह लेख लिखा गया उस समय अशोककी बहिनें और एकसे अधिक भाई जीते थे। इसलिये अशोकके संबंधमे यह प्रवाद कि उसने अपने सब भाइयोंको मार कर तब राज्यासिंहासन प्राप्त किया बिल्कुल निराधार है।

षष्ठ शिला-लेख

मूल।

गि०	(१) देवानं	प्रि.	पियदसि	राजा	एवं	आह	[:—]	अतिक्रातं
का०	देवानं	पिये	पियदसि	लाजा	हेवं	आहा	[:—]	अतिकंतं
धौ०	देवानं	पिये	पियदसी	लाजा	हेवं	आहा	[:—]	अतिकंतं
जौ०	....नं	पिये	पियदसी	लाजा	हेवं	आहा	[:—]	अतिकंतं
शा०	देवनं	प्रियो	प्रियद्रशि	रय	एवं	अहति	[:—]	अतिक्रतं
मा०	देवनं	प्रिये	प्रियद्रशि	रज	एवं	अह	[:—]	अतिक्रंतं

गि०	अंतरं	(२)	न	भूतपुर्व	सव	...ल	अथकंमे	व
का०	अंतलं		नो	हुतपुलुवे	सवं	कालं	अठकंमे	वा
धौ०	अंतलं		नो	हुतपुलुवे	सवं	कलं	अथकंमे	व

जौ० अंतलं नो हुतपुलुवे सवं कलं अठकंपे
शा० अंतरं न श्रुतप्रुवं सव्रं कलं अथक्रमं व
मा० अंतरं (२७) नों हुतप्रुवे सव्रं कल अथक्रमे व

गि० पटिवेदना वा [।] त मया एवं कटं [।] (३) सवे
का० पटिवेदना वा [।] से ममया देवं कटे [।] सवं
धौ० पटिवेदना व [।] से ममया कटे [।] सव
जौ० पटिवेदना व [।] से ममया कटे [।] सवं
शा० पटिवेदन व [।] तं मय एवं किटं [।] सत्रं
मा० पटिवेदन व [।] त मय एवं किटं [।] सत्र

गि० काले भुंजमानस मे ओरोधनंहि गभागारंहि
का० कालं अदमनसा मे (१८) ओलोधनसि गभागालसि
धौ० [कालं] [मी]नस मे (२८)अंते ओलोधनसि गभागालसि
जौ० कालं ....स मे अंते ओलोधनसि गभागालसि

शां० कलं अशमनसं मे ओरोधनस्यि ग्रभंगरस्यि
मा० कलं अशतस मे ओरोधने ग्रभगरसि

गि० वचम्हि व (४) विनीतम्हि च उयानेसु च सवत्र
का० वचसि विनितसि उयानसि सवता
धौ० व[चसि] [वि] नीतसि उयानि[सि च] सवत
जौ० वचसि विनीतसि उयानसि च सवत
शा० व्रचस्यि विनितस्यि उयनस्यि सव्रत्र
मा० व्रचस्यि विनितस्यि उयनस्यि सव्रत्र

गि० पटिवेदका स्टिता अथे मे जनस (५) पटिवेदेथ इति [।]
का० पटिवेदका अठं जनसा पटिवेदेतु मे [।]
धौ० पटिवेदका जनस अठं पटिवेदयंतु मे ति [।]
जौ० पटिवेदका जनस अठं पटिवेदयंतु मे ति [।]

शा० पट्रिवेदक अठं जनस पाट्रिवेदेतु मे [ ]
मा० पटिवेदक अथ जनस (२८) पटिवेदेतु मे [।]

गि० सर्वत्र च जनस अथे करोमि [।] य च
का० सवता जनसा अठं कछामि हकं [ ] यं पि चा
धौ० सवत च जनस अठं कलामि हकं [ ](३०)अं पि च
जौ० सवत च जनम (३) ... .कं [।] अं पि च
शा० सव्रत्र च जनस अठ करोमि [।] यं पि च
मा० सव्रत्र च जनस अथ करोमि अहं [ ] यं पि

गि० किंचि मुखतो (६) आञपयामि स्वयं दापकं वा
का० किछि मुखते आनपयामि हकं दापकं वा
धौ० किंछि मुखते आनपयामि दापकं वा
जौ० किंछि मुखते आनपयामि दापकं वा
शा० किचि मुखतो अणपयामि अहं दपकं व
मा० किचि मुखति अणपेमि अहं दपकं व

शा॰ में इतना और अधिक है:—

शा॰ श्रवकं व यं व पन महमत्रनं वो अचयिके अ. पितं भोति तये अठये विवदे विभ्कति व संतं परिषय अनंतरियेन प्रटिवेदेतवो मे (१५) सवत्र च अठं जनस करोमि अहं [ ] यं च किचि मुखतो अणपेमि अहं दपक व।

गि॰	स्रावापकं	वा	य	वा	पुन	महामात्रेसु (७)	आचायिक
का॰	सावकं	वा	ये	वा	पुना	महामातेहि (१८)	अतियायिके
धौ॰	सावकं	वा	ए	वा		महामा[तेहि]	अतियायिके
जौ॰	सावकं	वा	ए	वा		महामातेहि	अतियायिके
शा॰	श्रवक	व	य	व	पन	महमत्रनं	अचायिकं
मा॰	श्रवकं	व	यं	व	पुन	महमत्रेहि	अचयिके

गि॰	आरोपितं	भवति	ताय	अथाय	विवादो	निभ्कतो	व	संतो
का॰	आ. पितं	होति	ताये	ठाये	विवादे	निभ्कति	वा	संतं
धौ॰	आलोपितं	होति	तसि	अठसि	विवादे व	निभ्कती	वा	संतं

जौं० आलोपते होति तसि अठसि विवादे व(४)...... ... ...
शा० अरोपितं भोति तये अठये विवदे संतं
मा० अरोपित होति(२८)तये अथये विवदे निझति व संत

गि० परिसायं (८) आनंतरं पटिवेदेतव्यं मे सर्वत्र
का० पलिसाये अनंतलियेना पटि......विये मे सवता
धौ० पलिसाय (३१) आनंतलियं पटिवेदेतविये मे ति सवत
जौं० ..लिसाय अनंतलियं पटिवेदेतविये मे ति सवत
शा० निझति व परिषये अनंतरियेन पटिवेदेतवो मे सवत्र
मा० परिषये अनंतलियेन पटिवेदितविये मे सव्रत्र

गि० सर्वे काले [।] एवं मया आञपितं [] नास्ति हि मे
का० सवं कालं [] हेवं आनपयिते ममया[।] नथि हि मे
धौ० वं कालं [।] हेवं मे अनुसथे [।] नथि [हि मे]
जौं० सवं कालं [।] वें मे अनुसथे [] नथि हि मे

शा० सत्रं कलं [।] एवं अणापितं मय [।] नस्ति हि मे
मा० सत्र कल [।] एवं अणापित मय [।] नस्ति हि मे

गि० तासो (८) उस्टानम्हि अथसंतीरणाय व [।] कतटवमते हि मे
का० दोसे व उठानसा अठसंतिलनाये चा [ ] कटवियमुते हि मे
धौ० [तो]से उ[ठान]सि अठसंतीलनाय च [।] कटवियमते हि मे
जौ० तोसे उठानसि अठसंतीलनाय च [।](४८) ...... मे
शा० तोषो उठनसि अठसंतिरणाये च [।] कटवमत हि मे
मा० तोषे उठनसि अथसंतिरणाये च [।](३०)कटवियमते हि मे

गि० सर्वलोकहितं (।)(१०) तस च पुन एस मूले उस्टानं
का० सवलोकहिते (।) तसा पुना एसे मुले उठाने
धौ० सवलोकहिते (।)(३२) तस च पन इयं मूले उठाने
जौ० सवलोकहिते (।) तस च पन इयं मूले उठाने
शा० सव्रलोकहितं [।] तस च मुलं एत्र उथनं
मा० सव्रलोकहिते (।) तस चु पुन एषे मुले उठने

गि० च अथसंतीरणा च (।) नास्ति हि कंमतरं (११) सर्वलोक–

का० (२०) अठसंतिलना चा (।) नथि हि कंमतला सवलोक–

धौ० च अठसंतीलना च (।) नथि हि कंमत सवलो[क]–

जौ० च अठसंतीलना च (।) नथि हि कंमतला सवलोक–

शा० अठसंतिरणा च (।) नस्ति हि क्रमतरं (१६) सवलोक–

मा० अथसतिरणा च (।) नस्ति हि क्रमतर सव्रलोक–

गि० हितत्या ( ) य च किंचि पराक्रमामि अहं (:–) किंति (१)

का० हितेना ( ) यं च किंचि पलकमामि हकं (:–) किंति (१)

धौ० हितेन ( ) अं च किंचि पलकमामि हकं (:–) किंति (१)

जौ० हितेन ( ) अं च किंचि पल,मामि हकं (:–) (६)... ...

शा० हितेन (।) यं च किंचि परक्रममि (:–) किति (?)

मा० हितेन (।) यं च किंचि परक्रममि अहं (:–) किति (१)

गि० भूतानं आनंणं गछेयं (१२) इध च नानि

क० भुतानं अननियं येहं हिद च कानि
धौ० भूतानं आ[न]नियं येहं ति (३३) हिद च कानि
जौ० ....नानियं येहं ति हिद च कानि
शा० भुतनं अनणियं व्रछेयं इअ च प
मा० भुतनं (३१) अनणियं येहं इअ च ष

गि० सुखापयामि परत्रा च स्वगं आराधयंतु [।] त एताय
का० सुखायामि पलत चा स्वगं आलाधयितु [।] से एताये
धौ० सुखयामि पलत च स्वगं [आ]लाधयंतु ति[ ] एताये
जौ० सुखयामि पलत च स्वगं आलाधयंतु ति[।] एताये
शा० सुखयमि परत्र च स्यगं अरधेतु [ ] एतये
मा० सुखयमि परत्र च स्यग्रं अरधेतु ति[।] से एतये

गि० अथाय(१३) अयं धंमलिपी लेखापिता [:–] किंति[?] चिरं तिस्टेय
कां० ठाये इयं धमलिपि लेखिता [:–] चिल ठितिक्या

धौ० ... . थं धंमलिपी लिखिता [:-] चिल ठितीका

जौ० अठाये इयं धंमलिपी लिखिता [:-] ।चिल ठितीक

शा० अठये अयि ध्रम दिपिस्त [:-]* चिर थितिक

१२ मा० अथ्रये इयं ध्रमदिपि लिखित [:-] चिर ठितिकं

गि० इति तथा च मे पुत्रा पोता च प्रपोत्रा च

का० होतु तथा च मे पुतदाले

धौ० होतु तथा च पुता पपोता मे

जौ० होतू(७) ... ... पोता मे

शा० भोतु तथ च मे पुत्र नतरो

मा० होतु तथं च मे पुत्र नतरे

गि० (१४) अनुवतरां सवलोकहिताय [।] दुकरं तु

का० पलकमातु सवलो॰ हिताये [।](२१]दुकले च

---

* हुल्श साहबके अनुसार इसका शुद्ध पाठ "निपिस्त" है (देखो J. R. A. S., 1913. P. 659)

धौ०	पलकमंतु	(३४) [सव] .कहिताये	[।]	दुकले	चु	
जौ०	पलकमंतु	सवलोकहितये	[।]	दुकले	चु	
शा०	परक्रमंतु	सवलोकहितये	[।]	दुकरं	तु	खो
मा०	परक्रमंते	सव्र-(३२)लोकहितये[।]		दुकरे	चु	खो

गि०	इदं	अञत	अगेन	पराक्रमेन	(।)	
का०	इयं	अनत	अगेना	पलकमेना	(।)	
धौ०	इयं	अंनत	अगेन	पलकमेन	(।)	सेतो
जौ०	इयं	अंनत	अगेन	पलकमेन	(।)	
शा०	इमं	अंञत्र	अग्रे	परक्रमेन	(।)	
मा०		अञत्र	अग्रेन	परक्रमेन	(।)	

संस्कृत — अनुवाद ।

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह । अतिक्रान्तं अन्तरं न भूतपूर्वं सर्वं कालं अर्थकर्म वा प्रतिवेदना वा । तत् मया एव कृतं सर्वं कालं अदतः (भुञ्जानस्य अश्नतः वा) मे अवरोधने, गर्भागारे, वर्चसि, विनीते, उद्याने सर्वत्र प्रतिवेदकाः स्थिताः अर्थं जनस्य प्रतिवेदयन्तु मे इति सर्वत्र जनस्य अर्थं करिष्यामि (करोमि) अहम् । यत् अपि च किंचित मुखतः आज्ञापयामि अहं दापकं वा श्रावकं वा यत वा पुनः महामात्रेषु आत्ययिकं आरोपितं भवति तस्मै अर्थाय विवादे निक्षिप्तौ वा सत्यां

परिषदा आनन्तर्येण प्रतिवेदयितव्यं मे सर्वत्र सर्वं कालं, एवं आज्ञापितं मया।

नास्ति हि मे तोषः उत्थाने अर्थसन्तरणाय च। कर्तव्यमतं हि मे सर्व-

लोकहितम्। तस्य च पुनः एतत् मूलं उत्थानं अर्थसंतरणं च। नास्ति हि कर्मान्तरं

सर्वलोकहितात्। यत् च किंचित् पराक्रमे अहं, किमिति, भूतानां आनृण्यं

इयां (गच्छेयं व्रजेयं वा) इह च कांश्चित् सुखयामि परत्र च स्वर्गं आराधयंतु [ति]

इति। तत एतस्मै अर्थाय इयं धर्मलिपिः लेखिता किमिति, चिरस्थितिका

भवतु तथा च मे पुत्रदारं पौत्राः प्रपौत्राः च पराक्रमन्तां सर्वलोकहिताय।

दुष्करं च खलु इदं अन्यत्र अग्र्यात् पराक्रमात्।

हिन्दी—अनुवाद

निरन्तर राज-कार्यकी चिन्ता।

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—बहुत दिन हो गये बराबर हर समय राजका काम नहीं होता और प्रति¹वेदकों (अर्थात्—गुप्तचरों) से समाचार हर समय नहीं

टिप्पणियां।

१—प्रतिवेदक (गुप्तचर)—प्रतिवेदकोंके बारेमें मेगास्थनीज़ ने इस प्रकार लिखा है "प्रतिवेदक लोग साम्राज्यमें क्या हो रहा है इस बातकी ख़बर रखते थे और राजाको गुप्त रूपसे सब समाचार बताते थे। कुछ प्रतिवेदक नगरोंमें नियुक्त थे और कुछ सेनाओंमें। ख़बरोंको जाननेके लिये वे लोग वेश्याओंसे भी गुप्तचरका काम लेते थे। योग्यसे योग्य और विश्वासपात्रसे विश्वासपात्र मनुष्य प्रतिवेदकोंके पदपर नियुक्त किये जाते थे।" (McCrindle. Megasthenes, P.85) चाणक्यने भी अपने अर्थशास्त्रके अधि० १ अध्याय० १२ में गुप्तचरोंके विषयमें लिखा है। कौटिलीय अर्थशास्त्रसे पता लगता है कि वेश्यायें भी गुप्तचरका काम करती थीं। गुप्तचर-विभाग अशोकके पहिलेसे चला आता था, पर अशोकने उसमें नई बात यह की कि हर समय और हर स्थानपर गुप्तचर लोग प्रजाका हाल चाल उसे सुनाते थे।

सुना जाता। इसलिये मैंने यह [प्रबंध] किया है कि हर समय चाहे मैं खाता होऊँ या अन्तःपुरमें रहूँ या गर्भागार [शयन गृह] में रहूँ या [वचम्हि][2] पाखानेमें रहूँ या [3]गाड़ीमे रहूँ या उद्यानमें रहूँ सब जगह प्रतिवेदक [गुप्तचरलोग] प्रजाका हाल चाल मुझे सुनावें। मैं प्रजा का काम सब जगह करूंगा। [4]यदि मैं स्वयं अपने मुखसे आज्ञा दूं कि [अमुक] दान दिया

२—वचसि=(सं०) वर्चसि (पुरीष) अर्थात् "पाखानेमें"। श्रीयुत जायसवाल जीने कौटिलीय अर्थशास्त्रके आधारपर "वचम्हि" का अर्थ व्रजे अर्थात् "अस्त-बलमें" किया है (Indian Ant. 1918, p. 53) श्रीयुत विधुशेखर भट्टाचार्य शास्त्रीने अमरकोशके आधारपर "वचम्हि" का अर्थ "व्रजे" अर्थात् "सड़कपर" यह किया है (देखिये Indian Antiquary 1920 P. 53)

३—विनतसि=(सं०) विनीते=गाड़ी में। इस लेखमें "विनीत" का क्या अर्थ है यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग इसका अर्थ "गाड़ी" करते हैं। पं० रामावतार शर्माने इसका अर्थ "व्यायामशाला" किया है। कौटिलीय अर्थशास्त्रके आधारपर श्रीयुत जायसवाल जीका मत है कि "विनितसि" का अर्थ "विनय" अर्थात् "कवायद" इत्यादि है (देखिये Indian Antiquary 1918 P. 53)

४—गिरनार शिलालेखमें यह वाक्य इस प्रकार है:—"य च किंचि मुखतो आञपयामि स्वयं दापकं वा स्नावापकं वा य व पुन

जाय या (अमुक) काम किया जाय या महामात्रोंको कोई आवश्यक आज्ञा दी जाय और यदि उस विषयमें कोई विवाद [मतभेद] उनमें उपस्थित हो या [मंत्रि-परिषद्] उसे अस्वीकार करे तो मैंने आज्ञा दी है कि फौरन ही हर घड़ी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय, क्योंकि मैं कितना ही परिश्रम करूं और कितना ही राज-काज करूं मुझे पूरा संतोष नहीं होता । सब लोगोंका हित करना मैं अपना कर्तव्य समझता । सब लोगोंका हित विना परिश्रम और राज-कार्य-सम्पादनके नहीं हो सकता । सब लोगोंके हित-साधनकी

महामात्रेसु आचायिक आरोपितं भवति ताय अथाय विवादो निझती व संतो परिसायं आनंतरं पटिवेदेतव्यं मे सर्वत्र सर्वे काले एवं मया आज्ञापितं" श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवालने इसका अर्थ इस प्रकार किया है "यदि मैं स्वयं अपने मुखसे आज्ञा दूं कि अमुक आज्ञा (लोगोंको) दी जाय (दापकं) या सुनायी जाय (श्रावकं) अथवा महामात्रोंको कोई आवश्यक आज्ञा (आचायिके = अत्यायिकं) दी जाय और यदि उस विषयमें (महामात्रोंकी) परिषद्में कोई विवाद (मतभेद) उपस्थित हो या परिषद् उसे अस्वीकार करे (निझती) तो मैंने आज्ञा दी है कि फौरन ही हर घड़ी और हर जगह मुझे सूचना दी जाय ।"(Indian Antiquary 1913, P.288)। "निझती" शब्द जायसवालके मतमें(सं०) "निज्ञप्ति"

अपेक्षा और कोई बड़ा कार्य नहीं है । जो कुछ मैं पराक्रम करता हूं सो इसलिये कि प्राणियों के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उऋण होउं और यहां कुछ लोगोंको सुखी करूं तथा परलोकमें उन्हें स्वर्गका लाभ करवाउं । यह धर्म-लेख इसलिये लिखवाया गया है कि यह चिरस्थित रहे और मेरे स्त्री पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्र सब लोगोंके हितके लिये पराक्रम करें । अत्यधिक पराक्रमके विना यह कार्य कठिन है ।

शब्दका अपभ्रंश है जिसका अर्थ अंगरेज़ी में Casting away or rejection और हिन्दीमें "अस्वीकार" हो सकता है । "परिषद्" को जायसवाल जीने बौद्ध संघके अर्थमें नहीं बल्कि "महामात्रोंकी परिषद्" के अर्थमें लिया है । "अर्थशास्त्र" में भी कई जगह मन्त्रि-परिषद्का नाम आया है जिससे सिद्ध होता है कि इस लेखमें जिस परिषद्का ज़िक्र आया है वह कौटिलीय अर्थशास्त्र-की मन्त्रि-परिषद् छोड़कर और किसी दूसरे प्रकारकी सभा या परिषद् नहीं हो सकती ।

सप्तम शिला-लेख

मूल

गि० (१) देवानं पियो पियदसि राजा सर्वत इछति सवे पासंडा
का० देवानं पिये पियदसि लाजा सवता इछति सव पासंड
धौ० (१) देवानं पिये पियदसी लाजा सवत इछति [सव] पासं[डा]
जौ० .... .यदसी लाजा सवत इछति सव पासंडा
शा० (१) देवनं प्रियो प्रियशि रज सवत्र इछति स्रवे (२) प्रषंड
मा० देवन प्रिये प्रियद्रशि रज सव्रत्र इछति सव्र पषड

गि० वसेयु [।] सवे ते सयमं च (२) भावसुधिं च
का० वसेवु [।] सवे हि ते सयमं भावसुधि चा
धौ० वसेवू ति[।] सवे हि ते सयमं भावसुधी च
जौ० वसेव. [।] सवे हि ते सयमं भावसुधी च

शा० वसेयु [।] सब्रे हि ते सयम भवशुधि च
मा० वसेयु [।] सब्रे हि ते सयम भवशुधि च
गि० इछति [।] जनो तु उचावचछंदो उचावचरागो [।]
का० इछंति [।] जने चु उचावुचाछंदे उचावुचलागे [।]
धौ० इछंति [।] मुनिसा च (२) [उ]चावु च छंदा उचावुचलागा [।]
जौ० इछंति [।] मुनिसा च उचवुचछंदा उचावुचलागा [।]
शा० इछंति [।] (३)जनो चु उचवुचछंदो उचवुचरगो [।]
मा०(३३)इछंति [।] जने चु उचवुचछदे उचवुचरगे [।]
गि० ते सर्वं व कासंति एकदेसं व [illegible] [।]
का० ते सवं एकदेसं पि कछंति [।]
धौ० ते सवं वा एकदेसं व कछंति [।]
जौ० (६) . ... वा एकदेसं व कछंति [।]
शा० ते सम्रं व एकदेशं व(४)पि कषंति [।]

मा० ते सव्रं एकदेशं व पि कषति [।]

गि० (३) विपुले तु पि दाने . यस नास्ति सयमे

का० विपुले पि चु दानं असा नथि (२२) सयमे

धौ० विपुले पि च दाने अस नथि सयमे

जौ० विपुले पि च दाने ... ...

शा० विपुले पि चु दने यस नस्ति सयम

मा० पिपुले पि चु दने यस नस्ति सयमे

गि० भावसुधिता व कतंञता व दृढभातिता च निचा बाढं [।]

का० भावसुधि किटनाता दिढभातिता चा निचे बाढं [।]

धौ० भावसुधी च नीचे बाढं [।]

जौ० ...[धी] च नीचे बाढं [।]

शा० भव(धु)शुधि किटूञत दिढभतित निचे पढं [।]

मां० भवशुति किटनत द्रिढ्रभतित च(३४)निचे बढं [।]

संस्कृत-अनुवाद

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा सर्वत्र इच्छति, सर्वे पाषण्डाः वसेयुः इति। सर्वे हि ते संयमं भावशुद्धिं च इच्छन्ति। जनः तु उच्चावचच्छन्दः उच्चावचरागः। ते सर्वं एकदेशं अपि करिष्यन्ति। विपुलं अपि तु दानं यस्य नास्ति (तस्यापि) संयमः, भावशुद्धिः, कृतज्ञता, दृढ़भक्तिता च नित्या बाढम्।

हिन्दी-अनुवाद

धर्मका आंशिक पालन

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते हैं कि सबजगह सब सम्प्रदायके मनुष्य (एक साथ) निवास करें । क्योंकि हर एक सम्प्रदायके मनुष्य संयम और चित्त-शुद्धि चाहते हैं । किन्तु भिन्न भिन्न मनुष्योंकी इच्छा और अनुराग भिन्न भिन्न होता है । वे (यातो सम्पूर्ण रूपसे या) आंशिक रूपसे (धर्मका) पालन करेंगे । जो बहुत अधिक दान नहीं कर सकता उसमें भी संयम, चित्त-शुद्धि, कृतज्ञता, दृढ़ भक्तिका होना [1]नितान्त आवश्यक है ।

टिप्पणियां ।

१—"नितान्त आवश्यक है" "नीचे बाढं" (सं० नित्या बाढम्) बाढं = नितान्त । नित्या = आवश्यक । बूलर ने "नीचे बाढं" का "नीच मनुष्य मे प्रशंसनयि है" यह अर्थ किया है ।

अष्टम शिला-लेख।

मूल।

गि०	(१)	अतिकातं	अंतरं	राजानो	विहारयातां	
का०		अतिकंतं	अंतलं	देवानं पिया	विहालयातं	नाम
धौ०		.... कंतं	अंतलं	लाजाने	विहालयातं	नाम
जौ०	(१०)	..तकंतं	अंतलं	लाजा.	....	....
शा०		अतिक्रतं	अंतरं	देवनं प्रिय	विहरयत्र	नम
मा०		अति क्रतं	अंतरं	देवन प्रिय	विहरयत्र	नम

गि०	अयासु	[।]	एत	मंगव्या	अञानि	च	एतारिसानि
का०	निखमिसु	[।]	हिदा	मिगविया	अंनानि	चा	हेडिसानि
धौ०	.खमिसु	[।]	.त	मिगविय	अंनानि	च	एदिसानि

जौ० .... या अंनानि च ल........
शा० निक्रमिषु [।] अत्र म्रुगय अञानि च हेदिशानि
मा० निक्र मिषु [।] इह म्रिगविय अञानि च एदिशानि

गि० (२) अभिरमकानि अहुंसु [।] सो देवानं पियो पियदसि
का० अभिलामानि हुसु [।] देवानं पिये पियदसि
धौ० अभिलामानि हुवंति नं [।] से देवानं पिये (४) पियदसी
जौ० ....मानि हुवंति नं [।] से देवानं पिये (११) पियदसी
शा० अभिरमनि अभवसु [।] सो देवनं प्रियो प्रियद्रसि
मा० अभि रमनि हुसु [।] से देवनं प्रिये प्रियद्रशि

गि० राजा दसवसाभिसितो संतो अयाय संबोधिं [।]
का० लाजा दसवसाभिसिते संतं निकमिठा संबोधि [।]
धौ० लाजा दसवसाभिसिते निखमि संबोधी [।]
जौ० लाजा दस.............. ....

शा० रज दशवषभिसितो सतो निक्रमि सबोधि [।]
मा० (२५) रज दशवष भिसिते संतं निक्रमि संबोधि [।]
गि० (३) तेनेसा धंमयाता [।] एत अयं होति
का० (२३) तेनता धंमयाता [।] हेता इयं होति
धौ० [न]ता ध.... [।] त[त] एस होति
जौ० .... [।] तत एस होति
शा० तेनं द ध्रमयत्र [।] अत्र इयं होति
मा० तेनदं ध्रमयद्र [।] अत्र इयं होति

गि० बाम्हण समणानं दसणे च दाने च थैरानं
का० समनबंभनानं दसने चा दाने च वुधानं
धौ० समनबाभनानं दसने च दाने च वुढानं
जौ० स........... .... च दाने च वुढानं
शा० श्रमणब्रमणानं द्रशने दनं वुढनं

मा०	अमणब्रमणान	द्रशने	दने च	घम्रम
गि०	दमणो च (४)	हिंसापटिविधानो	च	जानपदस च
का०	दमने च	हिलंनपटिविधाने	चा	जानपदसा
धौ०	दसने च (५)	हिलंनपटिविधाने	च	जानपदस
जौ०	दसने च (१२)	हिलंनपटि विधाने	च	....
शा०	द्रशने	हि अपटिविधने	च	जनपदस
मा०	द्रशने च	ह्लिअपटिविधने	च (३६)	जनपदस

गि०	जानस	दमनं	धंमानुसस्टी च	धमपरिपुछा च	[।]
का०	जनसा	दसने	धंमनुसथि चा	धमपलिपुछा च	[।]
धौ०	जनस	दसने च	धंमानुसथी च	.म लिपुछा च	[।]
जौ०	......	....	....	मपालिप.......	[।]
शा०	जनस	द्रशनं	ध्रमनुशस्ति	ध्रमपरिपुछ च	[।]
मा०	जनस	द्रशने	ध्रमनुशस्ति च	ध्रमपरिपुछ च	[।]

१३

गि०	(५) तदोपया	एसा	ध्रुव	रति	भवति	देवानं	प्रियस
का०	ततो या	एसे	ध्रुवे	लाति	होति	देवानं	पियसा
धौ०	तदुपया	एस	ध्रुवे	अभिलामे	होति	देवानं	पियस
जौ०	...	...	...	...लामे	होति	देवानं	पियस
शा०	ततोपयं	एष	ध्रुवे	रति	हुति	देवनं	प्रियस
मा०	ततोपय	एषे	ध्रुवे	रति	होति	देवन	प्रियस

गि०	प्रियदसिनो	राजो	भगो	अंते	(।)
का०	पियदसिसा	लाजिने	मगे	अंते	(।)
धौ०	पियदसिने	लाजिने	मगे	[अंते]	(।)
जौ०	(१३) पियदसिने	लाजिने	मगे	अ.	(।)
शा०	प्रियद्रशिस	रञो	भगि	अंति	(।)
मा०	प्रियद्रशिस (१७)	रजिने	मगे	अंतो	(।)

संस्कृत-अनुवाद

अतिक्रान्तं अन्तरं देवानां प्रियाः विहारयात्रां नाम निरक्रमिषुः (न्ययासिषुः वा)। इह मृगया अन्यानि च ईदृशानि अभिरामाणि अभूवन्। देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा दशवर्षोभिषिक्तः सन् निरक्रमीत् (अयात् वा) संबोधिम्। तेन एषा धर्मयात्रा। अत्र इदं भवति श्रमणब्राह्मणानां दर्शनं च दानं च वृद्धानां दर्शनं च हिरण्यप्रतिविधानं च जानपदस्य जनस्य दर्शनं धर्मानुशिष्टिः च धर्मपरिपृच्छा च। ततः प्रभृति (तदुपगः) एषा भूयः रतिः भवति देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः भागे अन्यस्मिन्।

हिन्दी-अनुवाद

धर्म-यात्रा।

बहुत दिन हुए [1]देवताओंके प्रिय (अर्थात् राजा लोग) विहार-[2]यात्राके लिये निकलते थे। इन यात्राओंमें मृगया (शिकार) और इसी प्रकारके दूसरे आमोद प्रमोद होते थे। देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजाने राज्याभिषेकके १० वर्ष बाद [3]सम्बोधि (अर्थात् ज्ञान-

---

टिप्पणियां।

१—"देवताओंके प्रिय" = "देवानं पिया" = (सं०) "देवानां प्रियाः" गिरनार के शिला-लखमें "देवानं पिया" (बहुवचन) के स्थान पर "राजानो" (बहुवचन) आता है जिससे पता लगता है कि "देवानं पिय" शब्द राजाके अर्थमें व्यवहार किया गया है (प्रथम लघुशिला-लेखकी दूसरी टिप्पणी देखिये)

२—कौटिलीय अर्थ-शास्त्रमें भी विहार-यात्राका नाम आता है। अश्वघोषकृत बुद्ध-चरितके तृतीय सर्गके तृतीय श्लोकमें भी विहार-यात्राका उल्लेख आया है।

३—सम्बोधिः—"सम्बोधि" का अर्थ रीस डेविड्ज साहबने बहुत अच्छी तरहसे स्पष्ट कर दिया है। "सम्बोधि" अथवा

प्राप्तिके मार्ग) का[3] अनुसरण किया । इस प्रकार धर्मयात्रा (की प्रथाका प्रारम्भ हुआ) । धर्म-यात्रामें यह होता है:—श्रमण और ब्राह्मणोंका दर्शन करना और उन्हें दानदेना, वृद्धोंका दर्शन करना और सुवर्ण दान देना, ग्रामवासियोंके पास जाकर उन्हें उपदेश देना और धर्म विषयक विचार करना । उस समयसे अन्य (आमोद प्रमोदके) स्थानपर इसी धर्म-यात्रामें देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा बारम्बार आनन्द लेते हैं ।

ज्ञान प्राप्त करनेके लिये जिस मार्गका अनुसरण अशोकने किया था वह अष्टांग मार्गके नामसे कहा जाता है । इसी मार्गका अनुसरण करनेसे मनुष्य अर्हत पदको प्राप्त कर सकता है । जो मनुष्य इस मार्गका अनुसरण करता है वह सम्बोधि-परायण कहलाता है । इस मार्गका नाम अष्टांग मार्ग इसलिये पड़ा कि इसका अनुसरण करनेके लिये मनुष्यको आठ गुण अपनेमें लाने पड़ते हैं । (J. R. A.S., 1898 p 619)

बूलर साहबने इसका अर्थ "सच्चा ज्ञान" किया है और लिखा है कि "अशोक सच्चा ज्ञान प्राप्त करनेके लिये रवाना हुए" । श्रीयुत भण्डारकरका यह मत है कि सम्बोधिका अर्थ "महाबोधि" होना चाहिये । वहां बुद्ध भगवान्‌ने बुद्ध-पदको प्राप्त किया था । उनके मतके अनुसार अशोक सम्बोधि अर्थात् महाबोधिका दर्शन

करनेके लिये गये । वर्तमान गया प्रदेशका प्राचीन नाम महाबोधि था । वहां बौद्धों-का बड़ा भारी तीर्थ-स्थान है । जिन जिन स्थानोंसे बुद्ध भगवान्के जीवनकी प्रधान२ घटनाओंका सम्बन्ध है उन सब स्थानोंमें अशोक धर्म-यात्रा करते हुए गये थे । यह धर्मयात्रा उन्होंने गयासे प्रारम्भ की थी (Indian Antiquary, 1913 p 159)

नवम शिला-लेख

मूल

गि०	(१)	देवानं	पियो	प्रियदसि	राजा	एवं	आह [:—]	अस्ति		जनो
का०	(२४)	देवानं	पिये	पियदसि	लाजा		आहा [:—]			जने
धौ०	(६)	देवानं	पिये	पियदसी	लाजा	हेवं	आहा [:—]	अथि		[ज]ने
जौ०	(१४)	देवानं	पिये	पियदमी	लाजा	...	...	...	...	...
शा०	(१८)	देवनं	प्रियो	प्रियद्रशि	रय	एवं	अहति [:—]			जनो
मा०	(१)	देवन	प्रिये	प्रियद्रशि	रज	एवं	अह [:—]			जने

गि०	उचावचं	मंगलं	करोते	आवाधेसु वा (२)	आवाह	विवाहेसु
का०	उचावुचं	मंगलं	कलेति	आवाधसि	अवाहसि	विवाहसि
धौ०	उचावुचं	मंगलं	कलेति	आवाधे ...	.............सा......	

जौ० ....

शा० उचवुचं मंगलं करोति अवधे अवहे विवहे

मा० उचवुचं मगलं करोति (२) अवधासि अवहासि विवहसि

गि० वा पुत्रलाभेसु वा प्रवासंम्हि वा [।] एतम्ही च अञाम्हि च

का० पजोपदाये पवाससि [।] एताये अंनाये चा

धौ० .[जो]पदाये पवासासि [।] ७) एताये अंनाये च

जौ० पजुपदाये पवाससि [।] एतये अंनाये च

शा० पजुपदने प्रवसे [।] एतये अञये च

मा० प्रजोपदये प्रवसस्पि [।] एतयं अञये च

गि० जनो उचावचं मंगलं करोते [।] [३] एत तु

का० एदिसाये जने बहु मगलं कलोति [।] हेत चु

धौ० हेदिसाये जने बहुकं मंगलं क[लेति][।] [एत] तु

जौ०(१५)हेदिसाये जने बहुकं ... ...

शा० एदिशिय जनो ब मंगलं करोति [।] अत्र तु
मा० एदिशये जने (३) बहु मंगलं करोति [।] अत्र तु

गि० महिडायो बहुकं च बहुविधं च छुदं च
का० अबकजानियो बहु चा बहुविधं चा खुदा चा
धौ० इथी बहुकं च बहु[वि]धं च खुद[कं] च
जौ० ... ...
शा० स्त्रियक बहु च बहुविधं च पुतिकं च
मा० बलिकजनिक बहु च बहुविध च खुद च

गि० निरथं च मंगलं करोते [।] त कतव्यं एव तु
का० निलथियां चा मगलं कलंति [।] (२५) से कटवि चेव खो
धौ० निलठियं च मंगलं कलेति [।] (८) से कटविये चेव खो
जौ० ... ... मंगलं कलेंति [।] से कटविये चेव खो
शां० निरठ्रियं च मंगलं करोत्ने [।] सो कटवो च खो

मा० निराभ्रिय च मगलं करोति [।] से कं विं च खो

गि० मंगलं [।] अपफलं तु खो (४) एतरिसं मंगलं [।]
का० मंगले [।] अपफले चु खो एसे [।]
धौ० मंगले [।] अपफले चु खो एस हेदिसे मंग[ले] [।]
जौ० मंगले [।] (१७) अपफले चु खो एस हेदिसे म.........
शा० मंगल [।] अपफलं तु खो एतं [।]
मा० (४) मगले [।] अपफले चु खो एषे [।]

गि० अयं तु महाफले मंगले य धंममंगले [।]
का० इयं चु खो महाफले ये धंममगले [।]
धौ० .[यं] [चु खो] महाफले ए [धं]ममंगले [।]
जौ० .... [।]
शा० इमं तु खो महफल ये ध्रमंगलं [।]
मा० इयं चु खो महफले ये ध्रमंमंगले [।]

गि० तत दासभतकम्हि सम्यप्रतिपती गुरूनं
का० हेता इयं दासभटकसि सम्यापटिपाति गुलुना
धौ० तत एस [दासभटक सि] संम्यापाटिपति (६) गुलूनं
जौ० ....भटकसि संम्यापटिपति गुलूनं
शा० (१६) अत्र इम दसभटकस सम्मप टिपति गरुन
मा० अत्र इयं दसभटकसि सम्यपटिप.ति गुरुन

गि० अपचिति साधु (५) पाणेसु सयमो साधु बम्हणसमणानं
का० अपाचे.ति पा.नं सयपे समनबंभनानं
धौ० अपाचि. ....[मे] समनबाभनानं
जौ० अपाचति पानेसु सयमे (१७) समनबाभना
शा० अपचिति प्रणानं संयम श्रमणब्रमणान
मा० अपचिति (५) प्रणान सयमे श्रमणब्रमणान

गि० साधु दानं [।] एत च अञ च एतारिसं धंममंगलं

का० दाने [।] एसे अंने वा होईसे ते धंममगले
धौ० दाने [।] एस अंने च .... धं[म]मंगले
जौ० ...... [।] एस अंने ....
शा० दन [।] एतं अञे च ध्रममंगलं
मा० दने [।] एषे अणे च एदिशे ध्रममगले

गि० नाम [।] त वतय्वं पिता व (६) पुतेन वा भात्रा वा
का० नामा [।] से वतविये पितिना पि पुतेन पि भातिना पि
धौ० [ना]म [।] [त] वत ...पितिना. पु[ते]न पि भातिना पि
जौ० .... पितिना पि पुतेन पि भातिना पि
शा० नम [।] सो वतवो पितुन पि पुत्रेन पि भ्रतुन पि
मा० नम ( ) से वतवियं पितुन पि पुत्रेन पि भतुन पि

गि० स्वामिकेन वा
का० सुवामिकेना पि मितसंथुतेना आव पटिवेसियेना पि

घौ० (१०) सुवामिकेन [पि]
जौ० सुवामिकेन पि
शा० स्पामिकेन पि मित्रसंस्तुतेन अव प्राति शियेन
मा० स्पामिकेन (६) मित्रसं तुतेन अव पटिवेशियेन पि

गि० इदं साधु इदं कतय्वं मंगलं आव तस अथस
का० (२६) इयं साधु इयं कटविये मगले आव तसा अथसा
घौ० ... ...ले आव तस अठस
जौ० इयं साधु इयं कटाविये (१८)... ... ...
शा० इमं सधु इमं कटवा मंगलं यव तस अठस
मा० इयं सधु इयं कटविये मगले अव तस अथस

गि० निस्टानाय [।] अस्ति च पि वुतं (७) साधु दनं इति [।]
घौ० निफातिया [।] अथि पि. वं वुते दाने साधूति [।]
जौ० ....

का० निवुतिया [।] इमं कथामिति *[।]
शा० निवुटिय [।] निवुटस्पि व पन (२०) इमं केष *[।]
मा० निवुटिय [।] निवुटश्पि व पुन इम केषमिति *[।]

गि० न तु एतारिसं अस्ति दानं य अनगहो व
धौ० से नथि ... . अनुगहे वा
जौ० . ... से दाने अनुगहे वा
का० ए ह इवले मगले संमथियक्ये से होति [।]
शा० ये हि एत्रके मगले संश यिके तं [ ]
मा० ए हि अत्रके म... (७) शथयिके से [।]

गि० यारिसं धंमदानं च
धौ० (११) [आ]दिये धंमदाने

---

*हुल्श साहेबके अनुसार इसका पाठ इस प्रकार है:—(J. R. A. S., 1913, p 654) का० कथामि ति; शा० कषं; मा० कषं ति

जौ० आदि[से] धंमदाने
का० सिया व तं अठं निवटेया . मिथा पुना
शा० सिय धो तं अठं निवटंय ति सिय पन
मा० सिय व तं अथं निवटेय सिय पन

गि० धम्मानुगहो व [।] त तु खो मित्रेन व सुहृदयेन
धौ० धंमनुगहे . . . . [मि].. .
जौ० धंमानुगहे च [ ] से चु खो मितेन (१८) .
का० नो हिदलोकिके च वसे [।] इयं पुना
शा० इश्रलोक चे वो तिथे [ ] इय पुन
मा० नो इद च लोकि च वसे [।] इयं पुन

गि० वा (८) अतिकेन व सहायन व ओवादितव्यं
धौ० . . केन सहायेन [पि] वियोवादितवि.
जौ० ....

का० धंममगले अकालिक्ये [।] हंचे पि तं अथं नो
शा० ध्रममगलं अकालिकं [।] यदि पुन तं अठं न
मा० ध्रममगले अकालिके [।] हचे पि तं अथ्रं न

गि० तम्हि तम्हि पकरणो इदं कचं इदं
धौ० ... [त]सि पकलनसि (१२) ...
जौ० ... ... .यं
का० निटेति हिद अठं पलत अनंतं पुना
शा० निवटे हिअ अथ परत्र अनंतं पुञं
मा० निवटेति हिद अ. परत्र (८) अनंतं पुञं

गि० साध इति इमिना सकं (९) स्वगं आराधेतु इति
धौ० ... ... [ला] धयितवे
जौ० साधू इमेन सकिये स्वगे आलाधयितवे
का० पवसाति [।] हंचे पुना तं अठं निषते ति

शा० प्रसवाति [।] इचे पुन अथं निवटे तिं
१५ मा० प्रसवाति [।] इचे पुन तं अथ निवटे ति

गि० किं च इमिना कतव्यतरं यथा स्वगारधि [।]
धौ० ... ...ट...... ... स्वगस आलधी [।]
जौ० किं हि इमेन कटविधतला (२०)... .... [।]
का० हिद ततो उभये . (२७) लधे होति हिद चा से अठे पलता चा
शा० ततो उभयस लधं भोति इद च सो अठो परत्र च
मा० हिद ततो उभयस व लधे होति हिद च से अथे परत्र च

का० अनंतं पुंनं पसवाति तेना धंममगलेना [।]
शा० अनंतं पुञं प्रसवाति तेन ध्रमंमंगलेन [।]
मा० अनंतं पुणं प्रसवाति तेन ध्रम: लेन [।]

संस्कृत-अनुवाद

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा आह अस्ति जनः उच्चावचं मंगलं करोति। आबाधे, आवाहे, विवाहे, प्रजोत्पादे, प्रवासे, एतस्मिन् अन्यस्मिन् च ईदृशे जनः बहु मंगलं करोति अत्र तु अभंक जनन्यः (महिलाः, स्त्रियः) बहु च बहुविधं च क्षुद्रं च निरर्थं च मंगलं कुर्वन्ति। तत् कर्तव्यं चैव खलु मंगलम्। अल्पफलं तु खलु एतत्। इदं तु खलु महाफलं यत् धर्ममंगलम् अत्र इदं दासभृतके सम्यक्प्रतिपत्तिः, गुरूणां अपचितिः, प्राणानां संयमः, श्रमणब्राह्मणानां दानम्। एतत् अन्यत् च ईदृशं तत् धर्ममंगलं नाम। तत् वक्तव्यं पित्रापि पुत्रेणापि भ्रात्रापि स्वामिनापि मित्रसंस्तुतेन यावत् प्रातिवेशिकेनापिः—"इदं साधु इदं कर्तव्यं मंगलं यावत् तस्य अर्थस्य निर्वृत्तिः (निष्पत्तिः।" इदं कथमिति(?) यत् हि ऐहिकं (अन्यकं) मंगलं सांशयिकं तत् भवति। स्यात् वा (ऐहिकं मंगलं) तं अर्थं निर्वर्त्तयेत् स्यात् पुनः न; (स्यात् ऐह लौकिके च वसेत् (तिष्ठेत्) इदं पुनः धर्ममंगलं आकालिकम् (सार्वकालिकमित्यर्थः) । चेत् अपि (धर्ममंगलं) तं अर्थं न निर्वर्तयेत् इह, अथ परत्र अनन्तं पुण्यं प्रसूते। चेत् पुनः तं अर्थं निर्वर्त्तयेत् इह, ततः उभयं लब्धं भवति, इह च सः अर्थः परत्र च अनन्तं पुण्यं प्रसूयते तेन धर्ममंगलेन।

हिन्दी-अनुवाद

सच्चा मंगलाचार ।

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा कहते हैं:—लोग विपत्ति-कालमें. पुत्रके विवाहमें, कन्याके विवाहमें, सन्तानकी उत्पत्तिमें, परदेश जानेके समय और इसी तरहके दूसरे अवसरोंपर अनेक प्रकारके बहुतसे मंगलाचार करते हैं। ऐसे अवसरोंपर स्त्रियां अनेक प्रकारके क्षुद्र और निरर्थक मंगलाचार करती हैं। मंगलाचार अवश्य करना चाहिये, किन्तु इस प्रकारके मंगलाचार प्रायः अल्पफल देने वाले होते हैं। धर्मका जो मंगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इसमें (धर्मके मंगलाचारमें) दास और सेवकोंके प्रति उचित व्यव.ार, गुरुओंका आदर, प्राणियोंकी अहिंसा और श्रमण तथा ब्राह्मणोंको दान-यह सब करना पड़ता है। यह सब कार्य तथा इस प्रकारके अन्य कार्य धर्मके मंगलाचार कहलाते हैं। इसलिये पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, साथी और कहां तक कहें पड़ोसीको भी यह कहना चाहिये:—"यह मंगलाचार अच्छा है इसे तब तक करना चाहिये जब तक अभीष्ट कार्यकी सिद्धि न हो"। यह

कैसे[1] ? (अर्थात् धर्मके मंगलाचारसे अभीष्ट कार्य कैसे सिद्ध होता है ?) इस संसारके जो मंगलाचार हैं वे सन्दिग्ध हैं अर्थात् उनसे अभीष्ट कार्य सिद्ध भी हो सकता है और नहीं भी सिद्ध हो सकता। सम्भव है उनसे केवल ऐहिक फल मिले। किन्तु धर्मके मंगलाचार कालसे परिच्छिन्न नहीं हैं (अर्थात् सब कालमें उनसे फल मिलता है) यदि इस लोकमें उनसे अभीष्ट कार्यकी सिद्धि न हो तो परलोकमें अनन्त पुण्य होता है। यदि इस लोकमें अभीष्ट कार्य सिद्ध हो गया तो दोनों लाभ हुए अर्थात् यहां भी कार्य सिद्ध हुआ और परलोकमें भी अनन्त पुण्य प्राप्त हुआ।

टिप्पणियां।

१—"यह कैसे" से लगाकर अन्त तक का इस लेखका भाग गिरनार, धौली और जौगढ़ में इस प्रकार है:—"और ऐसा कहा भी है कि दान देना अच्छा है। पर ऐसा कोई दान या अनुग्रह नहीं है जैसा धर्म-का दान और धर्मका अनुग्रह है। इस लिये मित्र सुहृद्, ज्ञाति या साथियोंको अवसर पर कहना चाहिये कि 'यह करना चाहिये, यही अच्छा है और इससे स्वर्ग भी मिल सकता है'। जिस कामसे स्वर्ग मिले उससे बढ़कर क्या हो सकता है ?" गिरनारमें मूलका यह भाग इस प्रकार है:-

"अस्ति च पि वुतं-साधु दनं इति । न तु एतारिसं अस्ति दानं व अनगहो व यारिसं धंमदानं च धमानुगहो व । त तु खो मित्रेन व सुहृदयेन वा ञातिकेन सहायन व ओवादितव्यं तंहि तंहि पकरणे इदं कचं इदं साध इति इमिना सकं स्वगं आराधेतु इति । कि च इमिना कतव्यतरं यथा स्वगारधि ।" (गिरनार)

दशम शिला-लेख

मूल

गि० [१] देवानं प्रियो प्रियदसि राजा यसो व कीति व न महाथावहां
का० - देवानं पिये पियदषी लाजा यषो वा किति वा नो महथावा
धौ० (१३) वानं पिये पियदसी लाजा यसो वा किटी वा न …ठा…हं
जौ० (२१) …… …… ……… …… … … … … … …… …
शा० (२१) देवन प्रिये प्रियद्रशि रय यशो व किट्रि व नो महठवह
मा० …… (८)प्रिये प्रि. द्रशि रज यशो व किटि व न महथ्रवहं

गि० मंञते अञत तदात्पनो
का० मनाति अनता यंपि यसो वा किति वा इछति तदत्वाये
धौ० मनते …… … यसो वा किथी वा इछति तदत्वाये
जौ० …… …… … यसो वा किटी वा इछति तदत्वाये

शा० मञाति अअत्र योपि यशो किट्रि व इछति तदत्तये
मा० मयाति अत्राञ यंपि यशो व किटि व इछति तदत्तये

गि० दिघाय च मे जनो (२) धंमसुस्रुसा सुस्रुमतां
का० अयातिये चा जने . धंमसुसुषा सुसुषातु मे ति
धौ० अ···· . जने (१४) ·······सं सु. सतु मे
जौ० आयातिये च जने धंमसुसूसं सुसूमतु मे
शा० आयतिय च जने ध्रमसुश्रष सुश्रुषतु मे ति
मा० अयतिय चो जने ध्रमसुश्रुष सु. षतु मे ति

गि० धंमवुतं च अनुविधियतां [।] एतकाय देवानं पियो
का० धंमवतं वा अनुविधियतु ति [।] एतकाये देवानं पिये
धौ० धंम··· . ·············मे [।] एतकाये
जौ० (२२) ······ . ··············· ••······
शा० ध्रंमवुतं च अनुविधियतु [।] एतकये देवन प्रिये
मा० (१०)सं अनुविधियतु ति [।] एतकये देवनं प्रिये

गि० पियदसि राजा यसो व किति व इछति [।] (३) यं तु किंचि
का० पियदसि (२८) लाजा यषो वा किति वा इछ [।] अं चा किछि
धौ० य. .. वा ...
जौ० ... ...
शा० प्रियद्रशि रय यशो व किट्रि व(२२) इछति [।] यं तु किचि
मा० प्रियद्रशि रज यशो व किटिव इछति [।] य तु किचि

गि० पराकमते देवानं प्रियदसि राजा त सवं
का० लकमति देवानं पिये पियदषि लजा त पवं
धौ० पलकमाति देवानं पिये
जौ० ...ति देवानं पिये
शा० परक्रमति देवनं प्रियो प्रियद्रशि रय तं सत्रं
मा० परक्रमति देवन प्रिये प्रियद्रशि रज त सत्रं

गि० पारत्रिकाय [;] किंति [?] सकले अपपरिस्रवे
का० पालतिक्याये वा [;] किति [?] सकले अपपलाषवे

धौ० पालातिकाये [;] (१५) किंति [?] सकले अपपलिसवे
जौ० पालतिकाये वा [;] किंति [?] सकले अपपालिसवे
शा० परत्रिक्रयें व [;] किति [?] सकले अपरिस्रवे
मा० परत्रिक्रये व [;] किति [?] ... (१·१) अपपरिसवे

गि० अस [।] एस तु परिस्रवे य अपुंञं [।] (४) दुकरं
का० षियातिति [।] एषे चु पलिसवे ए अपुंने [।] दुकले
जौ० हुवे[या]ति [।] पलिस . ... [।] [दु]कले
जौ० हुवेया ति [।] (२३) ... . [।] ...
शा० सिय ति [।] एषे तु परिस्रवे यं अपुञं [।] दुकरं
मा० सिय तिति [।] एषे तु परिसवे ए अपुञं [।] दुकरं

गि० तु खो एतं छुद्रकेन व जनेन उसटेन व अञत्र
का० चु खो एषं खुदकेन वा वगेन उषुटेन वा अनतं
धौ० . . .. ..त
जौ० . . ..

शा० तु खो एषे खुद्रकेन वग्रेन उसटेन व अअत्रं
मा० चु खो एषे खुद्रकेन व वग्रेन उसटेन व अअत्र

गि० अगेन पराक्रमेन सवं परिचजित्पा [।] एत तु खो
का० अगेना पलकमेना षवं पलितिदितु [।] हेत चु खो
धौ० अगे . ...न सवं च पलितिजि[तु]
जौ० ... . लितिजितु
शा० अग्रेन परक्रमेन सवं परितिजितु [।] एतं चु
मा० अग्रेन परक्रमेन सत्रं पारिति. तु [।] ए. तु खो

गि० उसटेन दुकरं [।]
का० (२९) उषटेन वा दुकले [।]
धौ० (१६) खुदकेन वा उसटेन वा [।] उसटेन चु दुकलत [ले] [।]
जौ० खुदकन वा उसेटन वा [।] उसटेन चु दुकलतले [।]
शा० उसटे ....
मा० उसटेन व दुकर [।]

संस्कृत-अनुवाद

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा यशः वा कीर्तिं वा न महार्थावहं मन्यते अन्यत्र। यत् अपि यशः वा कीर्तिं वा इच्छति तदात्वे आयतौ च जनः धर्मशुश्रूषां शुश्रूषतां मम इति धर्मव्रतं अनुविधत्तां इति। एतत्कृते देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा यशः वा कीर्तिं वा इच्छति। यत् च किंचित् पराक्रमते देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा तत् सर्वं पारत्रिकाय एव: किमिति (?) सकलः अपपरिस्रवः स्यात् इति। एषः तु परिस्रवः यत् अपुण्यम्। दुष्करं तु खलु एतत् क्षुद्रकेण वा जनेन (वर्गेण) उच्चता वा अन्यत्र अग्र्यात् पराक्रमात् सर्वं परित्यज्य। एतत् तु खलु उच्चता वा दुष्करम्।

हिन्दी-अनुवाद

सच्ची कीर्ति।

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा यश या कीर्तिको अन्यत्र (परलोकके लिये) बड़ी भारी चीज नहीं समझते। जो कुछ यश या कीर्ति वे चाहते हैं सो इसलिये कि वर्तमान और भविष्य कालमें 'मेरी प्रजा धर्मकी सेवा करे और धर्मके व्रतका पालन करे। केवल इसीलिये देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा यश कीर्तिकी इच्छा करते है। देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा जो कुछ भी पराक्रम करते हैं वह सब परलोकके लिये करते हैं, जिसमें

टिप्पणियां।

१—"मेरी प्रजा" = "मे जनो" (गि०) अन्यत्र "च जने" यह पाठ है।

२—"विपत्तिसे रहित" = "अपपरिस्रवे" (गि०) "अपरिस्रवे" (शा०) = सं० "अल्पपरिस्रवः" अथवा "अप-परिस्रवः"

कि सब लोग [2]विपात्तिसे रहित हो जांय । पाप ही एक मात्र विपात्ति है । सब [3]परित्याग करके बिना बड़े पराक्रमके छोटे या [4]बड़े कोई भी इस (पुण्य) को नहीं कर सकते । यह (पुण्य करना) बड़े लोगोंके लिये भी दुष्कर है ।

३—"सब परित्याग करके" "सर्वं परिच्चिज्त्वा" (गि०) = सं० "सर्वं परित्यज्य" ।

४—"बड़े" = "उसटेन" (गि०) = सं० "उशता" ।

एकादश शिला-लेख ।

मूल ।

गि० (१) देवानं प्रियो पियदसि राज एवं आह [:-] नास्ति एतारिसं
का० देवानं पिये पियदषि लाजा हेवं हा [:-] नथि हेदिषे
शा० (२३) देवनं प्रियो प्रियद्रशि रय एवं अहति [:-] नस्ति एदिशं
मा० ... प्रिये प्रियद्रशि रज एवं अह [:-] नस्ति .दिशे

गि० दानं यारिसं धंमदानं धंमसंस्तवो वा
का० दाने आदिषं धंमदाने
शा० दनं यदिशं ध्रमदनं ध्रमसंस्तवे
मा० दने अ दशे ध्र दने ध्रमस.वे

गि० धंमसंविभ गो व धंमसंबधो व [।] (२) तत इदं भवाति
का० धंमषंवि गे धंमषंबधे [।] तत एषे
शा० ध्रमसंविभगो ध्रमसंबंधो [।] तत्र एतं
मा० ध्रमसंविभगे ध्रम...धे [।] (१२) तत्र एषे

गि० दासभतकम्हि सम्यप्रतिपती मातरि पितरि साधु सुस्रुसा
का० दाषभटकषि षम्यापटिपति मातापितिषु सुषुषा
शा० दसभटकनं सम्य ाटिप ति . म पितुषु सुश्रुष
मा० दसभट.स सम्यसंपाट ति मतपितुषु ...

गि० मित सस्तुतञातिकानं बाम्हणसमणानं साधु दानं
का० मितषथुतना तिक्यानं समनबंभनानं दाने
शा० मित्रस्त्तुतञातकनं श्रमण श्रमणनं (२४) दनं
मा० ...(१३)ं तुतञातिकन श्रमणब्रमणान दने

गि० (३) प्राणानं अनारंभो साधु [।] एत वतव्यं पिता व पुत्रेन व
का० (३०) पानानं अनालंभे [।] एषे वतविये पितिना पि पुते पि
शा० प्रणनं अनरंभो [।] एतं वतवो पितुन पि पुत्रेन पि
मा० प्रणन अनरंभ [।] एषे वत वेये पितुन पि पुत्रेन पि

गि० भाता व मितसस्तुतञातिकेन व आव पटिवेसियेहि
का० भातिना पि षवामिक्येन पि मितसंथुताना अवा पटिवेसियेना

शा० भ्रतुन पि समिकेन पि मित्रसंस्तुतेन अव प्रतिवेशियेन
मा० भतुन पि स्पमि... पि मित्रसंस्तुतेन अव पाटिवेशियेन

गि० इदं साधु इदं कतव्यं [।] (४) सो तथा करु इलोकचस
का० इयं साधु इयं कटावियं [।] शे तथा कलंत हिदलोकिक्ये च
शा० इमं सधु इमं कटवो [।] सो तथ करंतं इअलोकं च
मा०(१४ इयं सधु इयं कटाविये [।] से तथ करंतं हिद. क च

गि० आरधो होति परत च अनंतं पुंञं भवति तेन
का० कं आलधे होति पलत च अनंत पुंना पशवति तेना
शा० अरधेति परत्र च अनतं पुणं प्रसवति(२५) तेन
मा० अरधे. परत्र च अ. तं पुणां प्रसवति ...

गि० धंमदानेन [।]
का० धंमदानेना [।]
शा० ध्रमदनेन [।]
मा० ध्रमदनेन [।]

संस्कृत–अनुवाद ।

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह–नास्ति ईदृशं दानं यादृशं धर्मदानं, धर्मसंस्तवः, धर्मसंविभागः, धर्मसंबन्धः वा । तत्र इदं भवति-दासभृतके सम्यक्-प्रतिपत्तिः, मातापित्रोः शुश्रूषा, मित्रसंस्तुतज्ञातिकानां श्रमणब्राह्मणानां दानं, प्राणानां अनालंभः । एतत् वक्तव्यं पित्रापि, पुत्रेणापि, भ्रात्रापि स्वामिनापि मित्रसंस्तुतेन यावत् प्रातिवेशिकेनापि "इदं साधु इदं कर्त्तव्यम्" इति । सः तथा कुर्वन् ऐहलौकिकं च आराद्धा भवति परत्र च अनन्तं पुण्यं प्रसूते तेन धर्मदानेन ।

हिन्दी-अनुवाद

सच्चा दान ।

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं:—ऐसा कोई दान नहीं है जैसा धर्मका दान है । (ऐसी कोई मित्रता नहीं है जैसी) धर्मकी मित्रता है, (ऐसी कोई उदारता नहीं है जैसी) धर्मकी उदारता है, (ऐसा कोई संबंध नहीं है जैसा) धर्मका संबंध है । धर्म यह है कि [1]दास और [2]सेवकोंसे उचित व्यवहार किया जाय, माता और पिताकी सेवा की जाय, मित्र परिचित रिश्तेदार श्रमण और ब्राह्मणोंको दान दिया जाय और प्राणियोंकी अहिंसा

टिप्पणियां ।

१—दासः-अपने मालिककी संपत्ति गिना जाता था । वह वेतन पानेका अधिकारी नहीं होता था ।

२—भृत्य या सेवक मालिकका काम वेतन पर करता था और स्वतन्त्र होता था ।

की जाय । इसलिये पिता, पुत्र, भ्राता, स्वामी, मित्र, परिचित और कहांतक कह पड़ोसीको भी यह कहना चाहियेः—"यह पुण्य कार्य है इसे करना चाहिये ।" जो इस प्रकार आचरण करता है (अर्थात् इस प्रकार धर्मदान करता है) वह इस लोकको भी सिद्ध करता है और परलोकमें उस धर्मदानसे अनन्त पुण्यका भागी होता है ।

द्वादश शिला-लेख ।

मूल

गि० (१) देवानं पिये पियदासि राजा सव पासंडानि च पवजितानि
का० देवाना पिये पियदषि (३१)लाजा षवा पाषंडनि पवजितानि
शा० (१) देवनं प्रियो प्रियद्राशि रय सत्र प्रषंडनि प्रव्रजित
मा० (१) देवन प्रिये प्रियद्रशि रज सत्र प्रषडानि प्रव्रजितनि

गि० च घरस्तानि च पूजयति दानेन च विविधाय च पूजाय
का० गहथानि वा पुजेति दानेन विविधेन च पुजाये [।]
शा० ग्रहठनि च पुजेति दनेन विविधये च पुजये [।]
मा० गहथनि च पुजेति दनेन विविधये च पुजय [।]

गि० पूजयाति ने [।] (२) न तु तथा दानं व पूजा व देवानं पियो
का० [।] नो चु तथा दाने वा पुजा वा देवानं पिये
शा० [।] नो चु तथ दनं व पुज व (२) देवनं प्रियो
मा० [।] नो चु तथ दन व पुज व (२) देवनं प्रिये

गि० मंञते यथा किंति [?] सारवढी अस सवपासंडानं [।]
का० मनाति अथा कित [?] शालवाढि शिया ति शवपाशंडानं [।]
शा० मञति यथ किति [?] सलवढि सिय सव्रप्रषंडनं [।]
मा० मञति अथ किति [?] सलवढि सिय सवपषडन सि [।]

गि० सारवढी तु बहुविधा [।] (३) तस तस तु इदं मूलं य
का० सालवढि ना बहुविधा [।] तश चु इयं मुले अ
शा० सलवढि तु बहुविध [।] तस तु इयो मुल यं
मा० सलव्रुढि तु बहुविध [।] तस चु इयं मुले अं

गि० वचिगुती [;] किंति [?] आत्पपासंडपूजा व परपासंडगरहा व

का० बचगुात [;] किति [?] त अतपाशंडे पुजा पलपाशंडगलहा व
शा० बचगुति [;] (३) किति [?] अतप्रषंडपुज व परपषंडगरन व
मा० वचगुति [;] (३) किति [?] अतप्रषडपुज व परपषडगरह व

गि० नो भवे अपकरणम्हि लहुका व अस (४) तम्हि तम्हि प्रकरणे [;]
का० नो शया (३२) अपकलनशि लहुका वा शिया ताशि ताशि पकलनशि [;]
शा० नो सिय अप्रकरनासि लहुक व सिय तसि तसि प्रकरणे [;]
मा० नो सिय अपकरणासि लहुक व सिय तसि तसि पकरणसि [;]

गि० पूजेतया तु एव परपासंडा तेन तेन प्रकरणेन [;]
का० पुजेतविय चु पलपाशडा तेन तेन अकालन [;]
शा० पुजेतविय व चु परप्रष-(४) ड तेन तेन अकरेन [;]
मा० पुजतेविय व चु परप्रषड तेन तेन (४) अकरेन [;]

गि० एवं करुं आत्पपासंडं च वढयति
का० हेवं कलत अतपशडा बाढ वढियति

शा० एवं करंतं अतमषंडं बढेति
मा० एवं करतं अत्मपषड बढं बढयति

गि० परपासंडस च उपकरोति [।] (५) तदंञथा करोतो
का० पलपाशड पि वा उपकलेति [।] तदाअंनथा कलत
शा० परप्रषंडस पि च उपकरोति [।] तदञअथ करत च
मा० परपषडस पि च उपकरोति [।] तदनथं करतं

गि० आत्पपासंडं च छणाति परपासंडस च पि
का० अतपाशड च छनति पलपशड पि वा
शा० अतमषंडं (५) छणाति परप्रषंडस च
मा० अत्मपषड च छणाति परपषडस पि च

गि० अपकरोति [।] यो हि कोचि आत्पपासंडं पूजयति परपासंडं वा
का० अपकलेति [।] ये हि केछ अतपाशड पुनाति (३३) पलपाषड वा
शा० अपकरोति [।] यो हि कोचि अतमषडं पुजेति परप्रषड
मा० (५) अपकरोति [।] ये हि कचि अत्मपषड पुजेति परपषड व

गि० गरहति (६) सवं आत्पपासंडभतिया (;) किंति (?) आत्पपासंडं
का० गलहति षवे अतपाषंडभतिया वा (;) किति (?) अतपाषंड
शा० गरहति सव्रे अतप्रषडभतिय व (;) किति (?) (६) अतप्रषंडं
मा० गरहति सव्रे अत्मपषडभतिय व (;) किति (?) अत्मपषड

गि० दीपयेम इति (;) सो च पुन तथ करातो
का० दिपयेम (;) से च पुना तथा कलंतं
शा० दिययमि ति (;) षे च पुन तथ करंतं सो च पुन तथ
मा० दिपयम ति (;) . . पुन तथ करतं

गि० आत्पपासंडं बाढतरं उपहनाति (।)
का० बाढतले उपहंति अतपाषंडपि [।]
शा० करतं बढतरं उपहंति अतप्रषडं [।]
मा० (६) बढंतरं उपहनाति अत्मपषड [।]

गि० त समवायो एव साधु [;] (७) किंति [?] अंञमंञस धंमं

का० समवाये व घाधु [;] किते [?] अंनमनषा धंमं

शा० सो सयमो वो सधु [;] किति [?] अञमञस ध्रमो

मा० मे समवये व सधु [;] किति [?] अञामञस ध्रमं

गि० सुणारु च सुसुसेर च [।] एवं हि देवानं पियस

का० षुनेयु चा षुषुषेयु चा ति [।] हेवं हि देवानं पियषा

शा० ७) श्रुणेयु च सुश्रुषेयु च ति [।] एवं हि देवनं प्रियस

मा० श्रुणेयु च सुश्रुषेयु च ति [।] एवं हि देवनं प्रियस

गि० इछा किंति [?] सवपासंडा बहुस्रुता च असु कलाणा–

का० इछा किति [?] (३४) सवपाषंड बहुषुता चा कयानागा

शा० इछ किति [?] सव्रप्रषंड बहुश्रुत च कलण–

मा० इछ किति [?] सव्रपषड बहुश्रुत च (७) ॰यण–

गि० गमा च असु [।] (८) ये च तत्र तते प्रसंना तेहि

का० च हुवेयुति [।] ए व तत तता पषंन तेहि

शा० गम च सियसु [।] ये च तत्र तत्र (८) प्रसन तेषं
मा० गम च हवंयु ति [।] ए च तत्र तत्र प्रसन तेहि

गि० वतव्यं [:—] देवानं पियो नो तथा दानं व पूजा व
का० वतावियें [:—] देवाना पिये नो तथा दानं वा पुजा वा
शा० वतवो [:—] देवनं प्रियो न तथ दनं व पुज व
मा० वतावियें [:—] देवन प्रिये नो तथ दनं व पुजं व

गि० मंञते यथा किंति [?] सारवढी अस सर्वपासडानं
का० मंनति अथा किति [?] षालवाढि शिया षवपाषंडतिं
मा० मञति यथ किति [?] सलवाढि शिय ति सव्रप्रषडनं
मा० मञाति अथ किति [?] सलवढि सिय सव्रपषडन

गि० बहका च [।] एताय (९) अथा व्यापता धंममहामाता
का० बहुका चा [।] एतायाठाये वियापटा धंममहामाता
शा० बहुक च [।] एतये अ....(९) वपट ध्रममहमत्र
मा० (८) बहुक च [।] एतये अथये वपुट ध्रममहमत्र

गि० च इथीभ्कखमहामाता च ...चभूमीका च अञे च
का० इथिधियखमहामाता वचभुमिक्या अने वा।
शा० इस्त्रिधियक्षमहमत्र अचभुमिक अञे च
मा० इस्त्रिभ्कक्षमहअत्र अचभुमिक अञे च

गि० निकाय: [।] अयं च एतस फल य आत्पपासंडवढि
का० निकाया [।] (३५) इयं च एतिघा फले यं अतपाषंडवढि
शा० निकये [।] इमं च एतिस फलं यं अत्रप्रषडवढि
मा० निकय [ ] इयं च एतिस फले (९) यं अत्पपषडवढि

गि० च होति धंमस च दीपना [।]
का० चा होति धमष चा दिपना [।]
शा० भोति (१०) ध्रमस च दिपन [।]
मा० च भोति ध्रमस च दिपन [।]

संस्कृत — अनुवाद

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा सर्वान् पाषण्डान् प्रव्रजितान् गृहस्थान् वा पूजयति दानेन विविधया च पूजया । न तु तथा दानं वा पूजां वा देवानां प्रियः मन्यते यथा किमिति—सारवृद्धिः स्यात् सर्वपाषण्डानाम् इति । सारवृद्धिः नाम बहुविधा । तस्य तु इदं मूलं या वचोगुप्तिः, किमिति-आत्मपाषण्डे पूजा परपाषण्डगर्हा वा न स्यात् अप्रकरणे । लघुता वा स्यात् तस्मिन् तस्मिन् प्रकरणे । पूजयितव्याः तु परपाषण्डाः तेन तेन प्रकरणेन । एवं कुर्वन् आत्मपाषण्डान् वाढं वर्धयति परपाषण्डान् अपि वा उपकरोति । तदन्यथा

कुर्वंन् आत्मपाषण्डं च छिनत्ति परपाषण्डम् अपि वा अपकरोति। यो हि कश्चित आत्मपाषण्डान् पूजयति परपाषण्डान् वा गर्हयति सर्वं आत्मपाषण्ड-भक्तया वा, किमिति-आत्मपाषण्डान् दीपयेम सः च पुनः तथा कुर्वंन् बाढ़तरं उपहन्ति आत्मपाषण्डे। समवायः एव साधुः, किमिति-अन्योन्यस्य धर्मं शृणुयुः च शुश्रूषेरन् च इति। एवं हि देवानां प्रियस्य इच्छा किमिति-सर्वपाषण्डाः बहुश्रुताः च कल्याणागमाः च भवेयुः इति। ये वा तत्र तत्र पाषण्डाः ते हि वक्तव्याः देवानां प्रियः न तथा दानं वा पूजां वा मन्यते यथा किमिति-सारवृद्धिः स्यात सर्वपाषण्डानाम्। बहुकाः च एतस्मै अर्थाय व्यापृताः धर्ममहामात्राः, स्त्र्यध्यक्षमहामात्राः, व्रजभूमिकाः, अन्ये वा निकायाः। इदं च एतस्य फलं यत आत्मपाषण्डवृद्धिः च भवति धर्मस्य च दीपना।

हिन्दी-अनुवाद

अन्य सम्प्रदायवालोंके साथ मेल जोल ।

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजासे गृहस्थ वा सन्यासी सब सम्प्रदायवालोंका सत्कार करते हैं । किन्तु देवताओंके प्रिय दान या पूजाकी इतनी परवाह नहीं करते जितनी इस बातकी कि सब सम्प्रदायोंके सार (तत्त्व) की वृद्धि हो । सम्प्रदायोंके सारकी वृद्धि कई प्रकारसे होती है, पर उसकी जड़ वाक्संयम है अर्थात् लोग केवल अपने ही सम्प्रदायका आदर और बिना कारण दूसरे सम्प्रदायकी निन्दा न करें । केवल विशेष विशेष कारणोंके होने पर निन्दा होनी चाहिये, क्योंकि किसी न किसी कारणसे सब सम्प्रदायोंका आदर करना लोगोंका कर्तव्य है । ऐसा करनेसे अपने सम्प्रदायकी उन्नति और दूसरे सम्प्रदायोंका उपकार होता है । इसके विपरीत जो करता है वह अपने सम्प्रदायको भी क्षति पहुंचाता है और दूसरे संम्प्रदायोंका भी अपकार करता है, क्योंकि जो कोई अपने सम्प्रदायकी भक्तिमें आकर इस विचारसे कि मेरे सम्प्रदायका गौरव बढ़े अपन सम्प्रदायकी प्रशंसा करता है और दूसरे सम्प्रदायोंकी निन्दा करता है वह वास्तवमें अपने सम्प्रदायको पूरी हानि पहुंचाता है । समवाय

(मेल जोल) अच्छा है अर्थात् लाग एक दूसरके धर्मको ध्यान देकर सुनें और उसकी सेवा करें। क्योंकि देवताओंके प्रिय (राजा) की यह इच्छा है कि सब सम्प्रदाय वाले बहुत विद्वान् और कल्याणका कार्य करने वाले हों। इसलिये जहां जहां जो जो सम्प्रदाय वाले हों उनसे कहना चाहिये कि देवताओंके प्रिय दान या पूजाको इतना बड़ा नहीं समझते जितना इस बातको कि सब सम्प्रदायवालोंके सार (तत्व) की वृद्धि हो। इस कार्यके निमित्त बहुत से [1]धर्ममहामात्र, [2]स्त्रीमहामात्र [3]व्रजभूमिक, तथा अन्य अनेक राजकर्मचारिगण नियुक्त हैं। इसका फल यह है कि अपने सम्प्रदायकी वृद्धि होती है और धर्मका विकाश होता है।

टिप्पणियां।

१--धर्म-महामात्रः-धर्ममहामात्रोंके बारेमें पञ्चम शिलालेख देखिये।

२--स्त्री-महामात्रः-स्त्रीमहामात्रका उल्लेख पञ्चम शिला-लेखमें आया है।

२--व्रचभूमिकः-व्रजभूमिकका अर्थ ठीक नहीं निश्चित हुआ है। विन्सेन्ट स्मिथ साहबने इसका अर्थ Inspector (इन्सपेक्टर) किया है। कौटिलीय अर्थशास्त्रके आधारपर श्रीयुत जायसवालजीने "व्रच भूमिक" का "राष्टकी सीमापर रहने वाले अफ़सर" यह अर्थ किया है (देखिये Indian Antiquary 1918 P. 54-55)

त्रयोदश शिला-लेख।

मूल।

गि० (१) ....ओ
का० अठवषाभिसितषा देवानं पियष पियदषिने लाजिने
शा०(१) अस्तवषअभिसितस देवन प्रिअस प्रिअद्रशिस रञो
मा०(१)......................... ....

गि० कलिंगा वज ....
का० कलिग्या विजिता [।] दियढमाते पानषतषहशे येतफा
शा० कलिग विजित [।] दियधम्रत्रे प्रणशतसहस्रे येततो
मा० कलिग ....य.... प्रणश ....

गि० ....ढे सतसहस्रमात्रं तत्रा हतं बहुतावतकं मतं [।]
का० अपवुढे शतपहषमाते तत हते वहुतावंतके वा मटे [।]
शा० अपवुढे शतसहस्रमत्रे तत्र हते वहुतवतके मुटे [।]
मा० ....

गि० तता पछा अधना लधेसु कलिंगेसु तीवो
का० तता पछा अधुना लधेषु कलिंग्येषु तिवे
शा० (२) ततो पछ अधुन लधेपु कलिंगेपु तिव्रे
मा० ....(२) पछ अधुन लधेपु कलिगेपु ...

गि० धंमवायो (२) ....
का० धंमवाये (३६) धंमकामता धंमानुषथि चा देवानं
शा० ध्रमपलंन ध्रमकमत ध्रमनुशति च देवन
मा० .... .मनुश... च ....

गि० ....सयो देवानं प्रियस वज....

१६

का० पियषा (।) षे अथि अनुषये देवानं पियषा विजिनितु
शा० प्रियस (।) सो अस्ति अनुसोचनं देवन प्रियस विजिनितु
मा० ....

गि० .... वधो व
का० कलिग्यानि (।) अविजितं हि विजिनमने ए तता वधं वा
शा० कलिंगनि (।) (२) अविजितं हि विजिनमानि ये तत्र वधो व
मा० .... (२) ....

गि० मरणं व अपवाहो व जनस [।] तं बाढं वेदनमतं
का० मलने वा अपवहे वा जनषा [।] षे बाढ वेदनियमुते
शा० मरणं व अपवहो व जनस [।] तं बढं वेदनियमतं
मा० .... अपवहे व जन. [।] से .... वेदनियम .

गि० च गुरुमतं च देवानं ....स (३) .... चु ....
का० गुलुमुते चा देवानं पियषा [।] इयं पि चु ततो

शा० गुरुमतं च देवनं प्रियस [।] इमं पि चु ततो

मा० ....

गि० .... बाम्हणा

का० गलुमततले देवानं पियषा [।] (३७) सवता* वषति बंभना

शा० गुरुमत . रं देवनं प्रियस [।] तत्र हि(४) वसति ब्रमण

मा० ....

गि० व समणा व अञे ....

का० व षम वा अने वा पाशंड गिहिथा वा येशु विहिता एष

शा० व श्रमण व अंञे व प्रषंड ग्रहथ व येसु विहित एष

मा० .... (४) ...... एष

गि० ....सा मातापितारि सुसुंसा गुरुसुसूसा

* हुल्श साहेबके अनुसार इसका पाठ "ये तत्र" है(J. R. A. S. 1913, P. 651)

का० अगभुत पुसुपा मतापिति- सुसुष गलुपुष
शां० अग्रभुटि सुश्रुष मतपितुषु सुश्रुष गुरुनं सुश्रुष
मा० अग्रभु. सुश्रुष मतपिषु सुश्रुष गुरुसुश्रुष

गि० मितसंस्तुतसहायआतिकेसु दासभ .... (४) ....
का० मितषंथुतषहायनातिकेषु दाशभतकपि षम्यापठिपति
शा० मित्रसंस्तुतसहय-(५) अतिकेषु दसभटकनं सम्मप्रतिपति
मा० मि . संस्तु.................... ....

गि० ....
का० दिढभतिता [।] तेषं तता होति उपघाते वा वधे वा
शा० दिढभतित [।] तेषं तत्र भोति अपग्रथो व वधो व
मा० ....(५)...... व

गि० आभिरतानां व त्रिनिखमणा [।] येसं वा प ....
का० अभिलतानं वा विनिखमने [।] (३८) येषं वा पि पंविहितानं

शा० अभिरतन व निक्रमणं [।] यष व पि संविहितनं
मा० अभि ··नं व विनिक्रमणे [।] येषं व पि संवि.. नं

गि० .... ···हायआतिका व्यसनं
का० षिनेहे अविपहिने एतानं मितशंथुतषहायनातिक्य वियषने
शा० नेहो अविप्रहिनो एतेष मित्र संतुतसहयञातिक वसन
मा० सिनेहे अविप्रहिने एत. मित्रसं...... ....

गि० प्रापुणाति [।] तत्र सो पि तेसं उपघातो होति [।] पटीभागो
का० पापुनाति [।] तत पे पि तानं एव उपघाते होति [।] पटिभागे
शा०(ई)प्रपुणाति [।] तत्र तं पि तेष वो अपग्रथो भोति [।] प्रतिभगं
मा०(ई)...... ... ...

गि० चेसा सव ···सान ....
का० चा एष षव मनु.नं गुलुमते चा देवानं पियषा [।]
शा० च एतं सत्रं मनुशनं गुरुमतं चं देवनं प्रियस [।]

मा० ... ... सव्रं मनुशनं गुरुपते च देवनं पियस [।]
गि० ... ... स्ति इमे निकाया अञत्र
का० नथि चा षे जनपदे यता नथि इमे निकाया आनंता
शा०
मा० नस्ति च से जनपदे यत्र नस्ति इमे निकय अ...
गि० योनेस ....
का० येनेष *(३८)बंभने चा समने चा नथि चा
शा०
मा० येनेष ब्रमणा च श्रम. ... .
गि० ... ...म्हि यत्र नास्ति मनुसानं
का० कुवा पि जनपदसि यता नथि मनुषानं
शा० नस्ति च

* हुल्श साहबके अनुसार इसका शुद्ध पाठ "योनेषु" है (J. R. A. S., 1913, P 655)

मा०		पि	जन...सि						
गि०	एकतरम्हि		पासंडम्हि		न	नाम	प्रसादो		[।]
का०	एकतलधि	पिं	पाषडधि		नो	नाम	पषादे		[।]
शा०	एकतरस्पि	पि	प्रषंडस्पि		न	नम	प्रसदो		[।]
मा०	....	...	......	(७)	नो	नम	प्रसदे		[।]

गि०		यावतको	जन	तदा	(६)	....	......	...	
का०	षे	आवतके	जने	तदा		कलिंगेषु			
शा०	सो	यमत्रो	जनो	तद		कलिंगे			
मा०	से	यवतके	जने	तद		कलिगेषु		हते	च

गि०				...	...	....	...	...	
का०	ल. षु	हते	च	मटे	चा	अपवुढे	चा	तता	
शा०		हतो	च	मुटो	च	अपवुढो	च	ततो	
मा०	... ...	...	...	...		अपवुढे	च	तत	

गि० ....स्रभागो व गरुमतो देवानं
का० षतेभागे वा षहषभागे वा अज गुलुमते वा देवानं
शा०(७) शतभगे व सहस्रभगं व अज गुरुमतं वो देवनं
मा० शतभगे व सहस्रभगे अज गुरुम. .व.

गि० ....
का० पियषा (४०) ....
शा० प्रियस [।] यो पि च अपकरेय ति छमितवियमते वो देवनं
मा० प्रियस [।] ... ... क ... ... मितावि(८) ... .

गि० ... न य सकं छमितवे [।] या च पि अटावयो देवानं
का० ... ...
शा० प्रियस यं शको छमनये [।] य पि च अटवि देवनं
मा० ... ... य पि च अटवि देवनं

गि० प्रियस पिजिते पाति(७)... ... .

का० ....
शा० प्रियस विजिते थोति त पि अनुनेति अनुनिझपेति अनुतपे
मा० प्रियस विजितासि होति त पि अनुनयति अनुनिझपयेति अनुतपे

गि० ... ... चते तेसं देवनां पियस
का० ... ...
शा० पि च प्रभवे देवनं प्रियस [।] वुचति तेष किति [?]
मा० पि च प्रभवे देवनं प्रियस [।] वुचति तेषं

गि० ....
का० .... नेयु [।] इछ ....
शा० अवत्रपेयु न च हंञेयसु[।] इछति हि देवनं प्रियो
मा० .... .वनं प्रिये

गि० सवभूतानं अछतिं च सयमं च समचेरं च
का० (४१) षवभु...... .... षयम पमचलियं

शा० सव्रभुतन अछति संयमं समचरियं
मा० (६) ....

गि० मादवं च [।] (८) ....
का० मदव ति [।] इयं चु मु .... (४२) देवानं
शा० रभसिये [।] एषे च मुखमुते विजये देवनं
मा० ....मुते विजये देवनं

गि० .... लधो ......नं
का० पियेषा ये धंमविजये [;] षे च पुना लधे देवानं
शा० प्रियस यो ध्रमविजयो [;] सो च पुन लधो देवनं
मा० प्रियस ये ध्रमविजये [;] से च पुन लधे देवनं

गि० प्रियस इध, सवेसु च ....
का० पि......द च (४३) षवेषु च अंतेषु अ षषु यि
शा० प्रियस इह च सब्रेषु च अंतेषु (६) अ षषु यि

मा० प्रियस द्रिद च सब्रषु च अंतेषु अ षषु पि
गि० .... योनराजा परं च तेन
का० योजनषतेषु अत अतियोगे नाम योन ... पलं चा तेना
शा० योजनशतेषु यत्र अंतियोको नम योनरज परं च तेन
मा० य ...... तषु ....योक नम .न.. (१०) ....

गि० चत्पारो राजानो तुरमायो च अंतेकिना च
का० (४४) अंतियोगेना चतालि ४ लजाने तुलमये नाम अंतेकिने
शा० अंतियोकेन चतुरे ४ रजनि तुरमये नम अंतिकिनि
मा० ....

गि० मगा च (९) ....
का० नाम मका ना(४५)म अलिक्यषुदले नाम [,] निचं
शा० नम मक नम अलिकसुदरो नम [,] निच
मा० ...... मक नम अलिकसुदरे नम [,] निचं

गि०	....	....	....	....	....	....
का०	चोड	पंडिया	अवं	तंबपंनिया	हेवमेव	हेवमेवा.
शा०	चोड	पंड	अव	तंबपनिय	एवमेव	
मा० च	चोड	पंडिय	अ	तंबपंनिय	एवमेव	

गि०	इध	राजविसयम्हि *	योनकंबो..	....	....
का०(४६)	हिद	लाजाविशवषि *	योनकंबोजेषु	नाभके	नाभपंतिषु
शा०	हिद	रजविषवज्रि *	योनकंबोयेषु	नभके	नभितिन
मा०	...	रजविषवज्रि *	योन क...षु	नभके	नभपंतिषु

गि०	....	.ध-पिरिंदेसु	सवत	देवानं
का०	भोज-पितिनिक्येषु(४७)	अध-पलदेषु	पवता	देवानं
शा०(१०)	भोज-पितिनिकेषु	अंध्र-पुलिदेषु	सवत्र	देवनं

* बूलर साहेबके अनुसार इसका पाठ "हिदराजा-विशवज्रि" और सेना साहेबके अनुसार इसका पाठ "इद राजविषयं" है।

मा० .ज-पितिनि, पु अंध-प.........................(११).........

गि० पियस धंमानुसस्टिं अनुवतरे [।] यत पि दूति
का० पियपा धंमानुषथि अनुवतंति [।] यत पि दुता
शा० प्रियस ध्रमनुशस्ति अनुवटंति [।] यत्र पि
मा० ....

गि०(१०) ....
का०(४८) देवानं पियसा नां यंति ते पि सुतु देवानं
शा० देवनं प्रियस-दुत न व्रचंति ते पि श्रुतु देवनं
मा० ...न प्रियस नो यति ते पि श्रुतु देवनं

गि० .... धमानुसरिटं च धम
का० पियंय धंमवुतं बिधनं (४८) धंमानुसथि धंमं
शा० प्रियस ध्रमवुटं विधेनं ध्रमनुशस्ति ध्रमं
मा० प्रियस ध्रमवुतं विधनं ध्रमनुशस्ति ध्रंमं

गि० अनुव्य ....
का० अनुविधियंति अनुविधियिसति चा [।] ये से लघे (पृ०) एतकेना
शा० अनुविधियंति अनुविधियिशति च [।] यो च लधे एतकेन
मा० अनुविधियंति अनुविधियिसंति च [।] य .... .तकेन

गि० ...... विजयो सवथा पुन विजयो पीतिरसो सो [।] लधा सा
का० होति सवता विजये पितिलसे से [।] गधा सा
शा० भोति सवत्र विजयो सवत्र पुन (११) विजयो प्रितिरसो सो [।] लध
मा० होति विज. ....

गि० पीती होति धंमवीजयम्हि (११) ....
का० होति पिति पिति धंमविजय(पृ०) षि [।] लहुका तु खो सा
शा० भोति प्रिति ध्रमविजयस्पि [।] लहुक तु खो स
मा० ....

गि० .... प्रियो
का० पिति [।] पालंतिक्यमेव बहुफला मंनति देवनं पिने [।]
शा० प्रिति [।] परत्रिकमेव महफल मेञति देवनं प्रियो [।]
मा० ..... [।] (१२) .... प्रिये [।]

गि० एताय अ. य अयं धंमल. ....
का० (५.२) एताये चा अठाये इयं धंमेलिपि लिखिता [;] किति [!] पुता
शा० एतये च अठये अयो ध्रमदिपि दिपिस्त* [;] किति [!] पुत्र
मा० एतये अथ्रये इयं ध्रम.... लिखित [;] किति [!] पुत्र

गि० .... विजय म विजेतव्वं मञा [!]
का० पापोत मे अ .(५.३) नवं विजय म विजयंतविय मनिषु [;]
शा० पपोत्र मे असु नवं विजयं म विजेतवियं मञिषु [;]

---

* हुल्श साहेबके अनुसार शुद्ध पाठ "निपिस्त" है (J. R. A. S., 1913, P 654)

मा० प्रपोत्र मे अ. नवं ....

गि० सरसकं एव विजये छातिं च(१२) ....

का० षयकषि नो विजयषि खंति चा लहु-(५४) दंडता चा

शा० ...क... यो विजये छंति च लहुदंडतं च

मा०(१३)......... ....

गि० ....

का० लोचेतु तमेव चा विजयं मनतु ये धंमविजये [।]

शा० रोचेतु तं एव विज मञ. [१२] यो ध्रमविजयो [।]

मा० ....

गि॰ ....[क्कि]..

का॰ षे हिद्लोकिक्य पलला (५५)— क्किये [।] पन्ना च निलति होतु

शा॰ सो हिद्लोकिको परलोकिंको [।] सत्र च निरति भोतु

मा॰ .... लोकिक [।] सत्र च निरति होतु

गि॰ .... इलोकिका च परलोकिका च [।]

का॰ उयामलति [।] षा हि हिद्लोकिक— पललोकिक्या [।]

शा॰ य स्रमरति [।] स हि हिद्लोकिक परलोकिक [।]

मा॰ य स्रमरति [।] स हि हिद्लोकिक परलोकिक [।]

संस्कृत-अनुवाद

अष्टवर्षाभिषिक्तस्य देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः कलिंगाः विजिताः । द्व्यर्धमात्रं प्राणशतसहस्रं यत् ततः अपव्यूढं शतसहस्रमात्राः तत्र हताः बहुतावत्काः वा मृताः । ततः पश्चात् अधुना लब्धेषु कलिंगेषु तीव्रं धर्मपालनं, धर्मकामता, धर्मानुशिष्टिः च देवानां प्रियस्य । तत् अस्ति अनुशोचनं (अनुशयः) देवानां प्रियस्य विजित्वा (विजीय) कलिंगान् । अविजितं हि विजितं यत् तत्र वधः वा मरणं वा अपवाहः वा जनस्य । तत् बाढं वेदनीयमतं गुरुमतं च देवानां प्रियस्य । इदं अपितु ततः गुरुमततरं देवानां प्रियस्य । तत्र हि वसन्ति ब्राह्मणाः वा श्रमणाः वा अन्ये वा पाषण्डाः गृहस्थाः वा येषु विहिता एषा अग्र्यभूत-शुश्रूषा, मातापितृशुश्रूषा, गुरूणां शुश्रूषा, मित्रसंस्तुतसहायज्ञातिकेषु दासभृतकेषु सम्यक्प्रतिपत्तिः दृढभक्तिता । तेषां तत्र भवति अपग्रन्थः (उपघातः) वा वधः

वा अभिरतानां वा निष्क्रमणम् । येषां वा अपि संविहितानां स्नेहः अविप्रहीणः एतेषां मित्रसंस्तुतसहायज्ञातिकाः व्यसनं प्राप्नुवन्ति । तत्र सः अपि तेषां एव अपग्रन्थः (उपघातः) भवति । प्रतिभागं च एतत् सर्वमनुष्याणां गुरुमतं च देवानां प्रियस्य । नास्ति च सः जनपदः यत्र न सन्ति इमे निकायाः अनन्ताः, [यत्र च ते न विभक्ताः] ब्राह्मणेषु च श्रमणेषु च । नास्ति च कोपि जनपदः यत्र नास्ति मनुष्याणां एकतरस्मिन् अपि पाषण्डे नाम प्रसादः । तत् यावान् जनः तदा कलिंगेषु लब्धेषु हतः च मृतः च अपव्यूढः च ततः शतभागः वा सहस्र-भागः वा गुरुमतः एव देवानां प्रियस्य । यः अपि च अपकरोति क्षन्तव्यमतः एव देवानां प्रियस्य यः शक्यः क्षमणाय । ये अपि च अटविकाः देवानां प्रियस्य विजिते भवन्ति तान् अपि (सः) अनुनयति, अनुनिध्यायति अनुतप्यते अपि च । (एषः) प्रभावः देवानां प्रियस्य । वक्ति तेषां किमिति-अपत्रपेरन् न च हन्येरन् । इच्छति हि देवानां प्रियः सर्वभूतानां अक्षतिं, संयमं, समचर्यां, मार्दवं (रभसं) । एषः च मुख्यमतः विजयः देवानां प्रियस्य यः धर्मविजयः । सः च पुनः लब्धः देवानां प्रियस्य इह च सर्वेषु च अन्तेषु आषट्सु अपि योजनशतेषु यत्र अन्तियोकः नाम

यवनराजः परं च तस्मात् अन्तियोकात् चत्वारः राजानः तुरमयः नाम अन्तिकिनिः नाम मगः नाम अलिकसुन्दरः नाम नीचाः चोड़ाः पाण्ड्याः यावत् ताम्रपर्णीयाः। एवं एव हिदराजविषये, विषवज्रिषु, यवनकांबोजेषु, नाभके नाभपङ्क्तिषु, भोजपितिनिकेषु, आन्ध्रपुलिन्देषु-सर्वत्र देवानां प्रियस्य धर्मानुशिष्टिं अनुवर्त्तन्ते। यत्र अपि दूताः देवानां प्रियस्य न व्रजन्ति (यन्ति) तत्रापि श्रुत्वा देवानां प्रियस्य धर्मवृत्तं, विधानं, धर्मानुशिष्टिं, धर्मं अनुविदधति अनुविधास्यन्ति च। यः च लब्धः एतावता भवति सर्वत्र विजयः प्रीतिरसः सः। गाढ़ा सा भवति प्रीतिः धर्मविजये। लघुका तु खलु सा प्रीतिः। पारत्रिकं एव महाफलं मन्यते देवानां प्रियः। एतस्मै च अर्थाय इयं धर्मलिपिः लिखिता। किमिति (ये) पुत्राः प्रपौत्राः मे सन्तु (ते) नवं विजयं मा विजेतव्यं मन्येरन्, शराकर्षिणः विजये क्षान्तिं च लघुदण्डतां च रोचयन्तां, तं एव विजयं मन्यन्तां यः धर्मविजयः। सः ऐहलौकिकपारलौकिकः। सर्वा च निरतिः भवतु या श्रमरतिः (उद्यमरतिः।) सा हि ऐहलौकिकपारलौकिकी।

हिन्दी-अनुवाद ।

सच्ची विजय ।

राज्याभिषेकके आठ वर्ष बाद देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजाने [1]कालिंग देशको

टिप्पणियां

१—कलिंग देश—बंगालकी खाड़ीके किनारे महानदी और गोदावरीके बीचका प्रदेश कलिंग या त्रिकलिंगके नामसे प्रसिद्ध था। हिन्दू और बौद्ध दोनों धर्मोंके ग्रन्थोंमें अनेक स्थानोंपर इसका उल्लेख मिलता है। कलिंग देशके लोग बड़े धर्मिष्ठ, वीर और शिल्पवाणिज्यमें कुशल समझे जाते थे। रोमन इतिहासकार और भूगोलज्ञ प्लाइनीने कलिंग राज्यको तीन भागोंमें विभक्त किया है:-यथा कलिंग, मध्य कलिंग और महा कलिंग श्री राजेन्द्रलाल मित्रने त्रिकलिंगका अर्थ तीन कलिंग किया है यथा-कलिंग, मध्य कलिंग और उत्कलिंग। उत्कलिंगका अपभ्रंश उत्कल है।

विजय किया । वहां डेढ़ लाख मनुष्य कैद किये गये; एक लाख मनुष्य मारे गये और इससे कई गुना आदमी (महामारी आदिसे) मरे । इसके बाद कलिंग देश विजय होनेपर देवताओंके प्रियका धर्म-पालन, धर्म-कर्म और धर्मानुशासन अच्छी तरह हुआ है । कलिंगको जीतनेपर देवताओंके प्रियको बड़ा पश्चात्ताप हुआ । क्योंकि जिस देशका पहिले विजय नहीं हुआ है उस देशका विजय होनेपर लोगोंकी हत्या वा मृत्यु अवश्य होती है और न जाने कितने आदमी कैद किये जाते हैं । देवताओंके प्रियको इससे बहुत दुःख और खेद हुआ । देवताओंके प्रियको इस बातसे और भी दुख हुआ कि वहां ब्राह्मण श्रमण तथा अन्य सम्प्रदायके मनुष्य और गृहस्थ रहते हैं, जिनमें ब्राह्मणोंकी सेवा, माता पिता की सेवा, गुरुओंकी सेवा, मित्र परिचित सहायक जाति दास और सेवकोंके प्रति अच्छा व्यवहार किया जाता है और जो दृढ़-भक्ति-युक्त होते हैं ऐसे लोगोंका वहां विनाश, वध या प्रियजनोंसे बलात् वियोग होता है । अथवा जो स्वयं तो सुरक्षित होते हैं पर जिनके मित्र, परिचित, सहायक और संबंधी विपत्तिमें पड़ जाते हैं उन्हें भी अत्यन्त स्नेहके कारण बड़ी पीड़ा होता है । यह सब विपत्ति वहां प्रायः हर एक मनुष्यके हिस्सेमें पड़ती है इससे देवताओंके प्रियको विशेष दुःख होता है । क्योंकि ऐसा कोई देश नहीं हैं जहां अनन्त सम्प्रदाय न हों और उन

सम्प्रदायोंमें ब्राह्मण और श्रमण (विभक्त) न हों । और कोई ऐसा देश नहीं है जहां मनुष्य एक न एक सम्प्रदायको न मानते हों । कलिंगदेशके विजयमें उस समय जितने आदमी मारे गये, मरे या कैद हुए उनके सौवें या हजारवें हिस्सेका नाश भी अब देवताओंके प्रियको बड़े दुखःका कारण होगा । इसके अलावा जो कोई इस समय देवताओंके प्रिय प्रियदर्शीका कोई अपकार करे तो वे उसे, यदि वह क्षमाके लायक है तो, क्षमा कर देंगे । देवताओंके प्रिय प्रियदर्शीके राज्यमें जितने बनवासी लोग हैं उनके ऊपर वे दया-दृष्टि रखते हैं और उन्हें धर्ममें लानेका यत्न करते हैं । क्योंकि (यदि वे ऐसा न करें तो) उन्हें पश्चात्ताप होगा । देवताओंके प्रियका यह प्रभाव है-उन लोगोंसे वह कहते हैं कि बुरे मार्गसे हटो जिसमें कि दण्ड पे बचे रहो । देवताओंके प्रिय यह इच्छा करते हैं कि सब प्राणी निरापद, संयमी, शान्त और प्रसन्न रहें । धर्म-विजयको ही देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी मुख्यतम विजय मानते हैं । यह धर्म-विजय देवताओंके प्रियने यहां (अपने राज्यमें) तथा[२] सौ योजन दूर पड़ोसी राज्योंमें प्राप्तकी है, जहां

२—"अषषुपि योजनेसतेषु" "६ सौ योजन दूर":-यूरोपीय विद्वानोंने "अषषु" का अर्थ 'आषट्सु' लगाया है । 'आषट्सु' का अर्थ "६ तक" है । पर श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवालके मतमें यह अर्थ ठीक नहीं है । क्योंकि अशोकके

अन्तियोक[3] नाम यवन—राजा राज्य करता है और उस अन्तियोकके बाद तुरमय[4], अंन्ति-

---

शिलालेखोंमें ६ के लिये हमेशा सड आता है। यहांपर "पि"=अपि शब्दसे "अषषु" पर जोर दिया गया है। यदि "अषषु" के माने छ हो तो समझमें नहीं आता कि छ पर जोर क्यों दिया गाय। जायसवालजीके मतमें "अषषु" का अर्थ "एशियामें" है। अतएव "अषषुपि योजनसतेषु इ०" का अर्थ यह है कि "एशियामें भी सैकड़ों मील दूर जहां अन्तियोक इ० राज्य करते हैं" (देखिये Indian Antiqnary 1918, P. 297)

३—अन्तियोकः—सीरिया तथा पश्चिमीय एशियाका अधीश्वर एन्टिओकस द्वितीय (Antiochos II) जो सेल्युकस नाइकेटरका पोता था। उसका राज्य-काल इसवी सन्के पूर्व २६१ से लगाकर २४६ तक था (द्वितीय शि० ले० देखिये)

४—तुरमयः—मिश्रका बादशाह टालमी फ़िलाडेल्फ़स (Ptolomy Philadelphos) जिसने इसवी सन्के पूर्व २८५ से लगाकर २४७ तक राज्य किया था।

किनि[5], मक[6] और अलिकसुन्दर[7] नामके चार राजा राज्य करते हैं और उन्होंने अपने राज्यके नीचे (दक्खिनमें) चोड[8], पाण्डय[9] तथा ताम्र-पर्णीमें[10] भी धर्म-विजय प्राप्त

५—अन्तिकिनि—मेसिडोनियाका राजा ऐन्टी गोनस गोनेटस (Aantigonos Gonatas) जिसने इसवी सन्‌के पूर्व २७८ या २७७ से लगाकर २३६ तक राज्य किया था।

६—मक—साइरीनि (Cyrene) का राजा मागस (Magas) जो टालेमी फ़िला डेलफ़सका सौतला भाई था विन्सन्ट स्मिथ साहेबके मतसे इसकी मृत्यु ईसवी सन्‌के पूर्व २५८ में हुई। हुल्श साहेबके मतसे इस राजाने इसवी सन्‌के पूर्व ३०० से लगाकर २५० तक राज्य किया (J. R. A. S. 1914 P. 945)

७—अलिकसु(न्द)रः—विन्सेन्ट स्मिथ और बूलर साहबके मतसे यह राजा एपाइरस देशका बादशाह एलकज़ेन्डर था जो इसवी सन्‌के पूर्व २७२ से लगाकर २५८ तक राजगद्दीपर था। हुल्श शाहेबके मतसे यह राजा 'एपाइरसका बादशाह एलेक्ज़ेन्डर" नहीं बल्कि "कारिन्थ देशका बादशाह एलेक्ज़ेन्डर" था जिसने ईसवी सन्‌के पूर्व २५२ से लगाकर २४४ तक राज्य किया था (J. R. A. S. 1914 P. 950)

८—चोड़—द्वितीय शिलालेखकी पहिली टिप्पणी देखिये।

९—पाण्डय—द्वितीय शिलालेखकी दूसरी टिप्पणी देखिये। त्रयोदश शिलालेखमें केरलपुत्र और सत्यपुत्रका नाम नहीं दिया गया है इन दोनों राज्योंका नाम द्वितीय शिलालेखमें आ चुका है उसे देखिये।

१०—ताम्रपर्णी-प्राचीन सिंहल और वर्तमान लंका द्वीप। द्वितीय शिलालेखकी ५ वीं टिप्पणी देखिये

की है। उसी प्रकार हिंदराजाके राज्यमें तथा विषवज्रियोंमें,[११] यवनों[१२]में, काम्बोजोंमें[१३], नाभक[१४]

११—हिंदराज—कौन थे इसका पता अभी तक नहीं लगा। विषवज्रि जाति कौन है इसका पता भी अभी तक नहीं लगा। बूलर साहब-का मत है कि विष कदाचित् आजकलके वैश राजपूत और वज्रि कदाचित् वैशालीके प्राचीन वृजि लोग हैं।

१२—यवन—ग्रीक जातिके लोग। सम्भवतः पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्तपर रहनेवाली दूसरी विदेशीय जातियां भी यवनके नामसे पुकारी जाती थीं। बादको यवन शब्दका वही अर्थ हो गया जो आज-कल "विलायती" शब्दका है।

१३—काम्बोज—उत्तरी हिमालयकी एक जाति। कुछ लोगोंका विश्वास है कि वर्तमान तिब्बतके लोग ही प्राचीन काम्बोज थे।

१४—नाभक नाभपंक्ति—यह कौनसी जाति थी और कहां रहती थी इसका निश्चय अभीतक नहीं हुआ।

नाभपङ्क्तियोंमें, भोजोंमें,[15] पितिनिकाम,[16] आन्ध्रोंमें[17] और पुलिन्दोंमें[18] सब जगह लोग देवताओंके प्रियका धर्मानुशासन अनुसरण करते हैं और अनुसरण करेंगे। जहं देवताओंके प्रियके दूत[19]

१५—भोज—प्राचीन विदर्भ और वर्तमान बरारके लोग भोजके नामसे विख्यात थे।

१६—पितिनिक—गोदावरी नदीके किनारे पैठानके लोग पितिनिकके नामसे पुकारे जाते थे।

१७—आन्ध्र—गोदावरी और कृष्णा नदीके बीचमें जो प्रदेश है वहांके रहनेवाले आन्ध्रके नामसे पुकारे जाते थे। प्राचीन आन्ध्र लोग आधुनिक तैलंग जातिके पूर्व-पुरुष थे। आन्ध्र लोगोंने मौर्यसाम्राज्यकी अधीनता कब स्वीकार की इसका ठीक पता नहीं लगता। अशोकके राज्यकालमें आन्ध्र देश करद राज्योंमें गिना जाता था। अशोककी मृत्युके बाद आन्ध्र लोगोंने एक बड़ा भारी स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। आन्ध्र राजवंशका स्थापक सिमूक था। इस राजवंशने वि० पू० १६३ से लगाकर विक्रमके बाद २६३ तक राज्य किया।

१८—पुलिन्द—मध्य भारतके पर्वतोंपर रहने वाली पहाड़ी जाति।

१९—दूत—निम्न लिखित देशोंमें अशोकके दूत धर्मका प्रचार करनेके लिये गये थे:—(१) मौर्य साम्राज्यके अन्तर्गत भिन्न २ प्रदेश। (२) साम्राज्यके सीमान्त प्रदेश और सीमापर रहनेवाली जातियाँ अर्थात् यवन, काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पितिनिक, भोज,

नहीं पहुंच सकेत वहां र भी लोग देवताओंके प्रियका धर्माचरण धर्मविधान और धर्मानुशासन सुनकर धर्मके अनुसार आचरण करते हैं और भाविष्यमें आचरण करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र जो विजय हुई है वह विजय वास्तवमें सर्वत्र आनन्दकी देने वाली है। धर्म-विजयमें जो आनन्द मिलता है वह बहुत प्रगाढ़ आनन्द है, पर वह आनन्द क्षुद्र वस्तु है। देवताओंके प्रिय पारलौकिक कल्याणको ही बड़ी भारी वस्तु समझते हैं। इसलिये यह धर्म-लेख लिखा[२०] गया कि मेरे पुत्र और पौत्र जो हों वे नया (देश) विजय करना अपना कर्तव्य न समझें। यदि कभी वे नया देश विजय करनेमें प्रवृत्त हों तो उन्हें शांति और नम्रतासे काम लेना चाहिये और धर्म-विजयको ही

आन्ध्र, पुलिन्द आदि। (३) साम्राज्य के जंगली प्रान्त (४) भारतवर्षके स्वाधीन राज्य जैसे केरलपुत्र, सत्यपुत्र, चोड़ और पाराड्य, । (५) सिंहल या लंका द्वीप। (६) सीरिया, मिश्र, साइरीनी, मेसिडोनिया और एपाइरस नामके पांच ग्रीक राज्य।

२०—लिखा गया—"दिपिस्त" (शाहबाज़गढ़ी)। हुल्श साहबने "दिपिस्त" के स्थानपर "निपिस्त" पढ़ा है जो शुद्ध पाठ मालूम पड़ता है। पहिले हुल्श साहबने "निपिस्त"को "निष्पिष्ट"का अपभ्रंश माना था पर बादको उन्होंने लिखा कि यह "निष्पिष्ट" से नहीं बल्कि फ़ारसीके

यथार्थ विजय मानना चाहिये । उससे इस लोक और परलोक दोनो जगह सुख-लाभ होता है । उद्योग ही उनके आनन्दका कारण हो, क्योंकि उससे यह लोक और परलोक दोनों सिद्ध होते हैं ।

"नविश्तन" धातुसे निकला है जिसके माने "लिखना" है । श्रीयुत जायसवाल जीने कौटिलीय अर्थशास्त्रके आधारपर "निपिस्त" को "नीविस्थ" का अपभ्रंश माना है. । अर्थशास्त्रमें "नीवि" का अर्थ खरीता, डिस्पैच, डाकुमेन्ट या फ़ाइल है । अतएव "नीविस्थ" अथवा "निपिस्त" के माने "रजिस्टर इत्यादि मे दर्ज" या "लिखा हुआ" अथवा "लिखित" यह होना चाहिये (देखिये Indian Antiquary 1918 P. 56)

चतुर्दश शिला—लेख

मूल

गि० (१) अयं धंमलिपी देवानं प्रियेन पियदसिना राञा लेखापिता
का० (५६) इयं धंमलिपि देवानं पियेना पियदषिना लाजिना लिखापिता
धौ० इयं धंमलिपी देवानं पियेन पियद.ना लाज... [लिख]....
जौ० ... .
शा० (१३) अयो ध्रमदिपि देवनं प्रियेन प्रिशिन रञ दिपपितो *

गि० अस्ति एव (२) संखितेन अस्ति मझमेन अस्ति विस्ततन [।]
का० अथि येवा सुखि–(५७) तेना अथि मझिमेना अथि विथटेना [।]
धौ० .... अथि मझिमेन ....

* हुल्श साहेबक अनुसार शुद्ध पाठ "निपेसपित" है (J. R. A. S., 1913, p 654)

जौ० ... ... म्फिपेन अथि विथटेन [।]
शा . अस्ति वो संखितेन अस्ति वो विस्तृटेन [।]

गि० न च सर्वे सर्वत घटितं [।] (३) महालके हि विजितं
का० नो हि सवता सवे घटिते [।] महालके हि वि-(५८)जिते
धौ० [नो हि] सवे सवत घटिते [।] (१८) महंते हि विजये
जौ० नो हि सवे सवत घटिते [।] महंते हि विजये
शा० न हि सव्रत्र सब्रे घटिति [।] महलके हि विजिते

गि० बहु च लिखितं लिखापयिसं चेव []
का० वहु च लिखिते लेखापेशामि चेव निक्यं [।]
धौ० बहुके च लिखिते लिखायिसा [चेव] ...... [।]
जौ०(२५)...... .... [।]
शा० बहु च लिखिते लिखपेशामि चेव [।]

गि० अस्ति च एत कं (४) पुन पुन वुतं तस तस
का० अथि चा हेत पुनं पुन लपि-(५८)ते तषा तषा
धौ० अथि च [हे] ... ..., ...
जौ० ...., ...
शा० अस्ति च अत्र पुन पुन लपितं तस तस

गि० अथस माधूरताय [,] किंति [?] जनो तथा
का० अथषा मधुलियाये येन जने तथा
धौ० .... आये (१८) किंति च [?] जने तथा
जौ० ... स माधुलियाये [,] किंति च [?] जने तथा
शा० अठस मधुरियये येन जने तथ

गि० पटिपजेथ [।] (५) तत्र एकदा असमातं
का० पटिपजेया [।] ष षिया अत किछि अ-(६०) समति
धौ० पटिपजेया ति [।] ए पि चु हेत असमाति

जौ० पटिपजेया ति [।] ए पि चु हेत(२६) ...

शा०(१४) प्रटिपजेय ति [।] सो सिय व अत्र किचि असमतं

नि० लिखितं अस देसं व सछाय कारनं व (६) अलोचेत्पा

का० लिखिते दिषा वा षंखये कालनं वा अलोचयितु

धौ० लिखिते सं ... सं ... लोचयितु

जौ० ....

शा० लिखितं देशं व संखये करण व अलोचेति

गि० लिपिकरापरधेन व [।]

का० लिपिकलपलाधेन वा [।]

धौ० ......कल......... ति [।]

जौ० .... [।]

शा० दिपिकरस व अपरधेन [।]

संस्कृत-अनुवाद।

इयं धर्मलिपिः देवानां प्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा लेखिता। अस्ति एव संक्षिप्तेन, अस्ति मध्यमेन, अस्ति विस्तृतेन। नहि सर्वत्र सर्वं घटितम्। महालोकं (महत) हि विजितं बहु च लिखितं लेखयिष्यामि चैव नित्यं। अस्ति च अत्र पुनः पुनः लपितं तस्य तस्य अर्थस्य माधुर्याय (माधुर्येण) येन जनः तथा प्रतिपद्येत। यत् स्यात् अत्र किंचित् असमाप्तं लिखितं तत् देशः (देशाभावकारणं)* संक्षेपकारणं वा आलोच्यतु लिपिकरापराधेन वा।

---

* स्थानाभावकारणं

हिन्दी-अनुवाद।

उपसंहार।

यह धर्म-लेख देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजाने लिखवाया है। (यह लेख, कहीं 'संक्षेपमें', कहीं मध्यम रूपमें और कहीं विस्तृत रूपमें है। क्योंकि सब जगहके लिये सब बात उचित नहीं है। मेरा राज्य बहुत विस्तृत है इसलिये बहुतसे लेख लिखवाये गये हैं और बहुतसे बराबर लिखवाये जायंगे। कहीं कहीं बातोंकी मधुरताके कारण इसलिये पुनरुक्ति की गयी है कि जिसमें लोग उसके अनुसार आचरण करें। इस लेखमें जो कुछ अपूर्ण लिखा गया हो उसका कारण स्थानका अभाव, संक्षिप्त लेख या लेखक का अपराध समझना चाहिये।

दो कलिंग शिला-लेख ।

प्रथम कलिंग शिला-लेख ।

मूल

धौ० (१) [देवा]नं पिय[स व]चनेन तोसलियं महामात
जौ० (१) देवानं पिये हेवं आहा [:—] समापायं महामाता

धौ० नगलवियोहालका (२) .... वताविय [:—] अं [कि]छि द[खा]मि
जौ० नगलवियोहालक हे. वतविया [:—] अं किछि दखामि

धौ० हकं तं इछामि [;] किंति [?] [कंम]न पटि[वे]दये हं
जौ० हकं तं इछामि [;] किंति [?] [कं]मन [प]टिपातये हं

धौ० (३) दुवालते च आलभे हं [।] एस च मे मोख्यमत [दुवलस]
जौ० (२) दुवालते च आलभे हं [।] एस च मे मोखियमत दुवालं

धौ० अठसि अं तुफे[सु] (४) अनुसथि [।] तुफे हि बहूसु पानसहसेसु
जौ० अं तुफेसु अनुसथि [।] फे हि बहूसु पानसहसेसु

धौ० आ[यता] पन. गछेम सुमुनिसानं [।] सवे
जौ० [आ]यत पनयं गछेम सुमु[नि]सानं [।] सव

धौ० (५) मुनिसे पजा ममा [।] अथा पजाये इछामि हकं
जौ० मुनिसे (३) पजा [।] अथ पजाये इछामि

धौ० किति [?] सवेन हितसुखेन हिदलोकिक-
जौ० किंति [?] मे सवेन हितसुखेन यूजेयू ति हिदलोगिक-

धौ० (६) पाललोकिका [ये] यूजेवू ति [।] तथा ....मुनिसेसु
जौ० पाललोकिकेन [।] हेमेव मे इछ सवमुनिसेसु

धौ० पि इछामि हकं [।] नो च पापुनाथ
जौ० नो च तुफे एतं पापुनाथ

धौ० आवाग— (७) मके इयं अठे [।] केछ व एकपुलिसे
जौ० आवागमके (४) इयं अठे [।] केचा एकपुलिसे पि

धौ० . नाति एतं से पि देसं नो सवं [।] दखत हि तुफे
जौ० [म]नाति से पि देसं नो सवं [।] दखत हि [तुफे]

धौ० एतं (८) सुविहिता पि निति [।] इयं एकपुलिसे पि [अथि]ये
जौ० हिसुविता पि बहुक [।] अथि ये एति एकमुनिसे

धौ० बंधनं वा पलिकिलेसं वा पापुनाति [।] तत होति (९) अकस्मा
जौ० बंधनं पलिकिलेसं हि पापुनाति [।] तत होति अक—(५)स्मा

धौ० तेन बंधनंतिक अने च .... बहुजने दविये
जौ० तेन बंधनंतिक .. च वगे बहुके

धौ० दुखीयति [।] तत इछितविये (१०) तुफेहि किंति [?] मझं
जौ० वेदयाति [।] तत तुफेहि इछितये किंति [?] मझं

धौ० पटिपादयेथा ति [।] इमे हि चु जतेहि नो संटिपजति इसाय
जौ० पटिपातयेम [।] इमें हि जातेही नो संपटिप[ज]ति इसाये

धौ० आसुलोपेन (११) निथूलियेन तूलनाय अनावूतिय आलसियेन
जौ० आसुलोपेन निठुलियेन (६) तुलाये अनावुतिये आलस्येन

धौ० कलमथेन [।] से इछितविये किति [?] एते (१२) जाता नो
जौ० किलमथेन [।] हेवं इछितविये किंति [?] मे एतानि जातानि नो

धौ० हुवेवु ममा ति [।] एतस च सवस मूले अनासुलोपे अतलना
जौ० हेयू ति [।] सवस च इयं मूले अनासुलोपे अतुलना

धौ० च नितियं [।] ए किलंते सिया (१३) .ते उगछ [·]
जौ० च निति. [ ] ए यं [किलंते सि]. .. (७) संचलितु उथाये [·]

धौ० संचलितविये तु वजितविये एतवियं वा [।] हेवंमेव ए
जौ० संचलितव्ये तु वजितविय पि एतविये पि [।] नीतियं ए वे

धौ० दाखिये तुफाक [।] तेन वताविये (१४) अंनं ने देखत [।]
जौ० देखेयि अंन ने निझपेताविये [।]

धौ० हेवं च हेवं च देवानं पियस अनुसाथि [ ] से महा. लो
जौ० [हे]वं हेवं च देवानं पियस अनुसाथि [।]

धौ० एतस संपटिपाद (१५) महा अपाये असंपाटिपाति [ ]
जौ० .... (८) तं महाफले होति असंपटिपाति महापाये

धौ० विपटिपादयमीनेहि एतं नथि स्वगस आलाधि नो
जौ० होति [।] विपटिपातयंतं नो स्वग आलाधि नो

धौ० लाजालधि [।] (१६) दुआहले हि इमस कंमस मे कुते मने
जौ० लाजाधि [।] दुआहले एतस [कं]मस मे कुते [म]नं

धौ० अतिलेके [।] संपटिपजमीने चु एतं स्वगं (१७) आलाधयिसथ
जौ० अ—. ——(१) च आननेयं

धौ० [त] .... [आ]ननियं एहथ [।] इयं च लिपी तिसनखतेन
जौ० एसथ स्वगं च आलाधयिसथा [।] इयं च लिपी अनुतिसं

धौ० सो[त]विय (१८) अंतला पि च [तिसे] खनसि ख[न]सि एकेन पि
जौ० सोतविया ....ला पि खनसि सोतविया एक. पि

धौ० सोतविय [।] हेवं च कलंतं तुफे (१९) चघथ
जौ० . . व — — —— —— मने च——

धौ० संप[टि]पादयितवे [।] एताये अथाये इयं लिपि लिखित हिद
जौ० ——————(१०)तवे [।] एताये च अठाये इयं . खिता लिपी

धौ० एन (२०) नगलकवियो[हा]लका सवतं समयं यु[जे]वू
जौ० एन महामातः नगलक सस्वतं समयं यु.यु

धौ० [ति नगलज]नस अकस्मा पलिबोधे व (२१) अकस्मा पलिकि[लेसे]
जौ० ति ——— ——— नेहि — — ——— ———

धौ० व नो सिया ति [।] एताये च अठाये हकं [धं]मते पंचसु
जौ० — — ——— — ——— — ——— — —(११) पंचसु

धौ० पंचसु वसे(२२)सु [नि]खामयिसामि ए अखखसे
जौ० पंचसु वसेसु अनुसंयानं निखामयिसामि महामातं

धौ० अ[चं]ड सखिनालंभे होसति [।] एतं अठं जानितु [त]था
जौ० अचंडं [अ]फलहत वचनेले .... मांलेवा

धौ० (२३) कलंति अथ मम अनुमथी ति [।] उजेनिते पि चु कुमाले एतायेव
जौ० ....(२२) . . आजवचनिक [।]

धौ० अठाये निखामयिस [।] (२४) हेदिसंमेव वगं नो च अतिकामयिसति
जौ०

धौ० तिंनि वसानि [।] हेमेव तखसिलाते पि [ ] अदा अ.......
जौ० अंदा अनुसंयानं

धौ० ते महामाता निखमिसंति अनुसयानं तदा अहापयितु अतने कंमं
जौ० निखमिसंति अतने कंमं

धौ० एतं पि जानिसंति (२६) तं पि तथा कलंति अथ लाजिने अनुमथी ति[।]
जौ० ए, पि . न— — — — — — — — — — —

संस्कृत-अनुवाद ।

देवानां प्रियस्य वचनेन तोसल्यां महामात्याः नगर-व्यहारकाः वक्तव्याः । यत् किंचित् पश्यामि अहं तत इच्छामि किमिति कर्मणा प्रतिवेदये अहं द्वारतः च आरभे अहं । एतत च मे मुख्यमतं द्वारं अस्मिन् अर्थे या युस्मासु अनुशिष्टिः । यूयं हि बहुषु प्राणसहस्रेषु आयत्ताः प्रणयं गच्छेम सुमनुष्याणां इति । सर्वे मनुष्याः प्रजाः मम । यथा प्रजायै इच्छामि अहं किमिति सर्वेण हितसुखेन ऐहलौकिकपारलौकिकेन युज्येरन् इति तथा मनुष्येषु अपि इच्छामि अहम् । न च प्राप्नुथ यावद्गमकः अयं अर्थः । कश्चित् अपि एकः पुरुषः मन्यते (जानाति) एतत्, सः अपि देशं न सर्वम् । पश्यत हि यूयं इदं सुविहिता अपि नीतिः इयम् । एकः पुरुषः अपि अस्ति यः बन्धनं वा परिक्लेशं

वा प्राप्नोति, तत् भवति अकस्मात् तेन बन्धनान्तिकं अन्यत्च, बहुजनः द्वीयः दुःखीयन्ति । ततः एष्टव्यं युष्माभिः किमिति मध्यं प्रतिपादयेम इति । एभिः तु जातैः न संप्रतिपद्यते ईर्ष्यया अश्रमेण नैष्ठुर्येण त्वरया अनावृत्या आलस्येन तन्द्रया । तत् एष्टव्यं किमिति एतानि जातानि न भवेयुः मम इति । एतस्य च सर्वस्य मूलं अनश्रमः अत्वरा च नित्यम् । एवं कुर्वन्तः स्त, उद्गच्छत । संचरितव्यं व्रजितव्यं एतव्यं वा । एवं एव यत पश्यथ यूयं तेन वक्तव्यं "आज्ञां न पश्यथ, एवं च एवं च देवानां प्रियस्य अनुशिष्टिः ।" तत् महाफलं एतस्य संप्रतिपादनं महापाया असंप्रतिपत्तिः । विप्रतिपद्यमानैः (विप्रतिपद्यमानानां) नास्ति स्वर्गस्य आराद्धिः न राजाराद्धिः । द्विफलः हिं अस्य कर्मणः मया कृतः मनोतिरेकः । संप्रतिपद्यमानाः तु एतत् स्वर्गं आराधयिष्यथ तथा राज्ञः आनृण्यं ईहध्वे । इयं च लिपिः तिष्यनक्षत्रेण श्रोतव्या अन्तरा अपि च तिष्ये क्षणे क्षणे एकेन

अपि श्रोतव्या । एवं च कुर्वन्तः यूयं चेष्टध्वं संप्रतिपादयितुम् । एतस्मै अर्थाय इयं लिपिः लिखिता इह येन नगर-व्यवहारकाः शाश्वतं समयं यु येरन् इति नगर-जनस्य अकस्मात परिबाधः वा अकस्मात् परिक्लेशः वा न स्यात् इति । एतस्मै च अर्थाय अहं धर्मतः पंचसु पंचसु वर्षेषु निष्क्रमयिष्यामि (कर्मचारि-वर्गं) यः अकर्कशः अचण्डः श्लक्ष्णारंभः भविष्यति (तथा) एतं अर्थं ज्ञात्वा तथा कुर्वन्ति यथा मम अनुशिष्टिः इति । उज्जयनीतः अपि च कुमारः एतस्मै अर्थाय निष्क्रमयिष्यति ईदृशं एव वर्गं न च अतिक्रमिष्यति त्रीणि वर्षाणि । एवं एव तक्षशिलातः अपि । यदा च ते महामात्याः निष्क्रमिष्यन्ति अनुसंयानं तदा अहापयन्तः आत्मनः कर्म एतत अपि ज्ञास्यन्ति तत अपि तथा कुर्वन्ति यथा राज्ञः अनुशिष्टिः इति ।

हिन्दी-अनुवाद

कलिंग देशवासियोंके प्रति राज्यकर्मचारियोंका कर्त्तव्य[1] ।

देवताओंके प्रियकी आज्ञासे तोसली नगरमें उन महामात्रोंको जो उस नगरमें शासन करते हैं ऐसा कहना:—जो कुछ मेरा मत है उसके अनुसार मैं चाहता हूं कि कार्य हो और अनेक उपायोंसे कार्यका आरम्भ किया जाय। मेरे मतमें इस कार्यको सिद्ध करनेका मुख्य उपाय आप लोगोंके प्रति मेरी (यह) शिक्षा है (जिसे मैं आप लोगोंको देना

टिप्पणियां ।

१—प्रथम कलिंग शिलालेख तोसली और समापा नगरके शासन-कर्त्ताओं और महामात्र इत्यादि उच्च राज-कर्मचारियों को सम्बोधन करके लिखा गया है और इस लेखमें इन शासन-कर्त्ताओंसे कहा गया है कि नगर-निवासियोंके साथ न्याय किया जाय। प्रथम कलिंग शिलालेखको किसी किसी विद्वान्ने "प्रान्तिक लेख" (Provincials' Edict) के नामसे भी लिखा है।

चाहता हूं):—आप लाग इसलिये कई सहस्र प्राणियोंके ऊपर रक्खे गये हैं कि जिसमें हम अच्छे लोगोंके स्नेह-पात्र बनें। सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं और जिस प्रकार मैं चाहता हूं कि मेरे पुत्र-गण सब तरहके हित और सुखको प्राप्त करें उसी प्रकार मैं चाहता हूं कि सब मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक सब तरहके हित और सुखका लाभ उठायें। पर आप लोग इस तत्वको पूरी तरहसे नहीं समझते। कदाचित् एकाध व्यक्ति इस तत्वको समझते हों पर वे भी इसे केवल कुछ ही अंशोंमें न कि पूर्ण अंशोंमें समझते हैं। आपलोग इस बातपर ध्यान दें क्योंकि यह नीति अच्छी है। ऐसा हो सकता है कि कोई व्यक्ति कैदमें छोड़ दिया जाय या क्लेश पावे और जब किसीको कैद वगैरह बिना कारणके होता है तो और बहुतसे लोगोंको भी बड़ा दुःख होता है। ऐसी हालतमें आपलोगोंको (अत्यन्त कठोरता और अत्यन्त दया त्याग करके) मध्य-पथ (न्याय-पथ) आलम्बन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। पर बहुतसी ऐसी निम्नलिखित प्रवृत्तियां (दोष) हैं जिनके कारण सफलता नहीं होती जैसे ईर्ष्या, श्रमका अभाव, निष्ठुरता, जल्दबाजी, अकर्मण्यता, आलस्य और तन्द्रा। आपलोगोंको ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी प्रवृत्तियां आपलोगोंमें न आनी चाहियें। इस नीतिके अनुसार काम करनेमें श्रम और धीरता ही इन सब बातोंका मूल है। इस तरह करते रहो और

उद्योग करो। (हर एक मनुष्यको इसके अनुसार) चलना चाहिये और अग्रसर होकर प्रयत्न करना चाहिये। इसी प्रकार आप (अपना कर्त्तव्य) जो समझते हैं उसके अनुसार आपको यह कहना चाहिये कि "देवताओंके प्रियकी यह आज्ञा है।" इस आज्ञाको पूरा करनेसे बड़ा फल मिलता है और न पूरा करनेसे बड़ी विपत्ति होती है। जो इससे चूकते हैं वे न तो स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं और न राजाको प्रसन्न कर सकते हैं। इस विषयमें सच्चे उत्साहके साथ काम करनेसे दो फल मिलते हैं अर्थात् यदि आप मेरी आज्ञा पूरी तरहसे मानेंगे तो आप स्वर्ग प्राप्त करेंगे और मेरे प्रति जो आपका ऋण है उससे भी उऋण हो जायंगे। इस लेखको प्रत्येक [२]पुष्य नक्षत्रके दिन सुनना चाहिये और बीच बीचमें उपयुक्त अवसर पर अकेले एक को भी पुष्य नक्षत्रके दिन इसे सुनना चाहिये। इस तरह करते हुए आप मेरी इच्छा पूरी करनेकी चेष्टा करें। यह लेख इसलिये लिखा गया कि जिसमें [३]नगर-व्यावहारिक (नगर

२—"प्रत्येक पुष्य नक्षत्रके दिन" अर्थात् प्रत्येक महीनेमें एकबार जब कि चन्द्रमा पुष्य नक्षत्रमें हो।

३—"नगर-व्यावहारिक" नामके कर्मचारी कदाचित् महामात्र नामके उच्च कर्मचारियोंसे भिन्न थे।

शासक लोग) सदा इस बातका प्रयत्न करें कि नगर-निवासियोंको अकारण बन्धन या दण्ड न हो । और इसलिये मैं धर्मानुसार पाँच [४]पाँच वर्ष पर (ऐसे कर्मचारियोंको) बाहर (दौरे पर) भेजा करूंगा जो नरम, क्रोध-रहित और दयालु होंगे और जो इस कार्यको ध्यानमें रखते हुए मेरी आज्ञाके अनुसार चलेंगे । उज्जयिनीमें भी [५]कुमार इस कार्यके लिये इसी प्रकार कर्मचारियोंको तीन तीन वर्षके अन्दर भेजेंगे । पर तीन वर्षसे अधिकका अन्तर न देंगे । [६]तक्षशिलाके लिये भी यही आज्ञा है । जब उक्त महामात्र (कर्मचारीगण) दौरेपर निकलेंगे तो अपने साधारण कार्योंको करते हुए इस बातपर भी ध्यान देंगे और राजाकी आज्ञाके अनुसार काम करेंगे ।

४—तृतीय शिलालेखमें भी अश कने लिखा है कि पाँच २ वर्ष पर धर्मानुशासनके लिये तथा और कामोंके लिये "युक्त", "रज्जुक" और "प्रादेशिक" नामके कर्मचारी साम्राज्यमें सर्वत्र दौरे पर भेजे जाते थे । तृतीय शिला-लेख देखिये ।

५—"कुमार"—प्रधान महिषी "देवी" के नामसे और उसके पुत्र "कुमार" के नामसे कहे गये हैं ।

६—उज्जयिनी, तक्षशिला, तोसली और सुवर्णगिरि नामक चार प्रान्तीय राजधानियोंके नाम अशोकके शिलालेखोंमें मिलते हैं । उज्जयिनी मध्यभारतकी, तक्षशिला पश्चिमोत्तर प्रान्तकी, तोसली कलिंग प्रान्तकी और सुवर्णगिरि दक्षिणी प्रान्तकी राजधानी थी । ऐसा कहा जाता है कि अशोक अपने पिताके जीवन-कालमें तक्षशिला और उज्जैन दोनों जगहोंके प्रान्तिक शासक रह चुके थे ।

द्वितीय कलिंग शिला-लेख।

मूल

धौ० (१) देवानं पियस वचनेन तोसलियं कुमाले महामाता च
जौ० (१) देवानं पिये हेवं आह समापायं महमता

धौ० वतविय [:—] अं किछि दखामि हकं ———
जौ० लजवचनिक वतविया [:—] अं किछि दखामि हकं तं इछामि

धौ० ——— ——— ——— (२) दुवालते च
जौ० हकं किंति [१] कंकमनं (२) पटिपातये हं दुवालते च

धौ० आलभे हं [।] एस च मे मोख्यमत दुवाला एतासि अठासि
जौ० आलभे हं [।] एस च मे मोखियमतं दुवाल एतस अथस

धौ० अं तुफे[सु] —— ...... —— ...... — मम [।] (३) अथ
जौ० अं तुफेसु अनुस[थि] [।] सवमुनि—(३) सा मे पजा [।] अथ

धौ० पजाये इछामि हकं किंति [?] सवेन हि[तसुखे]न
जौ० पजाये इछामि किंति [?] मे सवेणा हितसुखेन

धौ०
जौ० यु[जे]यू अथ पजाये इछामि किंति [?] मे सवेन हितसु--(४) खेन

धौ० हिदलो[किक]पाललोकिकाये युजेवू ति [।] हेव... ... ...
जौ० युजेयू ति हिदलोगिकपाललोकिकेन [।] हेवं मेव मे इछ

धौ० ......नि...... (४) सिया [।] अंतानं अविजितानं किछंद सु लाज
जौ० सवमुनिसेसु सिया [।] अंतानं अविजिता—(५) नं किछंदे सु लाजा

धौ० . फेस . . . मवे इछ मम अंतेसु पापुनेवु
जौ० अफेसू ति एता का वा मे इछ अंतेसु पापुनेयु लाजा

धौ० ते इति देवानं पिय........ अ. विगन मघाये (५) हुवेवू ति
जौ० हेवं इछति अनुविगिन हेयु (६) ममियाये

धौ० अस्वसेवु च सुखंमेव लहेवु मम ते नो दुखं [।]
जौ० अस्वसेयु च मे सुखंमेव च लहेयू मम तें नो खं [।]

धौ० हेवं पापुनेवू [इ]ति खमिसति ने देवानं पिये अफाकं
जौ० हेवं च पापुनेयु खमिसति ने लाजा (७)

धौ० ति ए चकिये खमितवे मम निमितं च धंमं
जौ० ए चकिये खमितवे ममं निमितं च धंमं

धौ० चलेवू (६) हिदलोक पललोकं च आलाधयेवू [।] एतासि
जौ० चलेयू ति हिदलोगं च पललोगं च आलाधयेयु [।] एताये

धौ० अठसि हकं अनुसासामि तुफे [।] अनने एतकेन
जौ०(८)च अठाये हकं तुफोनं अनुसासामि [।] अनने एतकेन

धौ० हकं अनुसासितु छंदं च वेदितु आ हि
जौ० हकं तुफेनि अनुसासितु छंदं च वेदि(९) तु आ मम

धौ० धिति पटिंना च ममा (७) अजला [।] से हेवं कटु
जौ० धिति पटिंना च अचल [।] स हेवं कटु

धौ० कंमे चलितवियं अस्वा....नि च तानि एन
जौ० कंमे चलितावियं अस्वासनिया च ते एन ते

धौ० पापुनेवू इति अथ पिता तथ देवानं पिये अफाक अथा
जौ० पापुने–(१०)यु अथा पित हेवं ने लाजा ति अथ

धौ० च अतानं हेवं देवानं पिये (अ)नुकंपाति अफे
जौ० अतानं अनुकंपति हेवं अफेनि अनुकंपाति

धौ० (८) अथा च पज हेवं मये देवानं पियस [।] से हकं
जौ० अथ पजा हे(११)वं मये लाजिने [।] तुफेनि हकं

धौ० अनुसासितु छंदं व ब.... फाक
जौ० अनुसासितु छंदं व बेदितु मम धिति पटिना वा

धौ० देसाबुतिके ह्वेसामि एताये अथाये [।]
जौ० अचल ....(१२) देसा आयुतिके ह्वेसामी एतसि अथसि [।]

धौ० पाटिवला हि तुफे असवासनाये हितसुखाये व [हि]द
जौ० अतं हि तुफे अस्वासनाये हितसुखाये व हेदं

धौ० (८) हिदलोकिकपाललोकिकाये [।] हेवं च कलंतं तुफे स्वगं
जौ० हिद-(१३) लोगिकपाललोकिकाये [।] हेवं च कलंतं स्वगं

धौ० आलाधयिसथ मम च आननियं एहथ [।] एताये
जौ० [च] आलाधयिसथ मम च आननेयं एसथ [।] ए(१४)ताये

धौ० च अठाये इयं लिपि लिखिता हिद एन महामाता स्वसतं
जौ० च अथाये इ[यं] लिपी लिखिता . ६ एन महामाता सस्वतं

धौ० [स]म (१०) युजिसंति अस्वासनाये धंमचलनाये
जौ० समं युजेयू अस्वासनाये च (१५) धंमचलनाये

धौ० च तेस अंतानं [।] इयं च लिपि अनुचातुंमासं
जौ० च अंतानं [।] इयं च लिपी अनुचातुंमासं

धौ० तिसेन नखतेन सोतविया कामं च खनसि खनसि
जौ० सोतविया तिसेन अंतला पि च सोतविया[।](१६) खने

धौ० अंतला पि तिसेन एकेन पि (११) सोतविये [।] हेवं
जौ० संतं एकेन पि सोतविया:[।] हेवं च

धौ० कलंतं तुफे चघथ संपटिपादयितवे [।]
जौ० कलंतं चघथ संपटिपातयितव [ ]

संस्कृत—अनुवाद

देवानां प्रियः एवं आह—समापायां तोसल्यां च कुमाराः महामात्याः राजवचनेन वक्तव्याः यत् किंचित् पश्यामि अहं तत् इच्छामि अहं; किमिति—कर्मणा प्रतिपादये अहं द्वारतः च आरभे अहम् । एतत् च मे मुख्यमतं द्वारं एतस्य अर्थस्य यत् युष्मासु अनुशिष्टिः । सर्वमनुष्याः मम प्रजा । यथा प्रजायै इच्छामि किमिति मे सर्वेण हितसुखेन युज्येरन् तथा प्रजायै इच्छामि किमिति मे सर्वेण हितसुखेन युज्येरन् इति ऐहलौकिकपारलौकिकेन । एवं एव मे इच्छा सर्वमनुष्येषु । स्यात् अन्तानां अविजितानां किंछन्दः असौ राजा अस्मासु इति । एतावती मे इच्छा अन्तेषु । प्राप्नुयुः "राजा एवं इच्छति—अनुद्विग्नाः भवेयुः, मयि आश्वसेयुः, मत्तः सुखं एव च लभेरन्, मत्तः ते न दुःखम् ।" एवं च प्राप्नुयुः "क्षमिष्यते

मः राजा यत् शक्यं क्षमितुम् ।" मम निमित्तं च धर्मं चरेयुः इति इहलोकं च परलोकं च आराधयेयुः । एतस्मै च अर्थाय अहं युष्मान् अनुशास्मि । आनृण्यं एतेन । युष्मान् अनुशास्तुं छन्दं च वेदयितुं मम धृतिः प्रतिज्ञा च अचला । तत् एवं कर्त्तुं कर्म चरितव्यं आश्वासनीयाः च ते येन प्राप्नुयुः "यथा पिता एवं नः राजा इति, यथा आत्मानं अनुकंपते एवं अस्मासु अनुकंपते, यथा प्रजा एवं वयं राज्ञः ।" युष्मान् अनुशास्तुं छन्दं च वेदयितुं मम धृतिः प्रतिज्ञा च अचला । देशे आयुक्तान् भावयिष्यामि एतस्मिन् अर्थे । अलं हि यूयं आश्वासनाय हित-सुखाय च तेषां ऐहलौकिकपारलौकिकाय । एवं च कुर्वन्तः स्वर्गं च आराधयिष्य थ ममच आनृण्यं एष्यथ । एतस्मै च अर्थाय इयं लिपिः लिखिता इह येन महा-मात्याः शास्वतं समयं युज्येरन् आश्वासनाय च धर्मचरणाय च अन्तानाम् । इयं च लिपिः अनुचातुर्मासं श्रोतव्या । तिष्येण अन्तरा अपि च श्रोतव्या । क्षणे सति एकेन अपि श्रोतव्या । एवं च कुर्वन्तः चेष्टध्वं संप्रतिपादयितुम् ।

हिन्दी-अनुवाद ।

सीमान्त[२] जातियोंके प्रति राजकर्मचारियोंका कर्त्तव्य ।

टिप्पणियां ।

१—कलिंगके दोनों लेख प्रायः एक ही रूपमें उड़ीसाके पुरी ज़िलेमें धौली नामक स्थानपर और मद्रास प्रान्तके गंजाम ज़िलेमें जौगढ़ नामक स्थानपर पाये जाते हैं। इन दोनों स्थानोंपर चतुर्दश शिलालेखोंमेंसे एकादश शिलालेखसे लगाकर त्रयोदश शिलालेख तक नहीं पाये जाते। उनके स्थानपर यही दो लेख खुदे हुए मिलते हैं। इन दो कलिंग शिलालेखोंको "अतिरिक्त शिलालेख" (Separate or Detatched Edicts) के नामसे भी कहते हैं। इन दोनों लेखोंमें देवानां प्रियः प्रियदर्शीके स्थानपर केवल देवानां प्रियः यह पाठ दिखलायी पड़ता है। जौगढ़ और धौलीके इन दो लेखोंमें राजनीतिका उच्च आदर्श दिखलायी पड़ता है। राजनीति और धर्मनीतिके सिद्धान्तोंपर एक नवीन धर्म-राज्य-स्थापन करना ही अशोकका उद्देश्य था। कलिंगके इन दो शिलालेखोंमें उक्त आदर्श स्पष्ट रूपसे प्रगट होता है। "सवे मुनिस पजा

देवताओंके प्रिय ऐसा कहते हैं:—समापाम[१] तथा तोसलीमें कुमार और महामात्रोंको राजाकी ओरसे ऐसा कहना:——मेरा जो मत है उसके अनुसार मैं चाहता हूं कि कार्य हो और अनेक उपायोंसे कार्यका आरम्भ किया जाय। मेरे मतमें इस कार्यको सिद्ध करनेका मुख्य उपाय आप लोगोंके प्रति मेरी (यह) शिक्षा है (जिसे मैं आप लोगोंको देना चाहता हूं):——"सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं"। जिस प्रकार मैं चाहता हूं कि मेरे पुत्रगण सब तरहके हित और सुखका लाभ

भवा" (धौली), "सब मुनिसा ये पजा" (जौगढ़) अर्थात् "सब मनुष्य मेरे पुत्रके समान हैं" यही अशोककी राजनीतिका मूलमंत्र है।

२—द्वितीय कालिंग शिलालेखको किसी किसी लेखकने "सीमान्त लेख" (Borders Edict) के नामसे लिखा है। साम्राज्यका सीमान्त जातियोंका शासन किस प्रकार होना चाहिये यही इस शिलालेखमें दिखलाया गया है।

३—जिन प्राचीन ध्वंसावशेषोंके बीचमें जौगढ़का शिलालेख एक चट्टानपर खुदा हुआ है वहीं कदाचित् समापा नगर बसा हुआ था। धौली वाला द्वितीय शिलालेख तोसलीके राज कुमार और उच्च कर्मचारियोंको संबोधन करके लिखा गया है। तोसली नगर संभवतः धौलीके पास ही कहींपर रहा होगा। कालिंगमें अशोकके जो उच्च कर्मचारी नियुक्त थे उनका केन्द्रस्थान तोसली और समापा था।

प्राप्त करें उसी प्रकार मैं चाहता हूं कि सब मनुष्य भी ऐहलौकिक और पारलौकिक सब तरहके हित और सुखका लाभ प्राप्त करें। कदाचित् (आप यह जानना चाहें कि) जो सीमान्त जातियां अभी नहीं जीती गयी हैं उनके सम्बन्धमें हम लोगोंके प्रति राजाकी क्या आज्ञा है, तो मेरा उत्तर यह है कि राजा चाहते हैं कि "वे (सीमान्त जातियाँ) मुझसे न डरें, मुझपर विश्वास करें और मुझसे सुख ही प्राप्त करें, कभी दुःख न पावें"। वे यह भी विश्वास रक्खें कि "जहां तक क्षमाका व्यवहार हो सकता है वहां तक राजा हम लोगोंके साथ क्षमाका बर्ताव करेंगे"। मेरे लिये उन्हें धर्मका अनुसरण करना चाहिये जिससे उनका यह लोक और परलोक दोनों बनें। इस कामके लिये मैं आप लोगोंको (राज-कर्मचारियोंको) शिक्षा देता हूं। इससे मैं उऋण हो गया। आप लोगोंको शिक्षा देने तथा अपनी आज्ञा प्रगट करनेमें मेरा दृढ़ निश्चय तथा दृढ़ प्रतिज्ञा है। अब इस (शिक्षा) के अनुसार चलते हुए आपको ऐसा काम करना चाहिये कि सीमान्त जातियाँ मुझपर भरोसा करें, और समझें कि "राजा हमारे लिये वैसे ही हैं जैसे पिता, वे हमपर वैसा ही प्रेम रखते हैं जैसा अपने ऊपर, हम लोग राजाके वैसे ही हैं जैसे उनके लड़के"। आप लोगोंको शिक्षा देने तथा अपनी आज्ञा बतानेमें मेरा दृढ़ निश्चय तथा दृढ़ प्रतिज्ञा है। मैं स्थानीय कर्मचारियों-

को इस कामके लिये तैयार कर सकूंगा। क्योंकि आप मेरे ऊपर लोगोंका विश्वास उत्पन्न करा सकते हैं और इस लोक तथा परलोकमें उनके हित और सुखका सम्पादन करा सकते हैं। इस प्रकार करते हुए आप लोग स्वर्ग-लाभ कर सकते हैं, और मेरे प्रति आप लोगोंका जो ऋण है उससे उऋण हो सकते हैं। यह लेख इस उद्देश्यसे लिखा गया है कि महामात्र (उच्च कर्मचारीगण) सीमान्त जातियोंमें विश्वास पैदा करनेके लिये और उन्हें धर्म-मार्ग-पर चलानेके लिये निरन्तर प्रयत्न करें। इस लेखको प्रति चातुर्मास्य[४] अर्थात् चार चार मासकी प्रत्येक ऋतुके प्रारम्भमें तथा बीच बीचमें[५] पुष्य नक्षत्रके दिन सुनना चाहिये और अवसर अवसरपर हर एकको अकेले भी सुनना चाहिये। ऐसा करते हुए आप लोग मेरी आज्ञाके पालनका प्रयत्न करें।

४—"प्रति चातुर्मास्य"—पञ्चम स्तम्भ लेखकी तीसरी टिप्पणी देखिये। इससे मालूम पड़ता है कि अशोकके समयमें सरकारी तौरपर साल छः ऋतुओंमें नहीं बल्कि तीन ऋतुओंमें विभक्त था। "आन्ध्र" और "कुशन" राजाओंके लेखोंसे भी यही पता लगता है कि उस जमानेमें साल तीन ऋतुओंमें अर्थात् ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त ऋतुओंमें विभक्त था।

५—"पुष्य नक्षत्रके दिन" अर्थात् जिस दिन चन्द्रमा पुष्य नक्षत्रमें हो।

तृतीय अध्याय

सप्त स्तंभ-लेख।

[टो० = दिल्ली टोपरा; मे० = दिल्ली मेरठ; इ० = इलाहाबाद; अ० = लौड़िया अराराज; न० = लौड़िया नन्दनगढ़; रा० = रामपुरवा]

प्रथम स्तम्भ-लेख

मूल

टो० (१) देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आहा [:—] सड़ुवीसति
मे० (१) ——— ——— ——— ——— ——— ——— ——— ———
इ० (१) देवानं पिये पियदसी लाजा हेवं आहा [:—] सड़ुवीसति
अ० (१) देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आह [:—] सड़ुवीसति
न० (१) देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आह [:—] साड़ुवीसति
रा० (१) देवानंा पिये पियदसि लज हेवं आह [:—] सड़ु,......

टो०	(२) दसअभिसितेन	मे इयं	धंमलिपि	लिखापिता	[:—]
मे०	————	— —	——	————	
इ०	वसाभिसितेन	मे इयं	धंमलिपि	लिखापिता	[:—]
अ०	वसाभिसितेन	मे इयं	धंमलिपि (२)	लिखापित	[:—]
न०	वसाभिसितेन	मे इयं (२)	धंमलिपि	लिखापित	[:—]
रा०	————	— —	——	————	— —

टो०	(३) हिदतपालते	दुसंपटिपादये	अंनत	अगाया	धंम—
मे०	———	————	——	———	——
इ०	हिदतपालते	दुसंपटिपादये (२)	अंनत	अगाय	धंम—
अ०	हिदतपालते	दुसंपटिपादये	अंनत	अगाय	धंम–
न०	हिदतपालते	दुसंपटिपादये	अंनत	अगाय	धंम—
रा०	———	(२)दुसंपटिपादये	अंनत	अगाय	धंम—

टो० कामताया (४) अगाय पलीखाया अगाय सुसूसाया अगेन भयेना (४)
मे० ——— —— ——— —— ——— —— ——
इ० कामताय अगाय पलीखाय अगाय सुसूसाया अगेन भयेन
अ० कामतय अगाय पलीखाय(३)अगाय सुसूसाय अगेन भयेन
न० कामताय (३) अगाय पलीखाय अगाय सुसूसाय अगेन भयेन
रा० कामताय —— ——— —— ——— —— ——

टो०(५)अगेन उसाहेना [।] एस चु खो मम अनुसथिया (६) धंमा-
मे० —— ——— —— — — — ——— ——
इ० अगेन उसाहेन [।] एस चु खो मम अनुसथिया (३) धंमा-
अ० अगेन उसाहेन [।] एस चु खो मम अनुसथिय धंमा-
नं० अगेन उसाहेन [।] एस चु खो मम (४) अनुसथिय धंमा-
रा० —— ——— (३) एस चु खो मम अनुसथिय धंमा-

टो०	पेखा		धंमकामता	चा	सुवे	सुवे	वढिता	वढीसति	चेवा	[।]
मे०	——		————	—	—	—	——	———	—	
इ०	पेखां		धंमकामता	च	सुवे	सुवे	वढिता	वढिसति	चेवा	[।]
अ०	पेख	(४)	धंमकामता	च	सुवे	सुवे	वंढीता	वढिसति	चेव	[।]
न०	पेख		धंमकामतां	च	सुवे	सुंवे	वढित	वढिंसांति	चेव	[।]
रा०	पेख		धंम——	—	—	—	——	———	—	

टो०	(७) पुलिसां	पि	च	मे	उकसा	चां	गेवया	चा	मझिमा	चा
मे०	————				——	—	——	—	———	—
इ०	पुलिसा	पि		मे	उकसा	च	गेवया	च	मझिमां	च
अ०	पुलिसा	पि		मे	उकसा	च	गेवंयां	च	मझिमा	च
न०	पुलिसां	पि		मे(५)	उकसा	च	गेवया	च	मझिमा	च
रा०	————				——	(४)	गेवयां	च	मझिमा	च

टो०	अनुविधीयंति	(८)	संपटिपादयंती	चा		अलं	चपलं
मे०	————		————			——	——
इ०	अनुविधीयंति		संपटिपादयंति	च	(४)	अलं	चपलं
अ०	अनुविधीयंति	(५)	संपाटिपादयांति	च		अलं	चपलं
न०	अनुविधीयंति		संपटिपादयंति	च		अलं	चपलं
रा०	अनुविधीयंति		संपाटिपादयं	—		——	——

टो०	समादपयितवे		हेमेवा	अंत(१)महामाता	पि	[ ]	एसा	पि	विधि
मे०	————		——	————	—		——	—	——
इ०	समादपयितवे		हेमेव	अंतमहामाता	पि	[।]	एसा	हि	विधि
अ०	समादपयितवे		हेमेव	अंतमहामाता	पि	[।]	एसा	हि	विधि
न०	समादपयितवे	(६)	हेमेव	अंतमहामाता	पि	[।]	एसा	हि	विधि
रा०	————		——	————	—	—	——	—	——

टो० या इयं धंमेन पालना धंमेन विधाने (१०) धंमेन
मे०————————नं धंमेन (२) विधाने धंम.
इ० या इयं धंमेन पालना धंमेन विधाने धंमेन
अ० या इयं धंमेन पालन (६) धंमेन विधाने धंमेन
न० या इयं धंमेन पालन धंमेन विधाने धंमेन
रा० या इयं धंमन पालन धंमेन विधाने धंमेन

टो० सुखियना धंमेन गोती ति [।]
मे० .खिय. .... [।]
इ० सुखीयना धंमेन गुति ति चु [।]
अ० सुखीयन धंमेन गोती ति [।]
न० सुखीयन (७) धंमेन गोती ति [।]
रा० सु———————————[।]

संस्कृत-अनुवाद ।

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह -षड्विंशतिवर्षाभिषिक्तेन मया इयं धर्मलिपिः लेखिता । इहत्य पारत्र्यं दुःसम्प्रतिपाद्यं अन्यत्र अग्र्यायाः धर्मकामतायाः, अग्र्यायाः परीक्षायाः, अग्र्यायाः शुश्रूषायाः, अग्र्यात् भयात्, अग्र्यात् उत्साहात् । एषा तु खलु मम अनुशिष्ट्या धर्मापेक्षा धर्मकामता च स्वस्मिन् स्वस्मिन् वर्धिता वर्धिष्यते चैव । पुरुषाः अपि च मे उत्कृष्टाः च *गम्याः च मध्यमाः च अनुविदधति संप्रतिपादयन्ति च अलं चपलं समादातुम् । एवमेव अन्तमहामात्याः अपि । एषा हि विधिः या इयं धर्मेण पालना धर्मेण विधानं धर्मेण सौख्यं धर्मेण गुप्तिः इति ।

---

* अर्थात् " निकृष्टाः "

हिन्दी-अनुवाद ।

शासनके सिद्धान्त १ ।

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —राज्याभिषेकके २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्म-लेख लिखवाया । एकान्त धर्मानुराग, विशेष आत्म-परीक्षा[२], बड़ी शुश्रूषा, बड़े भय और महान् उत्साहके बिना ऐहिक और पारलौकिक दोनों उद्देश्य दुर्लभ हैं । पर मेरी शिक्षासे लोगोंका धर्मके प्रति आदर और अनुराग दिनपर दिन बढ़ा है और आगे बढ़ेगा . मेरे पुरुष[३] (राज-कर्मचारी), चाहे वे उच्च पदपर हों या नीच पदपर अथवा मध्यम पदपर, मेरी शिक्षाके अनुसार कार्य करते हैं और ऐसा उपाय करते हैं कि चंचल-मति (दुर्विनीत या पापी)

टिप्पणियां ।

१—सप्त स्तम्भ-लेखोंमें क्रमसे उन सब उपायोंका वर्णान किया गया है जिन्हें अशोक अपने दीर्घ राज्य-कालमें धर्मका प्रचार करनेके लिये काममें लाये थे । इन स्तम्भ-लेखोंमें अशोकने अपने शासनके सिद्धान्तोंका भी वर्णान किया है । यह सातों लेख केवल कर्मचारियोंको नहीं बल्कि साम्राज्यकी कुल प्रजाको सम्बोधन करके लिखे गये हैं ।

२—तृतीय स्तम्भ-लेखमें "आत्म-परीक्षा"के विषयमें विशेषरूपसे लिखा गया है ।

३—पुलिसा (पुरुष)—चतुर्थ तथा सप्तम स्तम्भ-लेखोंमें भी "पुरुष" शब्दका व्यव-

लाग भी धर्मका आचरण करें। इसी तरह अन्त-महामात्र[4] (सीमान्तपरके राजकर्मचारी) भी आचरण करते हैं। धर्मके अनुसार पालन करना, धर्मके अनुसार काम करना, धर्मके अनुसार सुख देना और धर्मके अनुसार रक्षा करना यही विधि (शासनका सिद्धान्त) है।

हार हुआ है। इस लेखमें पुरुषका अर्थ साधारण कर्मचारी मालूम पड़ता है।

४—अन्तमहामात्र—संस्कृतका अन्तःपाल शब्द "अन्तमहामात्र"का बोधक है।

द्वितीय स्तंभ-लेख

मूल

टो०	देवानं	पिये	पियदसि	लाजा (११)	हेवं	आहा	[:-]	धंमे	साधू [।]
मे०	देवानं	पिये	पियदसि	लाजा	हेव	..	[:-]	धंमे	साधु [।]
इ०	देवानं	पिये	पियदसी	लाजा	हेवं	आहा	[:-]	धंमे	साधु [।]
अ०	देवानं	पिये	पियदसि	लाज	हेवं	आह	[:-]	धंमे	साधु [।]
न०	देवानं	पिये	पियदसि	लाज	हेवं	आह	[:-]	धंमे	साधु [।]
रा०	देवानं	पिये	पियदसि	लाज	हेवं	आह	[:-]	धंमे	साधु [।]

टो० कियं चु धंमे ति [।] अपासिनवे बहुकयाने (१२) दया दाने सचे

मे० कियं · .. · [।] (४) अपासिनवे बहुकयाने दया दाने सचे

इ०	कियं	चु	धंमे	ति	[१]	अपासिनवे	बहुकयाने		दंया	दाने	सचें	
अ०	कियं	चु	धंमे	ति	[१]	अपासिनवे	बहुकयाने		दय	दाने	सचे	
न०	कियं	चु	धंमे	ति	[१]	अपासिनवे	बहुकयाने	(९)	दय	दाने	सचे	
रा०	कियं	—	—	—		——	——		—	—	—	

टो०	सोचये	[।]	चखुदाने	पि	मे		बहुविधे	दिंने	दुपद—
मे०	सोचये	[।]	चखुदानं	पि	मे	(५)	बहुविधे	दिंने	दुपद—
इ०	सोचये	[।]	चखुदाने	पि	मे	(४)	बहुविधे	दिंने	दुपद—
अ०(८)	सोचेयेति	[।]	चखुदाने	पि	मे		बहुविधे	दिंने	दुपद—
न०	सोचेयेति	[।]	चखुदाने	पि	मे		बहुविधे	दिंने	दुपद—
रा०	——		——			(७)	बहुविधे	दिंने	दुपद—

टो०(१३)	चंतुपदेसु	पखिवालिचलेसु	विविधे	मे	अनुगहे	कटे
मे०	चंतुपदेसु	पखिवालिचले.	विविधे	मे	अनु(६)गहे	कटे
इ०	चतुपदेसुं	पंखिवालिचलेसु	विविधे	मे	अनुगहे	कटे

शा० चतुपदेसु पखिवालिचलेसु विविधे मे अनुगहे कटे
न० चतुपदेसु पखि-(१०)वालिचलेसु विविधे मे अनुगहे कटे
रा० चतुपदेसु पखिवालिचलसु विवि— — —— —

टो० आपान-(१४)दाखिनाये अंनानि पि च मे बहूनि कयानानि
मे० आपानदाखिनाये अंनानि पि च मे बहूनि .याणानि
इ० आपानदाखिनाये अंनानि पि च मे बहुनि कयानानि
अ० (८) आपानदाखिनाये अंनानि पि च मे बहूनि कयानानि
न० आपानदखिनाये अंनानि पि च मे बहूनि कयानानि
रा० ———— —— — — — —— ——

टो० कटानि [ ] एताये मे (१५) अठाये इयं धंमलिपि लिखापिता [।]
मे० (७) कटानि [।] एताये मे अठाये इयं धंमलिपि लिखापिता [।]
इ० :कटानि [ ] (७) एताये मे अठाये इयं धंमलिपि लिखापिता [।]
अ० कटानि [।] एताये मे अठाये इयं धंमलिपि लिखापित [।]

न०(११)कटानि [।] एताय म अठाये इयं धंमलिपि लिखापित [।]
रा० —— (८) एताये मे अठाये इयं धंमलिपि लिखापित [।]

टो० हेवं अनुपटिपजंतु चिलं-(१६)थितिका च होतूतीति [।]
मे० ,, (८) अनुपटिपजंतू चिलंथितिका च होतुति [ ]
इ० हेवं अनुपाटिपजंतु चिलठितीका च होतूति [।]
अ० हेवं (१०) अनुपटिपजंतु चिलंथितीका च होतूति [।]
न० हेवं अनुपटिपजंतु चिलंथितीका च होंतुति [।]
रा० हेवं अ—— —— — ——

टो० ये च हेवं संपटिपजीसति से सुकटं कछती ति [।]
मे० ये च हे. ....(९)साति से सुकटं कछती ति [।]
इ० ये च हेवं संपाटिपाजिसाति से सुकटं कछती ति [।]
अ० ये च हेवं संपाटिपाजिसाति से सुकटं कछति ति [।]
न० ये च हेवं संपाटिपाजिसाति से सुकटं कछति [।]
रा० — — — —— — —— ——

संस्कृत-अनुवाद

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह – धर्मः साधुः। कियान् तु धर्मः इति? अपास्रवः बहुकल्याणं दया दानं सत्यं शौचम्। चक्षुर्दानं अपि मया बहुविधं दत्तं, द्विपदचतुष्पदेषु पक्षिवारिचरेषु विविधः मया अनुग्रहः कृतः आप्राणदाक्षिण्यं, अन्यानि अपि च मया बहूनि कल्याणानि कृतानि। एतस्मै अर्थाय मया इयं धर्मलिपिः लेखिता–एवं अनुप्रतिपद्यन्तां चिरस्थितिका च भवतु इति। यः च एवं संप्रतिपत्स्यते सः सुकृतं करिष्यति इति।

हिन्दी-अनुवाद

राजाका उदाहरण

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—"धर्म करना अच्छा है ।" पर धर्म क्या है ? धर्म यही है कि पापसे दूर रहे, बहुतसे अच्छे काम करे, दया, दान, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करे । मैंने कई प्रकारसे पारमार्थिक[1] दृष्टिका दान भी लोगोंको दिया है । दोपायों, चौपायों, पक्षियों और जलचर प्राणियोंपर मैंने अनेक प्रकारकी कृपा की है । यहां तक कि मैंने उन्हें प्राण-दक्षिणा तक भी दी है । और भी बहुतसे अच्छे[2] काम मैंने किये हैं । यह लेख मैंने इसलिये लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहे । जो इसके अनुसार कार्य करेगा वह पुण्यका काम करेगा ।

टिप्पणियां

१—"पारमार्थिक दृष्टिका दान"—मूल में "चखुदाने" शब्द आया है। "पारमार्थिक दृष्टि" के अर्थमें चखु (चक्षु) शब्दका व्यवहार हिन्दू और बौद्ध दोनों धर्मके ग्रन्थोंमें हुआ है ।

२—"अच्छे काम" (कल्याणानि)—अच्छे कामोंका उल्लेख पञ्चम शिलालेख तथा सप्तम स्तम्भ-लेखमें भी हुआ है ।

तृतीय स्तंभ-लेख

मूल

दो० (१७) देवानं पिये पियदसि लाज हेवं अहा [:—] कयानंम एव देखति
मे० (१०) देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं आहा [:—] कयानंम व देख.
इ० (८) देवानं पिये पियदसी लाजा हेवं आहा [:—] कयानं एव देखति
अ० (११) देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आह [:—] कयानंम एव देखंति
न० (१३) देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आह [:—] कयानंम एव देखंति
रा० (९) देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आह [:—] कयानंम ए ....

टो० इयं मे (१८) कयाने कटे ति [।] नो मिन पापं देखति
मे० .... म (११) कयाने कटे ति [।] नो मिना पापं देखति
इ० इयं मे कयाने कटे ति [।] नो मिन पापकं देखति

अ० इयं मे कयाने कटे ति [।] नो मिन पापं देखंति
न० इयं मे कयाने कटे ति [।] नो मिन पापं(१४) देखंति
रा० —— ———— — — — ——

टो० इयं मे पापे कटे ति इयं वा आसिनवे (१८) नामा ति [।]
मे० इयं मे पापं कटे ति इयं व(१२) आसिनवे नामा ति [।]
इ० इयं मे पापके कटे ति इयं वा आसिनवे नामा ति [।]
अं० इयं मे पापे कटे ति (१२) इयं व आसिनवे नामा ति [।]
न० इयं मे पापे कटे ति इयं व आसिनवे नामा ति [।]
रा० — — —— —— — (१०) इयं व आसिनवे नामा ति [।]

टो० दुपटिवेखे चु खो एसा [।] हेवं चु खो एस देखिये [।]
मे० दुपटिवेखे चु खो एसा [।] हेवं चु खो .सा देखिये [।]
इ० (९) —— —— — —— —— — —. —— ——
अ० दु ‍टिवेखे चु खो एस [।] हेवं चु खो एस देखिये [।]

न० दुपटिवेखे चु खो एसँ [।] हेवं चु खो एस देखिये [।]
रा० दुपटिवेखे चु खो एस [।] हेवँ — — ————

टो० इमानि (२०) आसिनवगामीनि नाम अथ चंडिये निठूलिये
मे० (१३) इमानि आसिनवगामीनि नाम अथ चंडिये निठूलिये
इ० —— ———— — — —— ——
अ० इमानि आसिनवगामीनि नामाति अथ चंडिये (१३) निठूलिये
न० इमानि आसिनवगामीनि नामाति अथ चंडिये निठूलिये
रा० —— ———— —— — —— ——

टो० कोधे माने इस्या (२१) कालनेन व हकं मा
मे० कोधे (१४) माने इस्या कालनेन व हकं मा
इ० —— —— —— —— - — —
अ० कोधे माने इस्य कालनेन व हकं मा
न० कोधे माने इस्य कालनेन व हकं (१६) मा
रा० (११) कोधे माने इस्य कालनेन व हकं मा

टो॰	पलिभसायिसं [।]	एस	बाढ	देखिये	इयं	मे	(२२)	हिदातिकाये
धे॰	पॅलिभसयिस [।]	....	वाढं (१५)	देखिये	इयं	.		हिदातिकाये
इ॰	————	——	—	———				———
ज॰	पलिभसयिसं ति [।]	एस	बाढं	देखिये	इयं	मे		हिदातिकाये
न॰	पलिभसयिसं ति [।]	एस	वाढं	देखिये	इयं	मे		हिदातिकाये
रा॰	पलिभसयि ———	——	—	———	—	—		———

टो॰	इयं	मन	मे	पालातिकाये	[।]
धे॰	इयं		मे	पालातिकाये	[।]
इ॰	—		—	———	———
ज॰	इयं	मन	मे	पालातिकाये	ति [।]
न॰	इयं	मन	मे	पालातिकाये	ति [।]
रा॰	—	—	—	———	———

संस्कृत-अनुवाद

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह – कल्याणं एव पश्यति (जनः) इदं मया कल्याणं कृतं इति। न पुनः पापं पश्यति इदं मया पापं कृतं इति अयं वा आस्रवः नाम इति। दुष्प्रत्यवेक्षं तु खलु एतत्। एवं तु खलु एतत् द्रष्टव्यं-इमानि आसुवगामीनि नाम यथा चाण्ड्यं (चण्डत्वं) नैष्ठुर्यं, क्रोधः मानः ईर्ष्या। (एतेषां) कारणेन वा अहं मा परिभ्राषिष्ये। एतत् बाढं द्रष्टव्यं इदं मे इहलौकिकाय इदं मे पारत्रिकाय।

हिन्दी-अनुवाद

आत्म-परीक्षा

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं —मनुष्य अपने अच्छे ही कामको देखता है (और मनमें कहता है कि) "मैंने यह अच्छा काम किया है ।" पर वह अपने पापको नहीं देखता (और मनमें नहीं कहता कि) "यह पाप मैंने किया है या यह दोष[1]

टिप्पणियां

१—"दोष" (आसिनव)— "आसिनव" शब्द कदाचित् "आस्रव" शब्दका अपभ्रंश है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२.२.५.१९) में आस्रव शब्दका व्यवहार हुआ है और वहां उसका अर्थ हरदत्तने अपनी टीकामें इस प्रकार किया है "यैः पुरुषः आस्राव्यते बहिराकृष्यते" अर्थात् जिनके द्वारा पुरुष संसारकी ओर खिंचता है अर्थात् "संसारके बाह्य विषय ।" पर कुछ विद्वान्, जिनमें ब्यूलर साहब भी हैं, इस मतको नहीं मानते क्योंकि पाली और प्राकृतमें संस्कृत 'स्र' का "सिन" नहीं बल्कि "स्स" होता है । इन विद्वानोंके मतमें "आसिनव" शब्द "आस्नव" शब्दका अपभ्रंश है जो "आस्नु" से निकला है । जैन शब्द "अराहय" (जिसका अर्थ पाप है) और "आसिनव" दोनों एक ही धातुसे बने हैं ।

मुझमें है।" इस प्रकारकी आत्म-परीक्षा बड़ी कठिन है। तथापि मनुष्यको यह देखना चाहिये कि चंडता, निष्ठुरता, क्रोध, मान और ईर्ष्या यह सब पापके कारण हैं (और उसे अपने मनमें सोचना चाहिये कि) "इन सब बातोंके सबबसे मेरी निन्दा न हो।" इस बातकी ओर विशेष रूपसे ध्यान देना चाहिये कि "इस[२] (मार्ग) से मुझे इस लोकमें सुख मिलेगा और इस (दूसरे मार्ग) से मेरा परलोक बनेगा।"

२—पहिला मार्ग वह है जो मनुष्यको इन्द्रियोंके वशमें डालकर पापकी ओर प्रवृत्त करता है और दूसरा मार्ग वह है जिसके द्वारा मनुष्य आत्म-परीक्षाकी सहायतासे अपनी इन्द्रियोंको वशमें करता हुआ धर्मकी ओर प्रवृत्त होता है।

चतुर्थ स्तंभ-लेख

मूल

टो० (१) देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आहा [:–] सड्वीसतिवस (२) अभिसितेन
मे० — — — — — — —
इ० — — — — — — —
अ० देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आह [:–] सड्वीसतिवसाभिसितेन
न० देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आह [:–] सड्वीसतिवसाभिसितेन
रा० देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आह [:–] सड्वीसति——

टो० मे इयं धंमलिपि लिखापिता [।] लजूका मे (३) बहूसु
मे० — — — — —
इ० — — — — —
अ० मे इयं धंमलिपि लिखापित [।] लजूका मे बहूसु
न० मे इयं धंमलिपि लिखापित [।] लजूका मे (१८) बहूसु
रा० — — — — —

टो०	पानसतसहसेसु	जनसि	आयता	तेसं ये	अभिहाले वा	(४) दंडे वा
मे०	—	—	—	—	—	—
इ०	—	—	—	—	—	—
अ०	पानसतसहसेसु (१५)	जनसि	आयत	तेसं ये	अभिहाले व	दंडे व
न०	पानसतसहसेसु	जनसि	आयत	तेसं ये	अभिहाले व	दंडे व
रा०	—	(१३) जनसि	आयत	तेसं ये	अभिहले व	दंडे व

टो०	अतपतिये मे कटे	किंति [?]	लजूका	अस्वथ	अभीता (५)	कंमानि
मे०	—	—	—	—	—	—
इ०	—	—	—	—	—	—
अ०	अतपतिये मे कटे	किंति [?]	लजूक	अस्वथ	अभीत	कंमानि
न०	अतपातिये मे कटे	किंति [?]	लजूक	अस्वथ (१८)	अभीत	कंमानि
रा०	अतपाति—	—	—	—	—	—

टो०	पवतयेवू	जनस	जानपदसा	हितसुखं	उपदहेवू
मे०	—	—	—	—	—
इ०	—	—	—	—	—

अ० पवतयेवू ति जनस जानपदस (१६) हितसुखं उपदहेवु
न० पवतयेवू ति जनस जानपदस हितसुखं उपदहेवू
रा० — — — (१४) हितसुखं उपदहेवु

टो० अनुगहिनेवु चा [।] सुखीयन दुखीयनं जानिसंति धंम—
मे० — — — — —
इ० — — — — —
अ० अनुगहिनेवु च [।] सुखीयन दुखीयनं जानिसंति धंम—
न० अनुगहिनेवु च [।] सुखीयन दुखीयनं (२०) जानिसंति धंम—
रा० अनुगहिनेवु चं [।] सुखीयन दु— — —

टो० युतेन च (७) वियोवदिसंति जनं जानपदं किंति [१]
मे० — — — —
इ० — — — —
अ० युतेन च वियोवदिसंते जनं जानपदं किंति [१]

न० युतेन चं वियोवदिसंति जनं जानपदं किति [:]
रा० — — — —

टो० हिदतं च पालतं च (८) आलाधयेवू ति [ ] लजूका पि लघंति
मे० — — — —
इ० — — — --
अ० हिदतं च (१७)पालतं च आलाधयेवु [।] लजूकां पि लघंति
न० हिदतं च पालतं च आलाधयेवू ति [।] लजूका पि लघंति
रा० — — (१५) आलाधयेवू ति [।] लजूका पि लघंति

टो० पटिचलितवे मं (;) पुलिसानि पि मे (९) छंदंनानि पटिच-
मे० — — — — —
इ० — — — — —
अ० पटिचलितवे मं (;) पुलिसानिं पि मे छंदंनानि पटिच-
न० पटिचलितवे मं (;) पुलिसानि पि मे छंदंनानि पटिच-
रा० पटिचलितवे मं — — —

टो०	लिसंति (;)	ते पि च कानि	वियोवादिसंति	येन मं		लजूका
मे०	—	—	—	—		लजूका
इ०	—	—	—	—		—
अ०	लिसंति (;)	ते पि च कानि	वियोवादिसंति	येन मं	(१८)	लजूक
न०	लिसंति (;)	ते पि च कानि	वियोवादिसंति	येन मं		लजूक
रा०	—	—	—	—		—

टो०	(१०)चघंति	आलाधयितवे [।]		अथा हि	पजं	वियताये	घातिये
मे०	चघंति	आलाधयितवे [।]	(३)	— —	—	—	—
इ०	—	—		—	—	—	—
अ०	चघंति	आलाधयितवे [।]		अथा हि	पजं	वियताये	घातिये
न०	चघंति	आलाधयितवे [।]	(२२)	अथा हि	पजं	वियताये	घातिये
रा०	चघंति	आलाधयितवे [।]		अथा हि	पजं	वियताये	घातिये

टो० निसिजितु (११) अस्वथे होति [:-] वियत घाति चघाति मे पजं

मे० ... तु अस्वठे होति [:-] (४) विय... ... ...
इ० — — — — — — —
अ० निसिजितु अस्वथे होति [:-] वियत धाति चघति मे पजं
न० निसिजितु अस्वथे होति [:-] वियत धाति चघति मे पजं
रा० नि — — — — — — —

टो० सुखं पलिहटवे [,] (१२) हेवं ममा लजूका कटा जानपदस
मे० ... लिहटवे [,] हेवं ममा (५) लजूका ... .
इ० — — — —
अ० सुखं पलिहटवे ति [,] (१९) हेवं मम लजूक कट जानपदस
न० सुखं पलिहटवे ति [,] (२३) हेवं मम लजूक कट जानपदस
रा० — — — (१७) जानपदस

टो० हितसुखाये [।] येन एते अभीता (१३) अस्वथ संतं अविमना-
मे० ....ये [।] येन एते अभीता (६) अस्वथ सं— —
इ० — — — —

अ० हितसुखाये [।] येन एते अभीत अस्वथा संतं अविमन-
न० हितसुखाये [।] येन एते अभीत अस्वथा संतं अविमन-
रा० हितसुखाये [।] येन एते अभीत अस्वथा — —

टो० कंमानि पवतयेवू ति [।] एतेन मे लजूकानं (१४) अभीहाले
मे० — पवतयेवू ति [।] एतेन मे(०)- जूकानं —
इ० — — —
अ० कंमानि पवतयेवू ति [।] एतेन मे लजूकानं अभिहाले
न० कंमानि पवतयेवू ति [।] (२४) एतेन मे लजूकानं अभिहाले
रा० — — —

टो० व दंडे वा अतपतिये कटे [।] इछितविये हि एसा किंति [?]
मे० — — अतपतिये कटे [।] (८) इछितवि — —
इ० — — — — —
अ० व (२०) दंडे व अतपतिये कटे [।] इछितविये हि एस किंति [?]

नं० वं दंडे वं अतंपतियें कटे [।] इछितविये हि एस किंति [?]
रा० — — — — [ ](१८) इछितविये हि एस किंति [?]

टो० वियोहालसमता च सिय दंडसमता चा [।] अव इते पि च मे
मे० --हालसमता च सिया(९) दंडसम ... ... मे
इ० --हालसमता चा सिया दंडसमता च [।] अव इते पि च मे
अ० वियोहालसमता च सिय दंडसमता च [।] आवा इते पि च मे
न० वियोहालसमता च सिय दंडसमता च [।] आवा इते पि च मे
रा० वियोहालसमता च सिय — —

टो० आवुति (-१६) बंधनबधानं मुनिसानं तीलितदंडानं
मे० आवुति बंधनबधानं (१०) मुनिसानं —
इ० आवुति बंधनबधानं मुनिसानं तीलितदंडानं
अ० आवुति बंधनबधानं (२१) मुनिसानं तीलितदंडानं
न० आवुति बंधनबधानं मुनिसानं तीलितदंडानं
रा० — — — —

टो० पतवधानं तिंनि दिवसानि मे (१७) योते दिंने [।] नातिका व
मे० -वधानं तिंनि दिवसानि मे (११) योते दिंने [।] —
इ० पतवधानं तिंनि दिवसानि योते दिंने [।] (१८) ... व
अ० पतवधानं तिंनि दिवसानि मे योते दिंने [।] नातिका व
न० पतवधानं तिंनि दिवसानि मे योते दिंने [।] नातिका व
रा० — (१६) तिंनि दिवसानि मे योते दिंने [।] नातिका व

टो० कानि निझपयिसंति जिविताये तानं (१८) नासंतं वा निझप-
मे० — — पयिसंति जीविताये तानं (१२) नासंतं वा नि —
इ० कानि निझपयिसंति जीविताये तानं नासंतं वा निझप-
अ० कानि निझपयिसंति जीविताये तानं नासंतं व (२२) निझप-
न० कानि (२६) निझपयिसंति जीवितायें तानं नासंतं व निझप-
रा० कानि निझ — — — — —

टो० यिता दानं दाहंति पालातिकं उपवासं व कछंति [।]
मे० — — ति पालातिकं (१३) उपवासं वा क— [।]

इ०	यिता	दानं दाअंति	पालातिकं	उपवासं	वा	कंछति	[।]
श्र०	यितवे	दानं दाहंति	पालातिकं	उपवासं	व	कछंति	[]
न०	यितवे	दानं दाइंति	पालातिकं	उपवासं	व	कछंति	[।]
रा०	—	—	—	—		—	

टो०	(१८) इछा	हि मे	हेवं	निलुधसि पि	कालसि	पालतं
मे०	—		हेवं	निलुधसि पि	कालसि (१४)	पालतं
इ०	...	मे	हेवं	निलुधसि पि	कालसि	पालतं
श्र०	इछा	हि मे	हेवं	निलुधसि पि	कालसि	पालतं
न०	इछा	हि ये	हेवं (२७)	निलुधसि पि	कालसि	पालतं
रा०	इछा	हि मे	हेवं	निलुधसि पि	कालसि	पालतं

टो०	आलाधयेवू ति	जनस	च (१०)	वढति	विविधे	धंमचलने
मे०	अ.लाधय —	—		वढति	विविधे	धंमचलने
इ०	आलाधयेवु	जनस	च	वढति	विविधे	धंमचलने

अ० आलाधयेवू ति (२३) जनस च वढति विविधे धंमचलने
न० आलाधयेवू ति जनस च वढति विविधे धंमचलने
रा० — — — — —

टो० संयमे दानसाविभागे ति [।]
मे० संयमे दान ... ... [।]
इ० सयमे दानसाविभागे [।]
अ० सयमे दानसंविभागे ति [।]
न० सयमे दानसाविभागे ति [।]
रा० — ——

संस्कृत-अनुवाद ।

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—षड्विंशतिवर्षाभिषिक्तेन मया इयं धर्मलिपिः लेखिता । रज्जुकाः मे बहुषु प्राणशतसहस्रेषु जनेषु आयताः । तेषां यः अभिहारः वा दण्डः वा आत्मप्रत्ययः मया कृतः किमिति रज्जुकाः स्वस्थाः अभीताः कर्माणि प्रवर्तयेयुः जनस्य जानपदस्य हितसुखं उपदध्युः (अनुदध्युः) अनुगृह्णीयुः च । सुखं दुःखं च ज्ञास्यन्ति धर्मयुतेन च व्यपदेक्ष्यन्ति जनं जानपदं; किमिति इहत्यं पारत्र्यं च आराधयेयुः इति । रज्जुकाः अपि चेष्टन्ते परिचरितुं मां; पुरुषाः अपि मे छन्दानि परिचरिष्यन्ति; ते अपि च कान् व्यपदेक्ष्यन्ति येन मां रज्जुकाः चेष्टन्ते आराधयितुम् । यथा हि प्रजां विदितायै धात्र्यै निसृज्य स्वस्थः भवति "विदिता धात्री चेष्टते मे प्रजायै सुखं परिदातुम् इति" एवं मम रज्जुकाः कृताः जानपदस्य हितसुखाय । येन एते अभीताः स्वस्थाः सन्तः अविमनसः कर्माणि प्रवर्तयेयुः इति, एतेन मया रज्जुकानां अभिहारः वा दण्डः वा आत्मप्रत्ययः कृतः । एष्टव्यः हि

एषः, किमिति, व्यवहारसमता च स्यात् दण्डसमता च । अतः इयं अपि च मे आज्ञप्तिः बन्धनबद्धानां (बन्धनवधप्राप्तानां) मनुष्याणां निर्णीतदण्डानां प्रति-विधानं त्रीणि दिवसानि मया यावत् दत्तम् । ज्ञातिकाः वा तान् निध्यापयिष्यन्ति जीविताय तेषां नाशान्तं वा निध्यायन्तः दानं ददति पारत्रिकं उपवासं वा करिष्यन्ति । इच्छा हि मे एवं निरुद्धे अपि काले पारत्र्यं आराधयेयुः इति जनस्य च वर्धेत विविधं धर्माचरणं संयमः दानस्य विभागः इति ।

हिन्दी-अनुवाद

"रज्जुक"के अधिकार और कर्त्तव्य

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं।—राज्याभिषेकके २६ वर्ष बाद मैंने इस लेखको लिखवाया। मेरे रज्जुक[1] नामके कर्मचारी लाखों मनुष्योंके ऊपर नियुक्त हैं। पुरस्कार तथा दण्ड देनेका अधिकार मैंने उनके अधीन कर दिया है जिसमें कि वे निश्चिन्त और निर्भय होकर अपना कर्त्तव्य करें, लोगोंके हित और सुखका ख्याल रक्खें और लोगोंपर अनुग्रह करें। वे सुख और दुःखका कारण जाननेका प्रयत्न करेंगे और "धर्मयुक्त[2]" नामक छोटे कर्मचारियोंके द्वारा लोगोंको ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे वे (लोग) ऐहिक और पारलौकिक

टिप्पणियां

१—रज्जुक-तृतीय शिलालेखकी दूसरी टिप्पणी देखिये।

२—धर्मयुक्त-धर्मयुक्त नामक कर्मचारी रज्जुक तथा धर्ममहामात्रोंके अधीन रह कर प्रजाके ऐहिक और पारलौकिक सुखोंको प्राप्त करनेका प्रयत्न करते थे।

दोनों प्रकारके सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। रज्जुक लोग मेरा आज्ञा पालन करनेका भरपूर प्रयत्न करते हैं और मेरे "पुरुष" (नामक राजकर्मचारी) भी मेरी इच्छा और आज्ञाके अनुसार काम करेंगे और वे भी कभी कभी ऐसा उपदेश देंगे कि जिससे रज्जुक लोग मुझे प्रसन्न करनेका प्रयत्न करें। जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने लड़केको निपुण धाईके हाथमें सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है (और सोचता है कि) "यह धाई मेरे लड़केको सुख पहुँचानेकी भरपूर चेष्टा करेगी" उसी प्रकार लोगोंको हित और सुख पहुँचानेके लिये मैंने रज्जुक नामके कर्मचारी नियुक्त किये हैं। वे निर्भय, निश्चिन्त और शान्तभावसे काम करें इसीलिये मैंने पुरस्कार अथवा दण्ड देनेका अधिकार उनके अधीन कर दिया है। व्यवहार[3] (मुकद्दमा) करने तथा दण्ड (सज़ा) देनेमें पक्षपात न होना चाहिये। इसीलिये आजसे मेरी यह आज्ञा है कि "कारागारमें पड़े हुए जिन मनुष्योंको मृत्युका[4] दण्ड निश्चित हो चुका है उन्हें तीन दिनकी

३—"व्यवहार (मुकद्दमा) करनेमें और दण्ड (सज़ा) देनेमें पक्षपात न होना चाहिये"—"एषृव्यो हि एषः किमिति व्यवहारसमता च स्याद्दण्डसमता च"। अपराधियोंका मुकद्दमा करने और उन्हें सज़ा देनेमें किसी प्रकारका पक्षपात न हो इस विषयकी ओर महाराज अशोकने रज्जुकोंका ध्यान विशेषरूपसे आकर्षित किया है।

४—इस बातका ध्यान रहे कि अशोकके शिला

मुहलत दी जाय"। (इस बीचमें अर्थात् इन तीन दिनोंके अन्दर) जिन लोगोंको वधका दण्ड मिला है उनके जाति कुटुम्बवाले उनके जीवनके लिये ध्यान करेंगे और अन्ततक ध्यान करते हुए परलोकके लिये दान देंगे तथा उपवास करेंगे। क्योंकि मेरी इच्छा है कि कारागारमें रहनेके समय भी दण्ड पाये हुए लोग परलोकका चिंतन करें और लोगोंमें अनेक प्रकारका धर्माचरण, संयम और दान करनेकी इच्छा बढ़े।

लेखमें मृत्युका दण्ड पाये हुए अपराधियोंको क्षमाप्रदान करनेका उल्लेख बिलकुल नहीं है। अशोक केवल ३ दिनकी मुहलत उन्हें देते थे जिसमें कि वे परलोकका चिन्तन करें और उनके मित्र तथा कुटुम्बवालोंको उपवास तथा दान आदिके द्वारा धर्माचरण करनेका अवसर मिले।

पंचम स्तम्भ-लेख

मूल

टो॰ (१) देवानं पिये पियदसि लाज हेवं अहा [:–] सड्वीसतिवस (२) अभिसितेन
मे॰ (१) — — — — — — — —
इ॰ (२०) · · · पिये पियदसि लाजा हेवं आहा [:–] सड्वीसतिवसा भिसितेन
अ॰ (१) देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आहा [:–] सड्वीसतिवसा भिसितस
न॰ (१) देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आह [:–] सड्वीसतिवसाभिसितस

टो॰ मे इमानि जातानि अवधियानि कटानि से यथा (३) सुके सालिका
मे॰ — — — — — — — — —
इ॰ मे इमानि जातानि अवधियानि कटानि से यथा सुके सालिका
अ॰ मे इमानि पि जातानि अवधियानि (२) कटानि से यथा सुके सालिक
न॰ मे इमानि पि (२) जातानि अवधियानि कटानि से यथा सुके सालिक

टो०		अलुने	चकवाके	हंसे	नंदीमुखे	गेलाटे (४)	जतूका
मे०		——	——	—	——	——	——
इ०		अलुने	चकवाके	··(२१)	··मुखे	गेलाटे	जतूके
अ०		अलुने	चकवाके	हंसे	नंदीमुखे	गेलाटे	जतूक
न०		अलुने	चकवाके	हंसे (३)	नंदीमुखे	गेलाटे	जतूक

टो०		अंबाकपीलिका	· दडी	अनठिकमछे	वेदवेयके (५)	गंगापुपुटके
मे०		——	—	——	—	——
इ०		अंबाकिपिलिका	दडी	अनथिकमछे	वेदवेयके	गंगापुपुटके
अ०	(३)	अंबाकिपिलिक	दुडि	अनठिकमछे	वेदवेयके	गंगापुपुटके
न०		अंबाकपालिक	दुडि	अनठिकमछे	वेदवेयके (४)	गंगापुपुटके

टो०	संकुजमछे	कफटसयके	पंनससे	सिमले (६)	संडके
मे०	——	——	—	—	—
इ०	संकुजमछे	कफट··के	पंनससे	सिमले	सं··

अ० संकुजमछे कफटसेयके (४) पंनससे सिमले संडके
न० संकुजमछे कफटसेयके पंनससे सिमले संडके

टो० ओकपिंडे पलसते सेतकपोतें गामकपोते (७) सवे चतुपदे
मे० —— — —— —— — —
इ० —— — ——कपोतें गामकपोते सवे चतुपदे
अ० ओकपिंडे पलसते सेतकपोते गामकपोते सवे चतुपदे
न० ओकपिंडे (५)पलसते सेतकपोते गामकपोते सवे चतुपदे

टो० ये पटिभोगं नो एति न च खादियति ——(८) एडका चा
मे० — —— — —— ——
इ० ये पटिभोगं — —— ——
अ० (५) ये पटिभोगं नो एति न च खादियति [।] अजका नानि एडका च
न० ये पटिभोगं नो एति न च खादियति [।] अजका नानि एडका च

टो० सूकली चा गभिनी व पायमीना वा अवधिय पतके

मे० — — — अवधय पतक

इ० — — — — —

अ० सूकली च गभिनी व पायमीना व (६) अवध्य पोतके

न० सूकली च गभिनी व पायमीना व अवध्य पोतके

टो०(९) पि च कानि आसंमासिके [।] वधिकुकुटे नो कटविये [;] तुसे

मे० पि च कानि (२) .... के [।] वधिकुकुटे नो कटविये [;] तुसे

इ० — — — — —

अ० च कानि आसंमासिके [।] वाधकुकुटे नो कटविये [;] तुसे

न० च कानि (७) आसंमासिके [।] वधिकुकुटे नो कटविये [;] तुसे

टो० सजीवे (१०) नो झापेतविये [;] दावे अनठाये वा विहिसाये वा

मे० सजीवे (३) ...तविये [;] दावे अनठाये वा विहिसाये वा

इ० सजीवे — — — — —

अ० सजीवे नो झापयितविये [;] दावे (७) अनठाये व विहिसाये व

० सजीवे नो झापयितविये [;] दावे अनठाये व (८) विहिसाये व

टो० नो झापेतावियं [;] (११) जीवेन जीवे नो पुसितावियं [।] तीसु चातुंमा-
मे० नो (४) झापेतावियं [;] जीवेन जीवे नो पुसितवियं [।] तीसु चातंमा-
इ० नो झा— — —— — —
अ० नो झापथितावियं [;] जीवेन जीवे नो पुसितावियं [।] तीसु चातुंमा-
न० नो झापथितावियं [;] जीवेन जीवे नो पुसितावियं [।] तीसु चातुंमा-

टो० सीसु तिसायं पुंनमासियं (१२) तिंनि दिवसानि चावुदसं
मे० सीसु (५) तिसायं पुंनमासियं तिंनि दि चावुदसं
इ० — — — — — चावुदसं
अ० सीसु तिस्यं (८) पुंनमासियं तिंनि दिवसानि चावुदसं
न० सीसु तिसियं (९) पुंनमासियं तिंनि दिवसानि चावुदसं

टो० पंनडसं पाटिपदाये धुवाये चा (१३) अनुपोसथं
मे० पनडसं (६) पटिपदा. धुवाये च अनुपोसथं
इ० पंचदसं —— —— ——

अ० पनडसं पटिपदं धुवाये च अनुपोसथं
न० पंनडसं पटिपदं धुवाये च अनुपोसथं

टो० मछे अवाधिये नोपि विकेतावियें [।] एतानि येव दिवसानि
मे० मछे अवधिय नोपि(७) विकेतावियें [।] एतानि येव दिवसानि
इ० — ———— ———— ———— तानि—— ——
अ० मछे अवध्ये नोपि (९) विकेतविये [।] एतानि येव दिवसानि
न० मछे अवध्ये(१०) नोपि विकेतावियें [।] एतानि येव दिवसानि

टो० (१४) नागवनसि केवटभोगसि यानि अंनानि पि जीवनिकायानि
मे० नागवनसि केवटभोगसि (८) या॰ अं॰ नि पि जीवनिकायानि
इ० ——— ———— —— —— —— ————
अ० नागवनसि केवटभोगसि यानि अंनानि पि जीवनिकायानि
न० नागवनसि केवटभोगसि यानि अंनानि पि(११) जीवनिकायानि

टो० (१५) नो हंतावियानि [।] अठमीपखाये चावुदसाये पंनडसाये
मे० नो हंतावियानि [।](९) अठमी. . ये चावुदसाये पंनडसाये
इ० — ——— थ——— ——— ———
अ० (१०) नो हंतावियानि [।] अठमिपखाये चावुदसाये पंनडसाये
न० नो हंतावियानि [।] अठमिपखाये चावुदसाये पंनडसाये

टो० तिसाये (१६) पुनावसुने तीसु चातुंमासीसु सुदिवसाये
मे० तिसाये (१०) पुनावसुने तीसु चातुंमासीसु सुदिवसाये
अ० — ——— ——— ———
अ० तिसाये पुनावसुने तीसु चातुंमासीसु (११) सुदिवसाये
न० तिसाये पुनावसुने (१२) तीसु चातुंमासीसु सुदिवसाये

टो० गोने नो नीलखितविये (१७) अजके एडके सूकले एवापि अंने
मे० गोने(११)नो नीलखितविये अजके एड़के सूकले एवापि(१२)अंने

शा० ——— ——— ——— ——— ——— ——— ———

का० गोने नो नीलाखितविये अजके एडके सूकले एवापि अने

न० गोने नो नीलाखितविये अजके एडके सूकले एवापि अने

टो० नीलाखियति ना नीलाखितविये [ ](१८)तिसाये पुनावसुने चातुंमासिये

मे० नीलाखियति नो नीलाखितविये [ ] तिसाये पुनावसुने (१३)चातुंमासिये

शा० ——— ——— ——— ——— ——— ———

का० नीलाखियति नो नीलाखितविये[।](१३)तिसाये पुनावसुने चातुंमासिये

न०(१३)नीलाखियति नो नीलाखितविये[।] तिसाये पुनावसुने चातुंमासिये

टो० चातुंमासिपखाये अश्वसा गोनसा (१६) लखने नो कटाविये [।]

मे० चातुंमासिपखाये अश्वसा गोनसा लखने(१४)नो ..विये [।]

शा० ——— ——— ——— लखने नो कटाविये [।]

अ० चातुंमासिपखाये अस्वस गोनस लखन ने कटविये [।]
न० चातुंमासिपखाये अस्वस गोनस (१४) लखने नो कटविये [।]

टो० याव सडुवीसतिवसअभिसितेन मे एताये(२०) अंतलिकाये
मे० याव सडुवीसातिवअभिसितेन मे एताये(१५) अंतलिकाये
ई० याव स——————— ——— ———
अ०(१३) याव सडुवीसतिवसाभिसितस मे एताये अंतालिकाये
न० याव सडुवीसतिवसाभिसितेन मे एताये अंतलिकाये

टो० पंनवीसति बंधनमोखानि कटानि [।]
मे० पंनवीसति बंधनमोखानि कटानि [।]
ई० ———(२८) ——— ———
न० पंनवीसति वंधनमोखानि कटानि [।]
न० पंनवीसति(१५) बंधनमोखानि कटा/ [।]

संस्कृत—अनुवाद।

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—षड्विंशतिवर्षाभिषिक्तेन मया इमानि जातानि अवध्यानि कृतानि, तानि यथा शुकः, सारिका, अरुणः, चक्रवाकः, हंसः, नान्दीमुखः, गेलाटः, जतुका, अम्बाकपीलिका, दुडिः, अनस्थिकमत्स्यः, दवेवेयकः (जीवंजीवकः), गंगापुपुटकः (गंगाकुक्कुटकः), संकुजमत्स्यः (शकुलमत्स्यः), कमठः, शल्यः, पर्णशशः, स्रमरः, षण्डकः, ओकपिण्डः, पृषतः, श्वेतकपोतः, ग्रामकपोतः सर्वः, चतुष्पदः यः परिभोगं न एति न च खाद्यते। एडका च सूकरी च गर्भिणी वा पयस्विनी वा अवध्या पोतकाः अपि च आषाण्मासिकाः। वधितः कुक्कुटः न कर्तव्यः, तुषाः सजीवाः न दग्धव्याः, दावः

हिन्दी-अनुवाद ।

पशु-पक्षियोंकी हिंसा और वधके बारेमें नियम ।

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं-राज्याभिषेकके २६ वर्ष बाद मैंने इन प्राणियोंका वध करना मना कर दिया है यथा-सुग्गों, मैना, अरुण, चकोर, हंस

टिप्पणियां ।

१—यज्ञके लिये पशु-वध अति प्राचीन काल-से भारतवर्षमें प्रचलित है। कुछ लोगोंका अनुमान है कि अशोकने इस प्रथाको बिलकुल रोक दिया था, पर यह अनुमान ठीक नहीं है। पञ्चम स्तम्भ-लेखके पढ़नेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराज अशोकने पशु-वधको पूरी तरह नहीं बल्कि आंशिक प्रकार-से बन्द किया था। पहिले जो प्राणि-वध अन्धाधुन्ध बिना किसी नियमके होता था उसे अशोकने एक नियमसे नियंत्रित कर दिया था। सालमें कुल मिलाकर सिर्फ ५६ दिन पशु-वध बन्द किया गया था। यह भी एक ध्यान देने योग्य बात है कि आजकल गाय बड़ी पवित्र समझी जाती है पर उसकी रक्षाका कुछ भी उल्लेख इस लेखमें नहीं है।

२—इनमेंसे कुछ पशुओं और पक्षियोंके आधुनिक नामका पता नहीं लगा है।

नान्दीमुख, गेलाट, जतुका (चमगीदड़) अम्बाकपीलिका, दुडि (कछुवी) बे हड्डीकी मछली, वेद-वेयक (जीवंजीवक), गं ापुपुटक, संकुजमत्स्य, कछुआ,साही, पर्णशश, बारहासिंहा, सांड़, ओकपिण्ड, मृग, सफेद कबूतर, गांवके कबूतर और सब तरहके वे सब चौपाये जो न तो किसी प्रकार उपभोगमें आते हैं और न खाये जाते हैं। गाभिन या दूध पिलाती हुई बकरी, भेड़ी और सुअरी तथा इनके वच्चोंको जो ६ महीने तकके हों न मारना चाहिये। मुर्गोंको बधिया न करना चाहिये। जीवित प्राणियोंके साथ भूसीको न जलाना चाहिये। अनर्थ करनेके लिये या प्राणियोंकी हिंसा करनेके लिये वनमें आग न लगानी चाहिये। एक जीवको मारकर दूसरे जीवको न खिलाना चाहिये। प्रति[१] चार चार महीनेकी तीन

१—अति प्राचीन कालसे भारतवर्षमें साल तीन भागोंमें अर्थात् जाड़ा, गर्मी और बरसातमें बँटा हुआ था। फाल्गुन, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ गर्मीके महीने, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन बरसातके महीने तथा कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष और माघ जाड़ेके महीने गिने जाते थे। ब्राह्मण लोग इन्हीं चातुर्मास्योंके प्रारम्भ अथवा अन्तमें याग-यज्ञ आदिका अनुष्ठान करते थे। हिन्दू संन्यासी, बौद्ध भिक्षु, और जैन यति बरसातके चार महीने एक ही स्थानपर रहकर बिताते थे। एक गणनाके अनुसार चातुर्मासी पूर्णिमा चातुर्मास्यके अन्तिम दिनमें और दूसरी गणनाके अनुसार उसके

ऋतुओंकी तीन पूर्णमासीके दिन, 'तैष' मासकी पूर्णमासीके दिन, चतुर्दशी अमावास्या और प्रतिपदाके दिन तथा प्रत्येक उपवासके दिन मछली न मारना चाहिये और न बेंचना

प्रारम्भमें पड़ती है। पतञ्जलिने चातुर्मासीका विग्रह इस प्रकार किया है—"चतुर्षु मासेषु भवा चातुर्मासी पौर्णमासी" अर्थात् "वह पूर्णिमा जो चार महीनेके बाद पड़ती है"। काशिकाकारने पतंजलिका अनुसरण करते हुए लिखा है कि चातुर्मासीसे आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुनकी पूर्णिमाका तात्पर्य है। इस मतके अनुसार हर एक चातुर्मास्यका अन्त पूर्णिमासे होता है।

प्राचीन शिला-लेखोंमें भी इसी प्रकार चार चार मासोंमें वर्षका विभाग पाया जाता है। मथुरामें कनिष्क, हुविष्क, वासिष्क, और वासुदेव नामक कुषान राजाओंके समयके जिन शिलालेखोंमें तारीख दी हुई है उनमें वर्षका विभाग इसी प्रकार मिलता है। मथुराके गुप्त कालके दो लेखोंमें (Epigraphia Indica Vol.II p.210), मथुराके क्षत्रप शोडासके अति प्राचीन लेखमें, आन्ध्रों और आभीरोंके लेखोंमें तथा संस्कृत कदम्बलेखमें (Indian Antiquary Vol. VII, p. 37) भी इसी प्रकार वर्ष-विभाग पाया जाता है। इन शिला-लेखोंमें वर्षका विभाग चार चार महीनेकी तीन ऋतुओंमें किया गया है। यह तीन ऋतुएँ क्रमसे ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्तके नामसे लिखी गयी हैं। पर महीनों तथा दिनोंका नाम इन लेखोंमें कहीं भी नहीं मिलता। हरएक ऋतुके चार महीने

चाहिये । इन सब दिनोंमें हाथियोंके वनमें तथा तालाबोंमें कोई भी दूसरे प्रकारके प्राणी न मारे जाने चाहियें । प्रत्येक पक्षकी अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या वा पूर्णिमा तथा पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्रके दिन, और प्रत्येक चार चार महीनेके त्योहारोंके दिन बैलको न दागना चाहिये तथा बकरा, भेड़ा, सुअर और इसी तरहके दूसरे प्राणियोंको, जो दागे जाते हैं, न दागना चाहिये । पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्रके दिन, प्रत्येक चातुर्मास्यकी पूर्णिमाके दिन और प्रत्येक चातुर्मास्यके शुक्लपक्षमें घोड़े और बैलको न दागना चाहिये । राज्याभिषेकके बाद २६ वर्षके अन्दर मैंने २५ वार कारागारसे लोगोंको मुक्त किया है ।

क्रमसे "प्रथमे मासे" "द्वितीये मासे" "तृतीये मासे" और "चतुर्थे मासे" के नामसे तथा हर एक मासके ३० दिन क्रमसे "प्रथमे दिवसे", "द्वितीये दिवसे" इत्यादिके नामसे उल्लेख किये गये हैं । इस प्रकार समय विभागका क्रम ईसवी सन्के पूर्व प्रथम शताब्दीसे लगाकर ईसवी सन्की दूसरी शताब्दी तक प्रचलित था । मथुरामें यह क्रम ईसवी सन्की पंचम शताब्दी तक भी जारी था । दक्षिणमें भी इसी समय तक यह क्रम प्रचलित था । (इस विषयपर Buhler साहबने विस्तारपूर्वक Epigraphia Indica Vol. II, p. 261—265 में लिखा है) ।

४—"हाथियोंके वनमें" "नागवनसि" अर्थात् वह वन जहां हाथी सुरक्षित रक्खे जाते थे ।

५—"तालाबोंमें" "केवटभोगसि" (सं० कैवर्त्तभोगे) अर्थात् सरोवर या नदीका वह भाग जो केवटों या मल्लाहोंकी जीविकाके लिये सुरक्षित रहता था ।

षष्ठ स्तम्भ-लेख

मूल

टो० (१) देवानं पिये पियदसि लाज हेवं अहा [:—] दुवाडस (२) वस अभिसितेन
इ० .... पियदसी ला——— ———————
अ० देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आह [:—] दुवाडसवसाभिसितेन
न० देवानं पिये पियदसि लाज हेवं आह [:—] दुवाडसवसाभिसितेन

टो० मे धंमलिपि लिखापिता लोकसा (३) हितसुखाये से तं अपहटा
इ० — ——— ——— ——— ——— ——— ———
अ० मे धंमलिपि लिखापित लोकस (१५) हितसुखाये से तं अपहट
न० मे धंमलिपि लिखापित लोकस (१७) हितसुखाये से तं अपहट
टो० तं तं धंमवढि पापोवा [।] (४) हेवं लोकसा हितसुखे ति

इ० ——————— पा———— हेवं ——(२८) हितसुखे ति
अ० तं तं धंमवढि पापोव [।] हेवं लोकस हितसुखे ति
न० तं तं धंमवढि पापोव [।] हेवं लोकस(१८) हितसुखे ति

टो० पटिवेखामि अथ इयं (५) नातिसु हेवं पातियासंनेसु
इ० पटिवेखामि अथ .. . तिसु .. .... संनेसु
अ० पटिवेखामि (१६) अथा इयं नातिसु हेवं पत्यासंनेसु
न० पटिवेखामि अथा इयं नातिसु हेवं पत्यासंनेसु

टो० हेवं अपकठेसु(६) किमं कानि सुखं अवहामी ति तथ च
इ० हेवं अपक .. किमं ——— ——— ———
अ० हेवं अपकठेसु किंमं कानि सुखं आवहामी ति तथा च
न० हेवं अपकठेसु(१६) किंमं कानि सुखं आवहामी ति तथा च

टो० विदहामि [।] हेमेवा (७) सवनिकायेसु पटिवेखामि [।]
इ० . दहामि [।] हेवंमेव सव .. येसु पटिवेखामि [।]

अ॰ विदहामि [।] हेमेव सवनिकायेसु पटिवेखामि [।]
नं॰ विदहामि [।] हेमेव सवनिकायेसु पटिवेखामि [।]

टो॰ सवपासंडा पि मे पूजिता(८) विविधाय पूजाया [।] ए चु इयं अतुना
इ॰(३०) सवपासंडा पि मे पूजिता विविधाय पूजाया [।] ए चु इयं अतना
अ॰ सवपासंडा पि मे पूजित विविधाय पूजाय [।] ए चु इयं अतन
न॰(२० सवपासंडा पि मे पूजित विविधाय पूजाय [।] ए चु इयं अतन

टो॰ पचूपगमने(९) से मे मोख्यमते [।] सडुवीसतिवस —
इ॰ पचुपगमने से मे मुख्यमुते [।] ——————
अ॰ पचूपगमने (१८) से मे मुख्यमुते [।] सडुवीसतिवसा—
न॰ पचूपगमने (२१) से मे मोख्यमुते [।] सडुवीसतिवसा—

टो॰ अभिसितेन मे इयं धंमलिपि लिखापिता [।]
इ॰ —————— ——लिपि लिखापिता ति [।]
अ॰ भिसितेन मे इयं धंमलिपि लिखापित [।]
न॰ भिसितेन मे इयं धंमलिपि लिखापित [।]

संस्कृत-अनुवाद

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह— द्वादशवर्षाभिषिक्तेन मया धर्म-लिपिः लेखिता लोकस्य हितसुखाय। तत् तत् अपहृत्य सा सा धर्मवृद्धिः प्राप्तव्या। एवं लोकस्य हितसुखे इति प्रत्यवेक्षे यथा इदं ज्ञातिषु एवं प्रत्यासन्नेषु एवं अपकृष्टेषु किं केषां सुखं आवहामि इति तथा च विदधामि। एवं एव सर्वं निकायेषु प्रत्यवेक्षे। सर्वपाषण्डाः अपि मे पूजिताः विविधया पूजया। यत तु इदं आत्मना प्रत्युगमनं तत् मे मुख्यमतम्। षड्विंशतिवर्षाभिषिक्तेन मया इयं धर्मलिपिः लेखिता।

हिन्दी-अनुवाद

अपने धर्मके प्रति अनुरागकी आवश्यकता

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं— राज्याभिषेकके १२ वर्ष बाद मैंने धर्मलेख लोगोंके हित और सुखके लिये लिखवाये जिसमें कि वे (पापाचरणके मार्गको) त्याग कर किसी न किसी प्रकारसे धर्मकी वृद्धि करें। इसी प्रकार मैं लोगोंके हित और सुखको लक्ष्यमें रख कर यह देखता हूं कि जातिके लोग, दूरके लोग तथा पासके लोग किस प्रकारसे सुखी रह सकते हैं। इसी (उद्देश्य) के अनुसार मैं कार्य भी करता हूं। इसी प्रकार सब समाजों[1] के (हित और सुखको) मैं ध्यानमें रखता हूं। मैंने

टिप्पणियां।

१—"सब समाज" = "सब निकाय" (सं० सर्वनिकाय):—निकाय शब्द भिन्न भिन्न अर्थोंमें व्यवहार किया गया है। प्रधानतः निकाय शब्दका अर्थ श्रेणी अथवा विभाग है। उदाहरणके तौर-पर बौद्धोंके सूत्रपिटक नामक पाँच ग्रन्थ भिन्न भिन्न निकायके नामसे प्रचलित हैं। साम्राज्यके राज-कार्यका निर्वाह करनेके लिये भिन्न भिन्न कर्मचारियोंके समूहको भी निकायके

सब[२] पाषण्डों (सम्प्रदायों) का भी विविध प्रकारसे सत्कार किया है। तथापि अपने धर्मके प्रति अनुराग मेरे[३] मतमें मुख्य वस्तु है। राज्याभिषेकके २६ वर्ष बाद मैंने यह धर्म-लेख लिखवाया।

नामसे बोलते थे। यहांपर निकाय-का अर्थ समाज अथवा संप्रदाय है। "अभिधान प्रदीपिका" नामक पाली कोषमें निकायकी परिभाषा इस प्रकार की गयी है—"सजातीनां तु कुलम्, निकायो तु सधर्मिणाम्" अर्थात् समान जातिवालोंके समूहको "कुल" और समान धर्म वालोंके समूहको "निकाय" कहते हैं।

२—इस सम्बन्धमें द्वादश-शिलालेखका प्रारंभिक वाक्य देखिये।

३—द्वादश-शिलालेखमें अशोकने इस विषयपर विस्तारके साथ लिखा है।

सप्तम-स्तम्भ-लेख

(दिल्ली-टोपरा)

मूल

(पूर्वार्द्ध)

(११) देवानं पियं पियदसि लाजा हेवं आहा [:] ये अतिकंतं
(१२) अंतलं लाजाने हुसु [,] हेवं इछिसु [:] कथं जने
(१३) धंमवढिया वढेया [।] नो चु जने अनुलुपाया धंमवढिया
(१४) वढिथा [।] एतं देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं आहा [।] एस मे

(१५) हुथा [,] अतिकंतं च अंतलं हेवं इछिसु लाजाने कथं जनं

(१६) अनुलुपाया धंमवढिया वढेयाति [;] नो च जने अनुलुपाय।

(१७) धंमवाढिया वढिथा [।] से किन सु जने अनुपटिपजेया [;]

(१८) किन सु जने अनुलुपाया धंमवाढिया वढेयाति [;] किन सुकानि

(१९) अभ्युंनामयेहं धंमवढिया ति [।] एतं देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं

(२०) आहा [:] एस मे हुथा [,] धंमसावनानि सावापयामि धंमानुसथिनि

(२१) अनुसासामि [ ] एतं जने सुतु अनुपटीपजीसति अभ्युंनमिसाति

(उत्तरार्द्ध)

(१) धंमवाढिया च वाढं वढिसति [।] एताये मे अठाये धंमसावनानि सावापितानि धंमानुसथिनि विविधानि आनपितानि यथा मे पुलिसापि बहुने जनासि आयता एते पलियोवदिसंति पि पविथलिसंति पि [।] लजूकापि बहुकेसु पानसतसहसेसु आयता ते पि मे आनपिता हवं च हेवं च पलियोवदाथ

( ) जनं धंमयुतं [।] देवानं पिये पियदसि हेवं आहा [:] एतम् एव मे अनुवेखमाने धंमथभानि कटानि [,] धंममहामाता कटा [,] धंमसावने कटे [।] देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं आहा [:] मगेसु पि मे निगोहानि लोपापितानि छायोपगानि होसंति पसुमुनिसानं [;] अंबावडिक्या लोपापिता [;] अढकोसिक्यानि पि मे उदुपानानि

(३) खानापापितानि [;] निंसिधिया च कालापिता [;] आपानानि मे बहुकानि तत तत कालापितानि पटिभोगाये पसुमुनिसानं [।] लहुके चु एस पटीभोगे नाम [।] विविधाया हि सुखायनाया पुलिमेहि पि लाजीहि ममया च सुखयिते लोके [।] इमं चु धंमानुपटीपती अनुपटीपजंतु ति एतदथा मे

(४) एस कटे [।] देवानं पिये पियदसि हेवं आहा [:] धंममहामातापि मे ते बहुविधेसु अठेसु आनुगहिकेसु वियापटा से पवजीतनं चेव गिहिथानं च [;] सवपासंडेसु पि च वियापटा से [:] संघठसि पि मे कटे इमे वियापटा होहंतिति [;] हेमेव बाभनेसु आजीविकेसु पि मे कटे

(५) इमे वियापटा होहंतिति [;] निगंठेसु पि मे कटे इमे वियापटा होहंति [;]

नानापासंडेसु पिमे कटे इमे वियापटा होहंतिति [।] पटिविसिठं पटीविसिठं तेसु तेसु ते ते महामाता [ ] धंममहामाता चु मे एतेसु चेव वियापटा सवेसु चं अंनेसु पासंडेसु [।] देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं आहा [;]

(६) एते च अंने च बहुका मुखा दानविसगसि वियापट से मम चेव देविनं च [;] सवासि च मे ओलोधनासि ते बहुविधेनं आकालेन तानि तानि तुठायतनानि पटीपादयंति हिद चेव दिसासु च [।] दालकानं पि च मे कटे अंनानं च देविकुमालानं इमे दानविसगेसु वियापटा होहंति ति

(७) धंमापदानठाये धंमानुपटिपातिये [।] एस हि धंमापदाने धंमपटीपति च या इयं दया दाने सचे सोचवे मदवे साधवे च लोकस हेवं वढिसातिति [।] देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं आहा [:] यानि हि कानि चि ममिया साधवानि कटानि तं लोके अनुपतीपंने तं च अनुविधियंति [;] तेन वढिता च

(८) वढिसंति च मातापितिसु सुसुसाया गुलुसु सुसुसाया वयोमहालकानं अनुपटीपतिया बाभनसमनेसु कपनवलाकेसु आव दासभटकेसु संपटीपतिया [।]

देवानं पिये पियदासि लाजा हेवं आहा [:] मुनिसानं चु या इयं धंमवढि वढि दुवेहि येव आकालेहि धंमनियमेन च निझतिया च [।]

(९) तत च लहु से धंमनियमे [,] निझतिया व भुये [।] धंमनियमे च खो एस ये मे इयं कटे इमानि चे इमानि जातानि अवधियानि [।] अंनानि पि चु बहुकानि धंमनियमानि यानि मे कटानि [।] निझतिया व चु भुये मुनिसानं धंमवढि वढिता अविहिंसाये भुतानं

(१०) अंनालंभाये पानानं [।] से एतये अठाये इयं कटे पुतापपोतिके चंदमसुलियिके होतु ति तथा च अनुपटीपजंतु ति [।] हेवं हि अनुपटीपजंतं हिदतपालते आलधे होति [।] सतविसतिवसाभिसितेन मे इयं धंमलिपि लिखापापिता ति [।] एतं देवानं पिये आहा [:] इयं

(११) धंमलिपि अत अथि सिलाथंभानि वा सिलाफलकानि वा तत कटविया एन एस चिलाठितिके सिया ( )

संस्कृत-अनुवाद

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—ये अतिक्रान्तं अन्तरं राजानः अभूवन् ते एवं ऐषिषन् कथं जने धर्मवृद्धिः वर्धनीया। न तु जने अनुरूपा धर्मवृद्धिः वर्धिता। अतः देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—एतत् मे भूतं अतिक्रान्तं च अन्तरं एवं ऐषिषन् राजानः कथं जने अनुरूपा धर्मवृद्धिः वर्धनीया इति न च जने अनुरूपा धर्मवृद्धिः वर्धिता तत् केन खलु जनः अनुप्रतिपद्येत, केन खलु जने अनुरूपा धर्मवृद्धिः वर्धनीया इति; केन खलु केषां अभ्युन्नमये अहं धर्मवृद्धिः इति। अतः देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—एतत् मे भूत धर्मश्रवणानि श्रावयामि धर्मानुशिष्टीः अनुशास्मि। एतत् जनः श्रुत्वा अनुप्रतिपत्स्यते अभ्युन्नंस्यति धर्मवृद्धिः च बाढं वर्धिष्यते। एतस्मै अर्थाय धर्म श्रावणानि श्रावितानि धर्मानुशिष्टयः विविधाः आज्ञापिताः यथा मे पुरुषाः अपि बहुषु जनेषु आयत्ताः एतानि परितःवदिष्यन्ति अपि प्रविस्तारयिष्यंति

देवानं पिये पियदसि लाजा हेवं आहा [:] मुनिसानं चु या इयं धंमवढि वढि दुवेहि येव आकालेहि धंमनियमेन च निझतिया च [।]

(९) तत च लहु से धंमनियमे [,] निझतिया व भुये [।] धंमनियमे च खो एस ये मे इयं कटे इमानि चे इमानि जातानि अवधियानि [।] अंनानि पि चु बहुकानि धंमनियमानि यानि मे कटानि [।] निझतिया व चु भुये मुनिसानं धंमवढि वढिता अविहिंसाये भुतानं

(१०) अंनालंभाये पानानं [।] से एतये अठाये इयं कटे पुतापपोतिके चंदम-सुलियिके होतु ति तथा च अनुपटीपजंतु ति [।] हेवं हि अनुपटीपजंतं हिदतपालते आलधे होति [।] सतविसतिवसाभिसितेन मे इयं धंमलिबि लिखापापिता ति [।] एतं देवानं पिये आहा [:] इयं

(११) धंमलिबि अत अथि सिलाथंभानि वा सिलाफलकानि वा तत कटविया एन एस चिलठितिके सिया ()

संस्कृत-अनुवाद

देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—ये अतिक्रान्तं अन्तरं राजानः अभूवन् ते एवं ऐषिषन् कथं जने धर्मवृद्धिः वर्धनीया। न तु जने अनुरूपा धर्मवृद्धिः वर्धिता। अतः देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—एतत् मे भूतं अतिक्रान्तं च अन्तरं एवं ऐषिषन् राजानः कथं जने अनुरूपा धर्मवृद्धिः वर्धनीया इति न च जने अनुरूपा धर्मवृद्धिः वर्धिता तत् केन खलु जनः अनुप्रतिपद्येत, केन खलु जने अनुरूपा धर्मवृद्धिः वर्धनीया इति; केन खलु केषां अभ्युन्नमये अहं धर्मवृद्धिः इति। अतः देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—एतत् मे भूत धर्मश्रवणानि श्रावयामि धर्मानुशिष्टीः अनुशास्मि। एतत् जनः श्रुत्वा अनुप्रतिपत्स्यते अभ्युन्नंस्यति धर्मवृद्धिः च बाढं वर्धिष्यते। एतस्मै अर्थाय धर्म श्रावणानि श्रावितानि धर्मानुशिष्टयः विविधाः आज्ञापिताः यथा मे पुरुषाः अपि लहुषु जनेषु आयत्ताः एतानि परितःवदिष्यन्ति अपि प्रविस्तारयिष्यंति

अपि। रज्जुका अपि बहुषु प्राणशतसहस्रेषु आयत्ताः ते अपि मया आज्ञप्ताः एवं च एवं च परिवदत जनं धर्मयुतम्। देवानां प्रियः प्रियदर्शी एवं आह—एतत् एव मया अनुवीक्षमाणेन धर्मस्तंभाः कृताः, धर्ममहामात्याः कृताः, धर्मश्रावणं कृतम्। देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—मार्गेषु अपि मया न्यग्रोधाः रोपिताः छायोपगाः भविष्यन्ति पशुमनुष्याणां, आम्रवाटिकाः रोपिताः, आर्धक्रोशिकीयानि मया उदुपानानि खानितानि, निषद्याः च कारिताः, आपानानि मया बहुकानि तत्र तत्र कारितानि प्रतिभोगाय पशुमनुष्याणाम्। लघुः तु एषः प्रतिभोगः नाम। विविधैः हि सुखैः पूर्वैः अपि राजभिः मया च सुखितः लोकः। इमां तु धर्मानुप्रतिपत्तिं अनुप्रतिपद्यतां इति एतदर्थं मया एतत कृतम्। देवानां प्रियः प्रियदर्शी एवं आह—धर्ममहामात्याः अपि मया एते बहुविधेषु अर्थेषु आनुग्रहिकेषु व्यापृताः ते प्रव्रजितेषु चैव गृहस्थेषु च, सर्वपाषण्डेषु अपि च व्यापृताः ते। संघार्थे अपि मे कृते इमे व्यापृताः भवन्ति

इति; एवमेव ब्राह्मणेषु आजीवकेषु अपि मे कृते इमे व्यापृताः भवन्ति इति, निर्ग्रन्थेषु अपि मे कृते इमे व्यापृताः भवन्ति; नानापाषण्डेषु अपि मे कृते इमे व्यापृताः भवन्ति इति । प्रतिवृसृष्टाः प्रतिविसृष्टाः तेषु तेषु ते ते महामात्याः । धर्ममहामात्याः तु मया एतेषु चैव व्यापृताः सर्वेषु च अन्येषु पाषण्डेषु । देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—एते च अन्ये च बहुकाः मुख्याः दानविसर्गे व्यापृताः ते मम चैव देवीनां च, सर्वस्मिन् च मम अवरोधने बहुविधेन आकारेण तानि तानि तुष्ट्यायतनानि प्रतिपादयन्ति इह चैव दिशासु च । दारकाणां अपि च मे कृते अन्येषां च देवीकुमाराणां इमे दानविसर्गेषु व्यापृताः भवन्ति इति धर्मायदानार्थाय धर्मानुप्रतिपत्तये । एतत् हि धर्मायदानं धर्मप्रतिपत्तिः च या इयं दया दानं सत्यं शौचं मोदः साधुता च लोकस्य एवं वर्धिष्यते इति । देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—यानि हि कानिचित् मया साधूनि कृतानि तानि लोकः अनुप्रतिपन्नः तानि च अनुविदधाति; तेन वर्धिता च वर्धिष्यते

अपि । रज्जुका अपि बहुषु प्राणशतसहस्रेषु आयत्ता: ते अपि मया आज्ञप्ता एवं च एवं च परितः वदत जनं धर्मयुतम् । देवानां प्रियः प्रियदर्शी एवं आह—एतत् एव मया अनुवीक्षमाणेन धर्मस्तंभाः कृताः, धर्ममहामात्याः कृताः, धर्मश्रावणं कृतम् । देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—मार्गेषु अपि मया न्यग्रोधाः रोपिताः छायोपगाः भविष्यन्ति पशुमनुष्याणां, आम्रवाटिकाः रोपिताः, आर्धक्रोशिक्रीयानि मया उदुपानानि खानितानि, निषद्याः च कारिताः, आपानानि मया बहुकानि तत्र तत्र कारितानि प्रतिभोगाय पशुमनुष्याणाम् । लघुः तु एषः प्रतिभोगः नाम । विविधैः हि सुखैः पूर्वैः अपि राजभिः मया च सुखितः लोकः । इमां तु धर्मानुप्रतिपत्तिं अनुप्रतिपद्यतां इति एतदर्थं मया एतत कृतम् । देवानां प्रियः प्रियदर्शी एवं आह—धर्ममहामात्याः अपि मया एते बहुविधेषु अर्थेषु आनुग्रहिकेषु व्यापृताः ते प्रव्रजितेषु चैव गृहस्थेषु च, सर्वपाषण्डेषु अपि च व्यापृताः ते । संघार्थे अपि मे कृते इमे व्यापृताः भवन्ति

इति; एवमेव ब्राह्मणेषु आजीवकेषु अपि मे कृते इमे व्यापृताः भवन्ति इति, निर्ग्रन्थेषु अपि मे कृते इमे व्यापृताः भवन्ति; नानापाषण्डेषु अपि मे कृते इमे व्यापृताः भवन्ति इति । प्रतिवृसृष्टाः प्रतिविसृष्टाः तेषु तेषु ते ते महामात्याः । धर्ममहामात्याः तु मया एतेषु चैव व्यापृताः सर्वेषु च अन्येषु पाषण्डेषु । देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—एते च अन्ये च बहुकाः मुख्याः दानविसर्गे व्यापृताः ते मम चैव देवीनां च, सर्वस्मिन् च मम अवरोधने बहुविधेन आकारेण तानि तानि तुष्ट्यायतनानि प्रतिपादयन्ति इह चैव दिशासु च । दारकाणां अपि च मे कृते अन्येषां च देवीकुमाराणां इमे दानविसर्गेषु व्यापृताः भवन्ति इति धर्मायदानार्थाय धर्मानुप्रतिपत्तये । एतत् हि धर्मायदानं धर्मप्रतिपत्तिः च या इयं दया दानं सत्यं शौचं मोदः साधुता च लोकस्य एवं वर्धिष्यते इति । देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—यानि हि कानिचित् मया साधूनि कृतानि तानि लोकः अनुप्रतिपन्नः तानि च अनुविदधाति; तेन वर्धिता च वर्धिष्यते

च मातापित्रोः शुश्रूषा गुरुषु शुश्रूषा वयोमहल्लकानां अनुप्रतिपत्तिः ब्राह्मणश्रम-णेषु कृपणवराकेषु यावत् दासभृतकेषु संप्रतिपत्तिः। देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवं आह—मनुष्याणां तु या इयं धर्मवृद्धिः वर्धिता द्वाभ्यां एवं आकाराभ्यां—धर्मनियमेन च निध्यात्या च। तत्र च लघुः सः धर्मनियमः, निध्यातिः भूयसी। धर्मनियमः च खलु एषः यः मया अयं कृतः। इमानि च इमानि जातानि अवध्यानि। अन्ये अपि तु बहवः धर्मनियमाः ये मया कृताः। निध्यात्या एव तु भूय; मनुष्याणां धर्मवृद्धि वर्धिता अविहिंसायै भूतानां अनालंभाय प्राणानाम्। तत् एतस्मै अर्थाय इदं कृतं पुत्रप्रपौत्रिकं चन्द्रमःसूर्यकं भवतु इति तथा च अनुप्रतिपद्यन्तां इति। एवं हि अनुप्रतिपद्यमानानां ऐहत्यं च पारत्र्यं च आराद्धं भवति। सप्तविंशतिवर्षाभिषिक्तेन मया इयं धर्मलिपिः लेखिता इति। देवानां प्रियः आह—इयं धर्मलिपि यत्र सन्ति शिलास्तम्भाः वा शिलाफलकानि वा तत्र कर्तव्या येन एषा चिरस्थितिका स्यात्।

हिन्दी—अनुवाद

धर्म-प्रचारार्थ किये गये उपायोंकी समालोचना

(१) देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—बहुत दिन हुए जो राजा हो गये हैं उनकी इच्छा थी कि किसी प्रकार लोगोंमें धर्मकी वृद्धि हो। पर लोगोंमें आशानुरूप धर्मकी वृद्धि नहीं हुई।

टिप्पणियां

१—सप्तम लेख सातों स्तम्भलेखोंमें सबसे अधिक बड़ा और सबसे अधिक महत्त्वका है। इस लेखके दस अलग अलग भाग हैं जिनमें-से हर एक भागके प्रारंभमें यह लिखा-हुआ मिलता है कि "देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं।" प्रथम भागमें कहा गया है कि पूर्ववर्ती राजाओं-को धर्मकी वृद्धि करनेमें आशानुरूप सफलता नहीं हुई। दूसरे भागमें अशोक निश्चय करते हैं कि मैं धर्म-वृद्धिके द्वारा कमसे कम कुछ लोगोंको तो अव-श्य धर्ममें तत्पर कराऊंगा। तीसरे भाग-में उन सब प्रबन्धोंका उल्लेख किया

(२) इसलिये देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—

यह विचार मेरे मनमें उदय हुआ कि पूर्व समयमें राजा लोग यह चाहते थे कि किसी प्रकार लोगोंमें उचि त रूपसे धर्मकी वृद्धि हो पर लोगोंमें उचितरूपसे धर्मकी वृद्धि नहीं हुई। तो अब किस प्रकारसे लोगोंको (धर्म-पालनमें) प्रवृत्त किया जाय, किस प्रकार लोगोंमें उचित रूपसे धर्मकी वृद्धि की जाय, किस प्रकार मैं धर्मकी वृद्धिसे कमसे कम कुछ लोगोंको तो धर्ममें तत्पर करा सकूँ?

गया है जिनके द्वारा वह धर्मका प्रचार कराना चाहते थे। चौथे भागमें कहा गया है कि धर्मका प्रचार करनेके उद्देश्यसे अशोकने धर्मस्तम्भ बनवाये, धर्म-महामात्र नियुक्त किये और धर्म-विधि-की रचना की। पाँचवें भागमें यात्रियों और पशुओंके सुखके लिये जो प्रबन्ध किये गये थे उन सबका उल्लेख है। छठें भागमें धर्म-महामात्रोंके बारेमें लिखा गया है। सातवें भागमें अशोक तथा उनकी रानियों और राजकुमारोंके दानोत्सर्ग-कार्यका उल्लेख है। आठवें भागमें लगभग वही बातें लिखी हैं जो द्वितीय स्तम्भ-लेखमें लिखी गयी हैं, अर्थात् इस भागमें राजाके आचरणके बारेमें लिखा गया है। नवें भागमें धर्मके नियमोंकी अपेक्षा ध्यानका बहुत अधिक महत्त्व दिखलाया गया है। दसवें

(३) इसलिये देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—"यह विचार मेरे मनमें आया कि (लोगोंको) धर्मश्रवण कराऊं और उन्हें धर्मका उपदेश दूं जिसमें कि लोग उसे सुनकर उसीके अनुसार आचरण करें, उन्नति करें और विशेष रूपसे धर्मकी वृद्धि करें । इसी उद्देश्यसे धर्मश्रवण कराया गया और विविध प्रकारसे धर्मका उपदेश दिया गया, जिसमें कि मेरे "पुरुष" नामक कर्मचारी-गण जो बहुतसे लोगोंके ऊपर नियुक्त हैं मेरे उपदेशोंका प्रचार करें और उनका खूब विस्तार करें । रज्जुकोंको भी जो लाखों मनुष्योंपर नियुक्त हैं यह आज्ञा दी गयी है कि "धमयुत[३]" नामक कर्मचारियोंको इस प्रकार उपदेश देना" ।

भागमें लिखा है कि जहां जहां पत्थर-के स्तम्भ या पत्थरकी शिलायें हों वहाँ वहां यह धर्मलेख खुदवाया जाय जिसमें कि यह चिरस्थित रहे । इस प्रकार इस लेखमें अशोकके कुल धर्म-सम्बन्धी कार्योंका वर्णन किया गया है, पर यह एक विचित्र बात है कि इस लेखमें उन सब धर्मोपदेशकोंका नाम तक भी नहीं मिलता जिन्हें अशोकने विदेशोंमें धर्म-का प्रचार करनेके लिये भेजा था ।

२—रज्जुक-तृतीय शिला-लेखकी दूसरी टिप्पणी देखिये ।

३—धर्मयुत-पञ्चम शिला-लेखकी तीसरी टिप्पणी देखिये ।

(४) देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी ऐसा कहते हैं—इसी उद्देश्यसे मैंने धर्म-स्तंभ बनवाये, धर्म-महामात्र नियुक्त किये और धर्म-विधिकी रचना की।

(५) देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—सड़कोंपर भी मैंने मनुष्यों और पशुओंको छाया देनेके लिये बरगदके पेड़ लगवाये, आम्रवृक्षकी वाटिकायें लगवायीं, आध"

४—"आध आध कोसपर" = "अढकोसिक्यानि" (सं० आर्धक्रोशिकीयानि)। ब्यूलर और उन्हींके आधारपर विन्सेएट स्मिथ साहबका मत है कि "अढकोसिकनि" (सं०) "आर्धक्रोशिकीयानि" का अपभ्रन्श है। पर फ्लीट साहबका मत है "अढकोसिक्यानि" (सं०) "आर्धकोशिकीयानि' का नहीं बल्कि "आष्टक्रोशिकानि" का अपभ्रष्ट रूप है। हुवेन्त्संगने भी लिखा है कि प्राचीन समयसे ही फौजका एक दिनका कूच योजनके नामसे गिना जाता है। उसने यह भी लिखा है कि एक योजन आठ कोसका होता था। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन समयमें फौज एक दिनमें आठ कोस कूच करती थी। बाणने भी अपने हर्षचरितमें लिखा है कि एक दिनमें फौज आठ कोस चलती थी। हर्षचरितमें बाणने इस प्रकार लिखा है—

'अथ गलति तृतीये यामे सुप्तसमस्तसत्त्वनिःशब्दे दिक्कुंजरजृंभमाण गंभीरध्वनिरता इयूत प्रयाणपटहः। अग्रतः स्थित्वा च मुहूर्त्तमिव पुनः प्रयाणक्रोश-

संख्यापकाः स्पष्टमष्टावदीयन्त प्रहाराः पटहे पटीयांसः" ।

अर्थात्- 'जब रात्रि समाप्त हो रही थी और समस्त प्राणियोंके सो जाने-से सब ओर सन्नाटा छाया हुआ था उस समय कूचका नगाड़ा वजाया गया जिसका शब्द दिक्कुंजरोंकी जमुहाईके शब्दके समान गम्भीर था । इसके उपरान्त कुछ क्षण ठहरकर आठ बार जोरसे नगाड़ा इस बातको सूचित करनेके लिये वजाया गया कि सेनाको आठ कोसका कूच तय करना है ।"

हुवेन्संग और बाणके लेखोंसे निश्चित होता है कि अशोकने आध आध कोसपर नहीं बल्कि आठ आठ कोसपर कुएँ और सराएं बनवायी थीं ।

अब यह देखना है कि अष्टका अपभ्रंश अढ किस तरह हुआ । अशोकके अन्य लेखोंमें हमें अष्टका अपभ्रंश अढ नहीं बल्कि अठ मिलता है । उदाहरणके तौरपर कालसीके त्रयोदश शिला-लेखमें "अष्ट वर्षाभिषिक्त" का अपभ्रंश "अठवषाभिषित" लिखा है । इस बात-का भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं पाया जाता कि पाली भाषामें अष्टका सिवाय अठके और कोई दूसरा रूप भी हो । पर प्रचलित हिन्दी, मराठी, गुजराती तथा कुछ प्राकृत भाषाओंमें "अष्ट" का "अढ रूप" प्रायः देखा गया है । प्रसिद्ध जर्मनविद्वान् पिशल साहवने ऐसे वहुतसे प्राकृत शब्दोंके उदाहरण अपने प्राकृतभाषाके व्याकरणमें दिये हैं जिनमें "अष्ट" का अपभ्रंश "अढ"

आध कोसपर कुएं खुदवाये- सराएं बनवायीं और जहां तहां पशुओं तथा मनुष्योंके उपकारके लिये अनेक पौंसले (आपान) बैठाये। किन्तु यह उपकार कुछ भी नहीं है। पहिलेके राजाओंने और मैंने भी विविध प्रकारके सुखोंसे लोगोंको सुखी किया है। किन्तु मैंने यह (सुखकी व्यवस्था) इसलिये की है कि लोग धर्मके अनुसार आचरण करें।

हुआ है। इसी प्रकार हिन्दी और मराठीका " अड़तीस " तथा गुजराती-का आड्त्रीस (सं०) " अष्टत्रिंशत् " का तथा मराठीका अड़षष्ट और गुजराती तथा हिन्दीका अड़सठ संस्कृत अष्टषष्ठिका और मराठी तथा हिन्दीका अड़तालीस और गुजराती-का उड़तालीस संस्कृत अष्टचत्वारिंशत् का अपभ्रंश है।

अस्तु अढका शुद्ध संस्कृत रूप जो हो पर बाग्ला और हुवेन्संगके लेखोंसे विवश होकर मानना पड़ता है कि इस सिला-लेखके "अढकोसिक्य" का अर्थ "आध आध कोसपर" नहीं बल्कि "आठ आठ कोसपर" है। साधारण बुद्धिसे भी यही मालूम पड़ता है कि आध आध कोसपर सरायों और कुओंका बनाना अशोक ऐसे सम्राट्-के लिये भी आसान काम न था। [फ्लीट साहबका मत J. R. A. S., 1906 P. 401-417में विस्तारपूर्वक दिया गया है।]

५—सरायं निंसिाधया (सं० निषद्या०) सं-निषद्या शब्द नि पूर्वक सद् धातुसे बना है अर्थात् "वह स्थान जहां यात्री लोग बैठें या विश्राम करें।"

(६) देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी ऐसा कहते हैं—मेरे धर्म-महामात्र[६] भी उन बहुत तरह-के उपकारके कार्य्योंमें नियुक्त हैं जिनका संबन्ध संन्यासी और गृहस्थ दोनोंसे है, वे सब सम्प्रदायोंमें भी नियुक्त हैं। मैंने उन्हें संघोंमें,[७] ब्राह्मणोंमें, आजीवकोंमें[८], निर्ग्रन्थोंमें[९] तथा विविध प्रकारके सम्प्रदायोंमें नियुक्त किया है। भिन्न भिन्न महामात्र अपने अपने कार्यमें लगे हुए हैं, किन्तु धर्म-महामात्र अपने अपने कार्यके अलावा सब सम्प्रदायोंका निरीक्षण भी करते हैं।

(७) देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—ये तथा अन्य दूसरे प्रधान कर्मचारी मेरे तथा मेरी[१०] रानियोंके दानोत्सर्ग कार्यके संबन्धमें नियुक्त हैं और यहां (पाट-

---

६—धर्म-महामात्र—पंचम शिलालेख और उसकी दूसरी टिप्पणी देखिये।

७—संघ—बौद्ध भिक्षुओंका संप्रदाय।

८—आजीवक—"तीन गुहालेख" देखिये।

९—"निर्ग्रन्थोंमें" "निगंठेसु"। "निगंठ" या "निर्ग्रन्थ" एक प्रकारके जैन परिव्राजक थे जो समस्त सांसारिक बंधनोंको त्यागकर इधर उधर नग्न फिरा करते थे। जैन मतके संस्थापक महावीर स्वामी निर्ग्रन्थनाथ-पुत्रके नामसे कहे गये हैं। महावीर स्वामीके शिष्य लोग उस समय कदाचित् निर्ग्रन्थ नामसे प्रसिद्ध थे।

१०—"मेरी रानियोंके"—'देवीनाम्'। प्रधान और विवाहित महिषीगण "देवी" नामसे और उनके पुत्र कुमार नामसे

लिपुत्रमें) तथा प्रान्तोंमें वे मेरे सब अन्तःपुर वालोंको बताते हैं कि कौन कौनसे अवसरोंपर कौन कौन सा दान करना चाहिये। वे मेरे पुत्रों और दूसरे राजकुमारोंके[११] दानोत्सर्ग कार्यकी देखभाल करनेके लिये नियुक्त हैं जिसमें कि धर्मकी उन्नति और धर्मका आचरण हो। धर्मकी उन्नति और धर्मका आचरण इसीमें है कि दया, दान, सत्य, शाच (पवित्रता) मृदुता और साधुता लोगोंमें बढ़े।

(८) देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—जो कुछ अच्छा काम मैंने किया है उसे लोग स्वीकार करते हैं और उसका अनुसरण करते हैं जिससे उनके ये गुण

पुकारे जाते थे। अशोकके इस प्रकार चार रानियां थीं जिनमेंसे केवल तीवरकी माता कारुवाकीका नाम अशोकके शिलालेखमें दिया गया है।

११—"राजकुमारोंके"—"देवीकुमाराणाम्" देवी कुमारका शाब्दिक अर्थ यह है कि "ऐसी रानीका पुत्र जो देवीके नामसे पुकारी जाती हो"। राजाने अपने पुत्रोंका उल्लेख अलग किया है इससे सिद्ध होता है कि यह दूसरे राजकुमार अशोकके पूर्वाधिकारियोंकी रानीके पुत्र अर्थात् उसके भाई बन्धु अथवा चचा इत्यादि रहे होंगे। अशोकने पञ्चम शिलालेखमें अपने भाइयों, बहिनों और दूसरे रिश्तेदारोंका उल्लेख किया है।

बढ़ है और बढ़ेंगे अर्थात् माता पिताकी सेवा, गुरुओंकी सेवा, वयोवृद्धोंका सत्कार, और ब्राह्मण श्रमणोंके साथ, दीन दुखियोंके साथ तथा दास नौकरोंके साथ उचित व्यवहार।

(९) देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं :—मनुष्योंमें जो यह धर्म-वृद्धि हुई है सो दो प्रकारसे हुई है अर्थात् एक धर्मके नियमसे और दूसरे ध्यानके द्वारा। इन दोनोंमें धर्मके नियम कोई बड़े महत्वके नहीं हैं पर ध्यान बड़े महत्वकी बात है। पर मैंने धर्मके नियम इसलिये बनाये हैं कि अमुक अमुक प्राणी न मारे जायँ। और भी बहुत से धर्मके नियम मैंने बनाये हैं। पर ध्यानकी बदौलत मनुष्योंमें धर्मकी वृद्धि, प्राणियोंकी अहिंसा और यज्ञोंमें जीवोंका अनालंभ[१२] (अवध) बढ़ा है। यह लेख इसलिये लिखा गया है कि जिसमें जबतक सूर्य्य और चन्द्रमा हैं तबतक मेरे पुत्र और प्रपौत्र इसीके अनुसार आचरण करें। क्योंकि इसके अनुसार आचरण करनेसे इहलोक और परलोक दोनो सुधरेंगे। राज्याभिषेकके २७ वर्ष बाद मैंने यह लेख लिखवाया है।

१२—"हिंसा" और "आलम्भ" में भेद यह है कि जब यज्ञके लिये जीवका वध किया जाय तो उसे आलम्भ कहते हैं और यदि किसी दूसरे कार्यके लिये वध किया जाय तो उसे हिंसा कहते हैं।

(१०) देवताओंके प्रिय यह कहते हैं:—जहां जहां पत्थरके स्तम्भ या पत्थरकी शिलायें हों वहां वहां यह धर्म-लेख खुदवाया जाय जिसमें कि यह चिरस्थित रहे[13]।

१३—मालूम पड़ता है अशोककी इस आज्ञाके अनुसार कार्य नहीं हुआ, क्योंकि सप्तम स्तम्भलेख केवल दिल्लीमें टोपरा वाले स्तम्भमें पाया जाता है। कोई भी स्तम्भ-लेख अबतक किसी शिला या चट्टानपर खुदा हुआ नहीं मिला।

चतुर्थ अध्याय।

दो तराई स्तंभ-लेख

(१) रुम्मिनदेई स्तंभलेख

मूल

(१) देवान पियेन पियदसिन लाजिन वीसतिवसाभिसितेन
(२) अतन आगाच महीयिते [।] हिद बुधे जाते सक्य मुनीति
(३) सिलाविगडभीचा कालापित सिलाथभे च उसपापिते []
(४) हिद भगवं जातेति लुंमिनिगामे उबालिके कटे
(५) अठभागिये च [।]

संस्कृत-अनुवाद

देवानां प्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा विंशतिवर्षाभिषिक्तेन आत्मना आगत्य महीयितम् । इह बुद्धः जातः । शाक्यमुनिः इति शिलाविकटभित्तिका कारिता शिलास्तंभः च उत्थापितः* ।। इह भगवान् जातः इति लुंबुनीग्रामः उद्बलिकः कृतः अष्टभागी च ।

---

* अथवा "उद्धृतः" ।

हिन्दी-अनुवाद

बुद्धके जन्म-स्थानमें अशोककी यात्रा।

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजाने, राज्याभिषेकके २० वर्ष बाद, स्वयं आकर(इस स्थानकी) पूजा की । यहां शाक्यमुनि बुद्धका जन्म हुआ था, इसलिये यहां पत्थरकी एक प्राचीर स्थापित की गयी और पत्थरका एक स्तम्भ खड़ा किया गया । यहां भगवान् जन्मे थे इसलिये लुंबिनी [२]

टिप्पणियां ।

१—"सिलाविगडभीचा"="शिलाविकट-भित्तिका" अर्थात् 'पत्थरकी बनी हुई बृहत प्राचीर या दीवार (railing),' इस तरहकी कोई प्राचीर या दीवार अभीतक नहीं मिली है ।

२—"लुम्मिनिगामे उबलिके कटे"="लुंबिनी ग्रामका कर उठा दिया गया"। 'उबलिक' शब्द संस्कृत "उद्वालिक" का अपभ्रंश है जिसका अर्थ "बलिसे रहित" है। अतएव "उद्वालिक ग्राम" वह ग्राम है जिसका कर माफ कर दिया गया हो । पर ब्यूलर साहबने उबालिक को "अवबालिक" अथवा "अपबालिक" का अपभ्रंश माना है (Epigraphia Indica vol V P65)

ग्रामका कर उठा दिया गया और (पैदावारका) आठवां[३] भाग भी (जो राजाका हक़ था) उसी ग्रामको दे दिया गया।

३—"अठभागिये च" = "और आठवां भाग भी (ग्राम को) दे दिया गया" अर्थात् पैदावारका जो आठवां भाग राजाका अंश था वह भी उस गांवको माफ कर दिया गया। "अठभागिये" संस्कृत "अष्ट-भागी" का अपभ्रंश है। मनुने भी अध्याय ७ श्लोक १३० में लिखा है कि "पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा" अर्थात् "राजा पशु तथा सुवर्णोंका ५० वां भाग तथा धान्य (खेतकी पैदावार) का ८ वां, ६ वां अथवा १२ वां भाग अपनी प्रजासे ले।" ऐसा मालूम पड़ता है कि अशोकके समयमें उस जिलेसे, जिसमें लुम्बिनी ग्राम स्थित था भूमिकी पैदावारका ८ वां भाग राजाका अंश लिया जाता था। अशोकने यह अष्टम भाग भी लुम्बिनी ग्रामको माफ कर दिया (I. R. A. S. 1908 6. 479-80)

[२] निग्लीव स्तंभ-लेख

मूल

(१) देवानं पियेन पियदसिन लाजिन चोदसवसा [भिसि] तेनं
(२) बुधस कोनाकमनस थुबे दुतियं वढिते [।]
(३) [वीसतिव] साभिसितेन च अतन आगाच महीयिते
(४) .... पापिते [।]

संस्कृत—अनुवाद

देवनां प्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा चतुर्दश वर्षाभिषिक्तेन बुद्धस्य कनकमुनेः स्तूपः द्वितीयं वर्द्धितः। विंशतिवर्षाभिषिक्तेन च आत्मना आगत्य महीयितं (शिलास्तंभः च) उत्थापितः ।

हिन्दी-अनुवाद

कनकमुनिके स्तूपका दर्शन करनेके लिये अशोककी यात्रा

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजाने राज्याभिषेकके चौदह वर्ष बाद कनकमुनि[१] बुद्धके स्तूपकी द्वितीय बार मरम्मत करायी और राज्याभिषेकके (बीस) वर्ष बाद स्वयं आकर (इस स्तूपकी) पूजा की और (एक शिला-स्तंभ) खड़ा किया[२]।

टिप्पणियां।

(१) कनकमुनि बुद्ध-बौद्धग्रन्थोंमें लिखा है कि गौतम बुद्ध या शाक्यमुनि बुद्धके पूर्व भिन्न भिन्न कल्पोंमें कुल मिला कर २४ बुद्ध हो चुके थे। कनकमुनि बाइसवें बुद्ध थे। कनकमुनिका स्तूप अशोकके राज्यकालमें इतना पुराना हो चुका था कि उसकी दो बार मरम्मत करानी पड़ी थी। इससे मालूम पड़ता है कि पूर्व-कालीन बुद्धोंकी पूजा बहुत प्राचीन समयसे चली आ रही थी। कनकमुनि-के स्तूपका पता अबतक नहीं लगा है।

(२) इस लेखकी शैली उसी प्रकारकी है जिस प्रकारकी शैली रुम्मिनदेई वाले स्तंभलेखकी है। इससे मालूम पड़ता है कि दोनों लेख एक ही समयके हैं।

लघु स्तंभ-लेख

(१) सारनाथका स्तंभलेख

मूल

(१) देवा [नं पिये पियदसि लाजा] ....

(२) ए (ल) ....

(३) पाट [लिपुते] .. ये केन पि संघे भेतवे [।] ए चु खो

(४) भिखू वा भिखुनि वा संघं भखति से ओदातानि दुसानि संनंधापयिया आनावाससि

(५) आवासियिये [।] हेवं इयं सासने भिखुसंघसि च भिखुनीसंघसि च विंनपयितविये [।]

(६) हेवं देवानं पिये आहा हेदिसा च एका लिपी तुफाकंतिकं हुवाति संसलनसि निखिता [।]

(७) इकं च लिपिं हेदिसमेव उपासकानंतिकं निखिपाथ [।] ते पि च उपासका अनुपोसथं यावु

(८) एतमेव सासनंविस्वं सयितवे [।] अनुपोसथं च धुवाये इकिके महामाते पोसथाये

(९) याति एतमेव सासनं विस्वसयितवे अजानितवे च [।] आवतके च तुफाकं आहाले

(१०) सवत विवासयाथ तुफे एतेन वियंजनेन [।] हेमेव सवेसु कोटविसवेसु एतेन

(११) वियंजनेन विवासापयाथा [।]

संस्कृत-अनुवाद

देवा (नां प्रियः प्रियदर्शी राजा आह) पाटलिपुत्रे (तथा बाह्येषु च नगरेषु न) केन अपि संघः भक्तव्यः। यः तु खलु भिक्षुः वा भिक्षुकी वा संघं भंदयति सः अवदातानि दूष्याणि संनिधाप्य अनावासे आवासयितव्यः। एवं इदं शासनं भिक्षुसंघे च भिक्षुकीसंघे च विज्ञापयितव्यम्। एवं देवानां प्रियः आह—ईदृशी

च एका लिपिः युष्मदन्तिके भवतु इति संस्मरणे निक्षिप्ता । एकां च लिपिं ईदृशीं एव उपासकानां अन्तिके निक्षिपत । ते अपि च उपासकाः अनूपवसथं यान्तु एतदेव शासनं विश्वासयितुम् । अनूपवसथं च ध्रुवायां एकैकः महामात्यः उपवासाय याति एतत् एव शासनं विश्वासयितुं आज्ञापयितुं च । यावत् च युष्माकं आहारः सर्वत्र विवासयत यूयं एतेन व्यंजनेन । एवमेव सर्वेषु कोटविषयेषु एतेन व्यञ्जनेन विवासयत ।

हिन्दी-अनुवाद[1]

संघमें फूट डालनेके लिये दण्ड

देवताओंके प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं कि पाटलिपुत्र तथा प्रान्तोंमें कोई संघमें फूट न डाले । जो कोई—चाहे वह भिक्षु हो या भिक्षुनी । (भिक्षुकी)-संघमें फूट डालेगा

टिप्पणियां ।

१—सारनाथ, कौशाम्बी और सांचीके लघुस्तंभ-लेखोंमें एक ही तरहकी बातें लिखी हुई हैं । इन तीनों लेखोंसे पता लगता है कि अशोक अपने जीवन

वह सफेद[२] कपड़ा पहनाकर उस[३] स्थानमें रख दिया जायगा जो भिक्षुकों या भिक्षुनियोंके

के उत्तर भागमें साम्राज्य और भिक्षु-संघ दोनोंके अधिपति थे। एक जगह वे सम्राट् गिने जाते थे और दूसरी जगह संघाधिपति। महाराज अशोककी यही एक विशेषता थी। संघको फूटसे बचानेके लिये ही अशोकने यह तीनों लघुस्तम्भ-लेख खुदाये थे। इस लेखके भावार्थसे मालूम पड़ता है कि यह लेख उच्च कर्मचारियोंको सम्बोधन करके लिखा गया था।

२—जो भिक्षुकी या भिक्षु संघमें फूट डालता था उससे भिक्षुकोंका पीत वस्त्र ले लिया जाता था और वह साधारण मनुष्योंकी तरह श्वेत वस्त्र पहनाकर संघसे बाहर कर दिया जाता था।

३—"आनावासासि" = "उस स्थानमें जो भिक्षुओं या भिक्षुकियोंके लिये उचित नहीं है"। डाक्टर फोगल और डाक्टर सेनाके मतमें इस शब्द-का पाठ "आनावाससि" है पर डाक्टर वेनिसके मतमें इसका पाठ "अनावा-सासि" है। फोगल साहबने निश्चय किया है कि "आनावाससि" अन्यावासे-का अपभ्रंश है जिसका अर्थ उन्होंने "In another residence" अर्थात् "दूसरे स्थानमें" किया है। सेना साहब यह स्वीकार करते हैं कि कदा-चित् "आनावासासि" ही शुद्ध पाठ है पर वे इसका अर्थ "अन्यावासे" अथवा "दूसरे स्थानमें" नहीं करते। उनके मतमें "आनावास" आज्ञा-

लिये उचित नहीं है (अर्थात् वह भिक्षु समाजसे बहिष्कृत कर दिया जायगा)। इसी प्रकार हमारी यह आज्ञा भिक्षुसंघ और भिक्षुनी-संघको बता दी जाय। देवताओंके प्रिय ऐसा कहते हैं—इस[4] तरहका एक लेख आप लोगोंके समीप भेजा गया है जिसमें कि आप लोंगे

वासका अपभ्रंश है जिसका अर्थ उन्होंने यह किया है कि "वह निवास-स्थान जो संघकी आज्ञासे भिक्षुको मिला हो"। डाक्टर वेनिसके मतमें शुद्ध पाठ "अनावासासि" है जिसका अर्थ उन्होंने "अनावासे" अर्थात् "वह स्थान जो भिक्षुओंके लिये उचित नहीं है किया है।

४—"हेदिसा च इका लिपी तुफाकंतिकं दुवाति संसलनासि निखिता"="इस तरहका एक लेख आप लोगोंके पास भेजा गया है जिसमें कि आप लोग उसे याद रक्खें"। कर्न तथा ब्लाक साहेबके आधारपर फोगल साहबने संसलनका अर्थ संस्मरण (अर्थात् "याद") यह किया है। यद्यपि संसलनका अर्थ संस्मरण होसकता ह तथापि यह अर्थ यहांपर उचित नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि "हेदिसा इकालिपी" अर्थात् "इस तरहका एक लेख" ये शब्द जो इस लेखमें आये हैं उनसे सन्देह होता है कि इस लेखकी एक दूसरी प्रति और भी थी। और यह सन्देह बाद वाले वाक्यसे पका हो जाता है जो इस प्रकार है—"इकं च लिपिं हेदिसं

उसे याद रक्खें। ऐसा ही एक लेख आप लोग उपासकोंके लिये भी लिख दें जिसमें कि वे

एव उपासकानंतिकं निखिपाथ" अर्थात् "ऐसा ही एक लेख आप लोग उपासकोंके लिये भी लिख दें।" अतएव टामस साहबके मतमें "संसलन" का अर्थ संस्मरण नहीं बल्कि संसरण है। यहांपर 'संसरण' शब्दका अर्थ यह है कि ऐसा स्थान जहां लोग आकर आपसमें मिलते या घूमते फिरते थे। संसरण शब्द सृधातुसे निकला है जिसका अर्थ सरण करना या चलना है। संसरणमें (अर्थात् उस स्थानमें जहां भिक्षु लोग घूमने फिरनेके लिये या आपसमें मिलने जुलनेके लिये इकट्ठा होते थे) भिक्षुओंके लिये इस लेखकी एक प्रति स्तम्भपर खोदा दी गयी थी। उन उपासकोंके लिये जो भिक्षुओंके विहारमें नहीं रहते थे या जो संसरणमें नहीं आते थे इस लेखकी एक प्रति किसी दूसरे स्थानपर रख दी गयी थी। टामस साहबके मतसे "हेदिसा च इका लिपी तुफाकंतिकं हुवाति संसलनसि निखिता। इकं च लिपिं हेदिसं एव उपासकानंतिकं निखिपाथ" का अर्थ है "इस तरहका एक लेख आप लोगोंके समीप हो इस लिये यह लेख संसरणमें रख दिया गया है। इसी तरहका एक लेख आप लोग उपासकोंके समीप भी रख दें।" (J. R. A. S. 1915 pp. 109-12) विन्सेण्ट स्मिथ साहबने "संसलन" या "संसरण" का अर्थ "आफिस" अथवा "राजकार्यके निमित्त कर्मचारियोंके मिलने-

हर[4] उपवासके दिन आकर इस आज्ञाके मर्मको समझें। साल भर प्रत्येक उपवासके दिन हरएक महामात्र उपवासव्रत पालन करनेके वास्ते इस आज्ञाके मर्मको समझाने तथा इसका प्रचार करनेके लिये जायगा। [6]जहां जहां आप लोगोंका अधिकार हो वहां वहां आप सर्वत्र इस आज्ञाके अनुसार प्रचार करें। इसी प्रकार आप लोग सब कोटों [7](गढ़ों) और विषयों (प्रान्तों) में भी इस आज्ञाको भेजें।

का स्थान" किया है। "हे दिसाच इका लिपी तुफाकंतिकं हुवाति संसलनसि निखिता" का अर्थ विन्सेराट स्मिथने इस प्रकार किया है — "इस तरह का एक लेख आप लोगोंके लिये आप लोगोंके दफतरमें भेज दिया गया है"।

५—"हर उपवासके दिन"="अनुपोसथं"। हर महीनेमें चार "उपवासके दिन" होते हैं।

६—इसी तरहका एक वाक्य रूपनाथ वाले लघु शिला-लेखमें भी है। सारनाथ स्तम्भलेखके इस वाक्यसे रूपनाथ वाले शिलालेखका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। रूपनाथ वाले शिलालेखकी ११ वीं टिप्पणी देखिये।

७—"कोट" और "विषय" में यह भेद है कि कोट उस स्थान या नगरको कहते थे जहां किलेबन्दी होती थी और सेनायें रहा करती थीं। कोट कदाचित् सेनापतियोंके अधिकारमें रक्खे जाते थे। विषयका अर्थ प्रान्त या प्रदेश है। हर एक विषय या प्रान्त एक एक उच्चकर्मचारी अथवा विषय-पति के आधिकारमें रक्खा जाता था जिसके द्वारा राजाज्ञायें प्रकाशित की जाती थीं॥

[३] कौशाम्बी (प्रयाग) का स्तंभलेख

मूल

(१) ....ये [आ] नपयति कोसंबिय महमात

(२) ....म....संघसि नचि ये

(३) ....[संघं भा] खति भिखु व भिखुनी वा [पि] च [ओ]

(४) दा[ता]नि दुसानि. नं धापयितु आन[वे]स....व....य....

संस्कृत-अनुवाद

(देवानां प्रियः) आज्ञापयति कौशाम्ब्याः महामात्यान् (यत् संघः न भेत्तव्यः।) (यः तु खलु) संघं भेत्स्यति भिक्षुः वा भिक्षुकी वा अपि च अवदातानि दूष्याणि संनिधाप्य अनावासे आवासयितव्यः।

हिन्दी-अनुवाद

वही विषय जो सारनाथके स्तम्भ-लेखमें है

देवप्रिय प्रियदर्शी कौशाम्बीके महामात्रोंको इस प्रकार आज्ञा देते हैं—संघका नियम न उल्लंघन किया जाय। जो कोई संघमें फूट डालेगा वह श्वेत वस्त्र पहनाकर उस स्थानसे हटा दिया जायगा जहां भिक्षु या भिक्षुनियां रहती हैं (अर्थात् वह भिक्षु-समाजसे बहिष्कृत कर दिया जायगा)।

टिप्पणी।

१—जब तक सारनाथके स्तम्भ-लेखका पता नहीं लगा था तब तक कौशाम्बीके स्तम्भ-लेखका अर्थ ठीक ठीक नहीं मालूम हुआ था। सारनाथ-स्तम्भ-लेखसे यह सिद्ध हो जाता है कि कौशाम्बी वाला लेख सारनाथ-स्तम्भ-लेखका केवल एक दूसरा रूप है।

---

[३] सांचीका स्तम्भ-लेख

मूल

(३) ....ये संघं (४) भोखति भिखु वा भिखुनि वा ओदाता (४) नि दुसानि सनंधापयितु अना. (५) ससि विसयेतविये [।] इछा हि मे किं–(६) ति संघस मगे चिलथितीके सियाति [।]

संस्कृत-अनुवाद

यः संघं भंक्ष्यति भिक्षुः वा भिक्षुकी वा अवदातानि दूष्याणि संनिधाप्य अनावासे आवासयितव्यः। इच्छा हि मे किमिति संघस्य मार्गः चिरस्थितिकः स्यात् इति।

हिन्दी-अनुवाद

वही विषय जो सारनाथके स्तंभ-लेखमें है

—........भिक्षु और भिक्षुनी दोनोंके लिये (संघका) मार्ग नियत किया गया है........जो कोई भिक्षुनी या भिक्षु संघमें फूट डालेगा वह उस स्थानमें हटा दिया जायगा जो भिक्षुकों या भिक्षुनियोंके लिये उचित नहीं है। मेरी इच्छा है कि संघका मार्ग चिरस्थित रहे।

---

(४)—रानीका लेख

मूल

(१) देवानं पियषा वचनेना सवत महामता
(२) वतविया ए हेत दुतियाये देवीये दाने
(३) अंबावडिका वा आलमे व दानग [हे वा ए वापि] अंने
(४) कीछि गनीयति ताये देविये षे नानि....व....
(५) दुतियाये देवियेति तीवलमातु कालुवाकिये [।]

संस्कृत—अनुवाद

देवानां प्रियस्य वचनेन सर्वत्र महामात्याः वक्तव्याः यत् अत्र द्वितीयस्याः देव्याः दानं आम्रवाटिका वा आरामः वा दानगृहं वा यत् वा अन्यत् किंचित् गण्यते तस्याः देव्याः तत् अन्यानि वा (ज्ञातव्यानि) द्वितीयस्याः देव्याः इति तीवरमातुः कारुवाक्याः ।

हिन्दी-अनुवाद

दूसरी रानीका दान

देवताओंके प्रिय सर्वत्र महामात्रोंको यह आज्ञा देते हैं—दूसरी[1] रानीने जो कुछ दान किया हो चाहे वह आम्रवाटिका हो या उद्यान या दान[2]-गृह अथवा और कोई चीज हो, वह सब

टिप्पणियां

१—यह लेख प्रयागके स्तम्भमें ऐसे स्थान-पर खुदा हुआ है जिससे मालूम पड़ता है कि यह ६ स्तम्भ-लेखोंके बादका होगा। इस लेखकी लिपि भी ६ स्तम्भ-लेखोंकी लिपिसे कुछ भिन्न है।

२—सप्तम स्तम्भ-लेख देखिये। उसमें लिखा है कि महामात्र तथा अन्य दूसरे प्रधान कर्मचारी अशोककी रानियोंके दान-कार्यका निरीक्षण करनेके लिये नियुक्त थे।

३—"दानगृह" = दानशाला = सदाव्रत अर्थात् वह स्थान जहां यात्रियोंको भोजन और कभी कभी एक रातके लिये ठहरनेका स्थान भी दिया जाता था।

उसी रानीका दान गिना जाना चाहिये । यह सब कार्य दूसरी[४] रानी अर्थात् तीवरकी माता कारुवाकीके (पुण्यके निमित्त) किये गये हैं ।

४—मालूम पड़ता है कि दूसरी रानीके साथ अशोकका विशेष प्रेम था और कदाचित् वही ज्येष्ठ राजकुमारकी माता थी । यदि ज्येष्ठ कुमार जीवित रहता तो कदाचित् वहीं राजगद्दीपर बैठता, पर ऐसा मालूम पड़ता है कि वह अशोकसे पहिले ही इस संसारसे चल बसा । अधिकतर बौद्ध ग्रन्थोंमें लिखा मिलता है कि अशोकके बाद उसका पौत्र गद्दीपर बठा । कारुवा-की कुल या गोत्रका नाम है जिसका अर्थ है "कारुवाक वंशकी" । रीति-के अनुसार रानीका व्यक्तिगत नाम नहीं लिखा गया । (सप्तम स्तम्भ-लेख-की १०वीं और ११ वीं टिप्पणी देखिये)

तीन गुहा—लेख

मूल

(१)

(१) लाजिना पियदसिना दुवाडस [वसाभिसितेना]
(२) इयं [निगो] हकुभा दि [ना] आ - [जी -] विकेहि [।]

(२)

(१) लाजिना पियदसिना दुवा [—]
(२) डसवसाभिसितेना इयं
(३) कुभा खलतिक पवतासि
(४) दिना [आ -] जीविकेहि [।]

(३)

(१) ला [जा] पियदसी ए - [कु -] नवी [—]

(२) सतिवसा - [भि-] सित ....
(३) ....उथा त........
(४) सुंदे.ख........
(५) [।]

संस्कृत-अनुवाद

(१)

राज्ञा प्रियदर्शिना द्वादशवर्षाभिषिक्तेन इयं न्यग्रोध-गुहा दत्ता आजीवकेभ्यः ।

(२)

राज्ञा प्रियदर्शिना द्वादशवर्षाभिषिक्तेन इयं गुहा खलतिक-पर्वते दत्ता आजीवकेभ्यः ।

(३)

राजा प्रियदर्शी एकोनविंशति वर्षाभिषिक्तः [सुप्रियगुहां खलतिक-पर्वते आजीवकेभ्यः दत्तवान्]।

हिंदी-अनुवाद

बराबर पहाड़ीमें अशोककी ओरसे आजीवकोंको गुहादान

(१) राजा प्रियदर्शीने राज्याभिषेकके १२ वर्ष बाद यह "न्यग्रोध-गुहा" आजीवकों[१]को दी।

टिप्पणी

१—आजीवक-वराहमिहिरकृत वृहज्जातककी टीकामें उपलने आजीवकोंको 'नारायणाश्रित" लिखा है। इसलिये अध्यापक कर्न और डाक्टर ब्यूलरका मत है कि वे लोग वैष्णव या नारायणके उपासक थे। नन्द बच्छ (नन्द वात्स्य), किस संकिच्छ (कृश संकृच्छ) और मक्खलि गोसाल (मस्करि गोशाल) इस संप्रदायके प्रवर्तक थे। वे लोग नग्न फिरा करते थे और बहुत कठोर तपस्या करनेके लिये प्रसिद्ध थे। बौद्ध लोग उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते थे।

भण्डारकर साहबका मत है कि आजीवक वैष्णव संप्रदायके न थे, क्योंकि दशरथके तीन गुहा-लेखोंमें उनके नामके आगे "भदन्त" शब्दका व्यवहार किया गया है। भदन्त शब्द हिन्दुओंके किसी भी सम्प्रदायके लिये कभी भी नहीं व्यवहार किया गया। (J. Bo. R. A. S, Vol XX)

(२) राजा प्रियदर्शीने राज्याभिषेकके १२ वर्ष बाद खलतिक पर्वतपर यह गुहा आजीवकोंको दी।

(३) राजा प्रियदर्शीने राज्याभिषेकके १९ वर्ष बाद खलतिक पर्वतपर "सुपिया-गुहा" आजीवकोंको दी।

दशरथके तीन गुहालेख

मूल

(१)

(१) वहियका कुभा दषलथेन देवानं पियेना
(२) आनंतलियं अभिषितेना [आजीविकेहि]
(३) भदंतेहि वाषनिषिदियाये निषिठे
(४) आचंदमषूलियं [।]

(२)

(१) गोपिका कुभा दषलथेना देवानं पि [–]
(२) येना आनंतालियं अभिषितेना आजी [–]
(३) विके [हि भदं] तेहि वाष नि [षि] दियाये
(४) निषिठा आचंदमषूलियं [।]

(३)

(१) वडथिका कुभा दषलथेना देव.नं
(२) पियेना आनंतलियं अभिषितेना
(३) [आजीवि] के हि भदंते हि वा [षनि] षिदयाये
(४) निपिठा आचंदमषूलियं [।]

संस्कृत–अनुवाद

(१)

वाह्यका गुहा दशरथेन देवानां प्रियेण आनन्तर्यं अभिषिक्तेन (आजीवकेभ्यः) भदन्तेभ्यः वासनिषद्यायै निसृष्टा आचन्द्रमःसूर्यम् ।

(२)

गोपिका गुहा दशरथेन देवानां प्रियेण आनन्तर्यं अभिषिक्तेन आजीवकेभ्यः भदन्तेभ्यः वासनिषद्यायै निसृष्टा आचन्द्रमःसूर्यम् ।

(३)

वरस्त्रिका गुहा दशरथेन देवानां प्रियेण आनन्तर्यं अभिषिक्तेन आजीवकेभ्यः भदन्तेभ्यः वासनिषद्यायै निसृष्टा आचन्द्रमःसूर्यम् ।

हिन्दी-अनुवाद

नागार्जुनि पहाड़ीमें दशरथकी ओरसे आजीवकोंको गुहादान

(१) देवताओं के प्रिय दशरथने राज्याभिषकके बाद ही "वहियका" गुहा "भदन्त[२]" आजीवकोंको जबतक[३] सूर्य चन्द्रमा स्थित हैं तब तक निवास करनेके लिये दी।

टिप्पणियां

१—मूलमें "देवानं पियेना" ये दोना शब्द "दषलथेन" के बाद आये हैं। यह क्रम असाधारण मालूम पड़ता है। साधारणतया "देवानं पियेन" यह विशेषण विशेष्यके पहिले आता है। इसीसे डाक्टर फ्लीट साहबका मत है कि इसका अनुवाद इस प्रकारसे होना चाहिये—"देवाताओंके प्रिय (अर्थात् अशोक) से राज्याभिषिक्त होनेके अनन्तर ही दशरथने इ०"

२—भण्डारकर साहबका मत है कि "भदन्त एक ऐसी पदवी है जो किसी हिन्दू-धर्मावलम्बीके लिये कभी भी नहीं प्रयुक्त की गयी। अतएव आजीवक लोग वैष्णाव सम्प्रदायकी एक शाखा नहीं हो सकते"।

३—"आचंदमषूलियं" = "आचन्द्रमःसूर्यम्" अर्थात् "जब तक सूर्य और चन्द्रमा स्थित हैं"। सप्तम स्तंभ लेखमें भी यह शब्द आया है।

(२) देवताओंके प्रिय दशरथने राज्याभिषेकके अनन्तर ही "गोपिका" गुहा "भदन्त" आजीवकोंको जब तक सूर्य चन्द्रमा हैं तब तक निवास करनेके लिये दी।

(३) देवताओंके प्रिय दशरथने राज्याभिषेकके अनन्तर "वडथिका" गुहा "भदन्त" आजीवकोंको जब तक सूर्य चन्द्रमा हैं तब तक निवास करनेके लिये दी।

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१

अशोककी लिपि

मानसेरा और शाहबाज़गढ़ीके दो "चतुर्दश लेखों"को छोड़कर अशोकके बाकी धर्मलेख ब्राह्मी अक्षरोंमें खुदे हुए हैं। ब्राह्मी अक्षरोंकी उत्पत्तिके बारेमें अनेक भिन्न मत प्रचलित हैं। इन मतोंको हम संक्षेपमें नीचे लिखते हैं।

इस बातका निश्चय करना कठिन है कि ब्राह्मी अक्षरोंकी उत्पत्ति किस प्रकार और किस युगमें हुई। प्राचीन किंवदन्ती यह है कि इस लिपिकी उत्पत्ति ब्रह्मा*से हुई, इसीसे इसको ब्राह्मी लिपिके नामसे पुकारते हैं। ललित विस्तर † नामक बौद्ध ग्रन्थ तथा दो एक जैन ग्रन्थोंमें भी ब्राह्मी या बंभी लिपिका उल्लेख मिलता है। बौद्ध चीनी यात्रियों‡के ग्रन्थोंमें भी उक्तलिपि ब्रह्मके नामसे कही गयी है। इस देशमें जितने प्रकारकी लिपियां प्रचलित थीं और वर्तमान समयमें प्रचलित हैं उन सबोंमें अशोक-लिपि ही प्राचीन है। इसीलिये अशोक लिपि "ब्राह्मी-लिपि" के नामसे कही गयी है।

ब्राह्मी लिपिके अतिरिक्त एक और प्रकारकी लिपि भी इस देशमें प्रचलित थी। इस लिपिका प्रचार विशेष करके

---

* नाकरिष्ययदि ब्रह्मा लिखितं चक्षुरुत्तमम्।
तत्रेयमस्य लोकस्य नाभविष्यत् शुभा गतिः॥

(नारद-स्मृति)

† ललितविस्तर, अध्याय १०

‡ Beal's "Buddhist Record of the Western World", Vol. I, p 77.

भारतवर्षके पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तमें था। इसे खरोष्ट्री या खरोष्ठी लिपिके नामसे पुकारते थे। मानसेरा और शाहबाजगढ़ीके चतुर्दश शिलालेख इसी लिपिमें हैं।

ब्राह्मी लिपिकी उत्पत्तिके बारेमें कुछ लोगोंका यह मत है कि यह इसी देशमें उत्पन्न हुई। पर कुछ विद्वानोंका कहना है कि यह विदेशसे यहां लायी गयी। डाक्टर टामस, गोल्डस्टूकर, राजेन्द्रलाल मित्र, लास्सेन आदि कई विद्वानोंकी राय है कि "ब्राह्मी" वर्णमालाकी उत्पत्ति इसी देशमें हुई। कनिंघम साहबके मतमें ब्राह्मी अक्षरोंकी उत्पत्ति प्राचीन भारतीय वस्तु-चित्रसे हुई। दूसरा पक्ष बेवर, टाइलर, बेनफे, सर विलियम जोन्स, बूलर आदि अनेक विद्वानोंका है। इन विद्वानोंके मतमें ब्राह्मी अक्षर विदेशसे यहां लाये गये। जो लोग यह कहते हैं कि ब्राह्मी अक्षरोंकी उत्पत्ति विदेशसे हुई उनमें भी आपसमें मतभेद है। कुछ लोगोंका यह मत है कि ब्राह्मी अक्षर उत्तर सेमेटिक या फिनीशियन लिपिसे निकले और कुछ लोगोंका मत है कि यह लिपि दक्षिण सेमेटिक या अरबवालोंसे ग्रहण की गयी। पश्चिमी एशिया और अफ़्रीकाकी अरबी, एरमेइक, सीरिअक, फिनीशियन, हिब्रू आदि भाषाओं और लिपियोंको सेमेटिक कहते हैं। सेमेटिक शब्द नूहके पुत्र शेमके नामपर बना है। प्राचीन समयमें एशियाके उत्तर-पश्चिमकी ओर सीरिया नामक देशको फिनीशिया कहते थे। फिनीशियाके रहनेवाले फिनीशियन कहलाते थे। फिनीशियन लोग प्राचीन समयमें बहुत सभ्य, पढ़े-लिखे और व्यापारी थे। यूरोप वालोंने उन्हींसे लिखनेकी विद्या सीखी। यूरोप की लिपियां भी उन्हींकी लिपिसे मिलती हैं।

डाक्टर बूलरका मत है कि उत्तर सेमेटिक अक्षरोंसे प्राचीन ब्राह्मी अक्षरोंकी उत्पत्ति हुई। बूलर साहब अपनी इण्डियन पेलि-

ग्रेफी नामक पुस्तकमें लिखते हैं कि "भारतवर्षमें सेमेटिक अक्षरोंके प्रवेशका समय ईसवी सन्के पूर्व ८०० के लगभग माना जा सकता है।"*

डाक्टर राइस डेविड्ज का मत है कि ब्राह्मी लिपि के अक्षर न तो उत्तरी सेमेटिक और न दक्षिणी सेमेटिक अक्षरोंसे बने हैं किन्तु उन अक्षरोंसे निकले हैं जिनसे उत्तरी और दक्षिणी सेमेटिक अक्षर स्वयं निकले हैं। अर्थात् ब्राह्मी अक्षर उस लिपिसे निकले हैं जो यूफ्रेटिस नदीकी घाटीमें सेमेटिक अक्षरोंसे पहिले ही प्रचलित थी।†

प्राचीन फिनीशियन या उत्तर सेमेटिक लिपिके कुछ अक्षरों और ब्राह्मी लिपि के कुछ अक्षरोंमें थोड़ा बहुत सादृश्य होनेसे पूर्वोक्त बूलर आदि विद्वानोंने यह अनुमान करना प्रारम्भ किया कि ब्राह्मी अक्षर अवश्यमेव फिनीशियन या उत्तर सेमेटिक अक्षरोंसे निकले हैं।

जिन लोगोंका यह मत है कि ब्राह्मी अक्षर विदेशी अक्षरोंसे निकले हैं वे अपने मतके समर्थनमें यह कहते हैं कि अति प्राचीन कालमें पश्चिम भारतके साथ बेबिलन आदि पश्चिमी एशियाके देशोंका बहुत घना व्यापारिक सम्बन्ध था और उन देशोंमे भारतीय व्यापारी प्रायः आया जाया करते थे बौद्ध जातक ग्रन्थोंमें बावेरु जातक नामकी एक रोचक कहानी पायी जाती है। बावरु शब्द बेबिलन का पाली रूपान्तर है। जातकोंमें भरुकच्छ (भरोच) और सूपारक (सुपारा) नामक पश्चिमी भारतके प्राचीन व्यापारिक केन्द्रोंका उल्लेख भी आता है।

---

* Buhler's "Indian Palaeography" p 17.

† Rhys David's "Buddhist India" p 114.

इन्हीं स्थानोंसे भारतीय व्यापारीगण विदेशोंको जाया करते थे। जिन यूरोपीय विद्वानोंका यह मत है कि भारतीय व्यापारियोंने अपनी वर्णमाला सेमेटिक या फिनीशियन जातिसे प्राप्त की थी उनका यह विश्वास है कि इससे पहिले भारतवर्षमें अक्षरोंका प्रचार न था और न भारतवासी लिखना जानते थे। जब भारतीय व्यापारी व्यापारके लिये विदेशोंमें जाने लगे तो किसी प्रकारके अक्षरोंका ज्ञान न होनेसे उन्हें बड़ी कठिनता मालूम पड़ने लगी । अतएव उन्होंने फिनीशियन आदि विदेशी जातियोंसे लिखनेकी प्रणाली सीखी। पीछेसे भारतवासियोंने विदेशसे आयी हुई इस वर्णमालाको संस्कृत और प्राकृत भाषाके योग्य बनानेके लिये नये नये वर्णोंका आविष्कार किया जिससे यह लिपि और भी पूर्ण और परिष्कृत हो गयी।

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति किसी विदेशी लिपिसे हुई, यह मत सर्वथा माननीय नहीं है। संस्कृत साहित्यमें इस बातके अनेक प्रमाण हैं कि अति प्राचीन कालमें भी लिपि विद्याका प्रचार इस देशमें था। महाभारत, वशिष्ठ धर्मसूत्र, मनुस्मृति, कौटिलीय अर्थशास्त्र, वात्स्यायन कामसूत्र, आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें लिपि-विद्याका वर्णन अनेक प्रकारसे मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में "एक वचन" "बहुवचन" तथा तीनों लिंगोंके भेदकी विवेचना पायी जाती है। पाणिनीय व्याकरण में "लिपि" "लिबि" 'लिपिकर" "यवनानी" (यवनोंकी लिपि) और 'ग्रन्थ" शब्द मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कई वैदिक ग्रन्थोंमें ' अक्षर " " काण्ड " "पटल" 'ग्रन्थ' आदि शब्दोंका प्रयोग दिखलायी पड़ता है।

प्राचीन बौद्ध साहित्य और विशेष करके त्रिपिटक नामक बौद्ध ग्रन्थोंमें भी लिपि-विद्याका वर्णन मिलता है। विनयपिटक

में "लेख" और "लेखक" शब्दोंका प्रयोग दिखलायी पड़ता है। कुछ बौद्ध ग्रन्थोंमें अक्खरिका (अक्षरिका) नामक एक प्रकारके खेलका जिक्र आता है। जातकोंमें "पाठशालों" "काष्ठकलक" "लेखनी", "पत्र", "पुस्तक" आदिका उल्लेख पाया जाता है। पाठशालाओंमें लिखनेकी विद्या और गिनती सिखायी जाती थी। इसके अलावा प्राचीन ग्रन्थोंमें "छिन्दति", "लिखति", "लेख", "लेखक", "अक्षर" तथा लिखनेकी सामग्री अर्थात् "काष्ठ", "वंश", "पत्र" तथा सुवर्णपट्ट आदिका उल्लेख मिलता है।

अशोक-लिपि की आकृति, बनावट इत्यादिके ऊपर विचार करनेसे भी यह स्पष्ट विदित होता है कि इस लिपिका प्रचार भारतवर्षमें शताब्दियोंसे चला आ रहा था। अशोक-लिपिकी आकृति बहुत ही परिष्कृत और सरल है। उसे ध्यान पूर्वक देखनेसे इस बातका पता अच्छी तरहसे लग जाता है कि उस अवस्था तक पहुंचनेमें ब्राह्मी लिपि को अनेक शताब्दियां लग गयी होंगी। अशोक के समयमें तथा अशोकके बाद भी वहुत काल तक भारतवर्षके अधिकतर स्थानोंमें इसी लिपिका प्रचार था। दूरके पश्चिमी प्रान्तों तक यही लिपि प्रचलित थी। प्राचीन गान्धार प्रदेश (पेशावर, रावलपिण्डी और कावुलके जिले) के ध्वंसावशेषोंमें अनेक प्राचीन सिक्के ब्राह्मी अक्षरों में खुदे हुए पाये गये हैं। वहां वहुतसे सिक्के ऐसे भी मिले हैं जिनपर "ब्राह्मी" और "खरोष्ठी" दोनों अक्षर एक साथ खुदे हुए हैं। एक समय ब्राह्मी लिपि ही प्राचीन भारतवर्षकी राष्ट्रीय लिपि थी। कुषन, गुप्त, प्राचीन द्राविड़, देवनागरी, वंगला, तिव्वती, उड़िया, गुरुमुखी, सारदा, सिन्धी, ग्रन्थ, तेलगू, तामिल, मलयालम, सिंहाली, वर्मी, श्यामी इत्यादि भारतवर्षकी तथा

भारतवर्षके बाहरकी कई प्राचीन तथा आधुनिक लिपियां इसी ब्राह्मालापसे निकली हैं। संस्कृत और बौद्ध साहित्यके प्रमाणोंसे पता लगता है कि विक्रमीय संवत्के पूर्व षष्ठ शताब्दीमें तथा उसके बहुत पहिले भी इस देशमें लिखनेका प्रचार था।

भारतवर्षके उत्तर-पश्चिम प्रान्तमें जिस लिपिका प्रचार था उसे खरोष्ट्री अथवा खरोष्ठी लिपिके नामसे पुकारते थे। किसी किसीका मत है कि इस लिपिका आकार "खर" (गदहा) और उष्ट्र (ऊंट) की तरह था इसलिये इस लिपिको खरोष्ट्री कहते थे। चीनके प्राचीन ग्रन्थोंसे पता लगता है कि इस लिपिका निर्माता खरोष्ठ नामक आचार्य था जिसके नामपर इस लिपिका नाम खरोष्ठी पड़ा*। वि० पू० तृतीय शताब्दीसे लेकर विक्रमीय संवत्की चतुर्थ शताब्दी तक इस लिपिका प्रचार भारतवर्षमें रहा। अशोकके बाद इस लिपिका प्रचार बहुधा विदेशी राजाओंके सिक्कों और शिलालेखोंमें मिलता है। भोजपत्रपर इस लिपिमें लिखे हुए ग्रन्थ भी पाये गये हैं। यह लिपि दाहिनी ओरसे बांई ओरको लिखी जाती थी। कई विद्वानोंका मत है कि यह लिपि एरेमइक अथवा सीरिया देशकी लिपिसे निकली है। सीरियन लिपि वि० पू० पंचम अथवा चतुर्थ शताब्दीके लगभग समस्त पारसीक साम्राज्यमें अर्थात एशियामाइनरसे लगाकर गान्धार पर्यन्त समग्र एशिया खण्डमें व्यापारियों तथा शासकोंके समुदायमें प्रचलित थी। हिन्दुस्तानका ईरानके साथ प्राचीन कालसे सम्बन्ध था। ईरान का बादशाह साइरस (वि० पू० ५०१ ४७३) गांधारदेश तक विजय करता हुआ बढ़ आया था।

---

* Indian Antiquary, Vol. 34 p. 21

वि० पू० ४४३ के लगभग ईरानके सम्राट् दारा (प्रथम) ने सिन्धु नदी तक हिन्दुस्तानका प्रदेश अपने अधीन किया । संभव है कि इन पारसीक सम्राटोंके द्वारा इस लिपिका प्रचार पंजाबमें हुआ हो । बादको यह लिपि प्राकृत भाषा लिखनेके योग्य बना ली गयी । ब्राह्मणोंने खरोष्ठी लिपिका प्रयोग अपने ग्रन्थोंमें कभी नहीं किया क्योंकि वह संस्कृत भाषामें लिखे जानेके योग्य न थी । अब तक इस लिपिमें लिखे हुए जितने ग्रन्थ मिले हैं उनमेंसे एक भी ऐसा नहीं है जो ब्राह्मणोंके धर्मसे सम्बन्ध रखता हो । †

† "ब्राह्मी" और "खरोष्ठी" लिपियोंके बारेमें विशेष जाननेके लिये निम्नलिखित पुस्तकें देखनी चाहिये—

(१) बूलर कृत इण्डियन पेलियोग्राफी
(२) Buhler's "Origin of the Brahma and Kharosthi Alphabets".
(३) Rhys David's "Buddhist India".
(४) पंडित गौरीशंकर हीराचद ओझा रचित "भारतीय प्राचीन लिपिमाला । "
(५) "The Kharosthi Alphabet" by R.D. Bannerji in J, R. A. S., 1920, p 193-219

परिशिष्ट—२

पालीका संक्षिप्त व्याकरण

वर्णमाला

पालीमें निम्नलिखित स्वर और व्यंजन पाये जाते हैं—

स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ।

व्यंजन—क, ख, ग, घ, ङ
च, छ, ज, झ, ञ
ट, ठ, ड, ढ, ण
त, थ, द, ध, न
प, फ, ब, भ, म
य, र, ल, व
स, ह, ळ (वैदिक)

स्वरोंमें परिवर्त्तन

पालीमें ऋ, लृ, ऐ और औ स्वर नहीं होते। ऋ का स्थान निम्नलिखित स्वरोंमेंसे कोई एक स्वर लेता है—

(१) अ—यथा अच्छ = ऋक्ष; तसित = तृषित; गह = गृह; मच्चु = मृत्यु; मट्ठ = मृष्ट।

(२) इ—यथा इण = ऋण; किस = कृश; मिग = मृग; सिगाल = शृगाल।

(३) उ—यथा उसभ=ऋषभ; पुच्छति=पृच्छति; वुड्ढि=वृष्टि।

(४) ए—यथा गेह=गृह।

संस्कृतके ऐ और औ पालीमें ए और ओ हो जाते हैं यथा—गोतम=गौतम; एरावण=ऐरावण; मेत्री=मैत्री

संस्कृतका अ पालीमें निम्नलिखित रूप ग्रहण करता है—

(१) ए—यथा एत्थ=अत्र; हेट्ठा=अधस्तात्; अन्तेपुर=अन्तःपुर; सेय्या=शय्या।

(२) इ—यथा तिपु=त्रपु; तिमिस=तमस; तिमिस्सा=तमिस्रा।

(३) उ—यथा निमुज्जति=निमज्जति; पज्जुण्ण=पर्जन्य

(४) ओ—यथा तिरोक्ख=तिरस्क।

संस्कृतका आ पालीमें निम्नलिखित रूप ग्रहण करता है—

(१) ए—यथा पारेवत=पारावत; आचेर=आचार्य।

(२) ओ—यथा परोवर=परावर; दोसो=दोषा।

(३) ऊ—यथा पारगू=पारगा; विञ्ञु विज्ञा।

संस्कृतकी इ पालीमें निम्नलिखित रूप ग्रहण करती है—

(१) अ—यथा पठवी=पृथिवी; पोक्खरणी=पुष्करिणी; घरणी=गृहिणी

(२) ए—यथा एत्त=इयन्त (इतना); वेमज्झ=विमध्य एट्ठि=इष्टि

(३) उ——यथा राजुल=राजिल; गेरुक=गैरिक ।

संस्कृतकी ई पालीमें निम्नलिखित रूप ग्रहरा करती है—

(१) अ——यथा भस्म=भीष्म
(२) आ——यथा तिरच्छान=तिरश्चीन ।
(३) ए——खेल=क्रीड़ा; सेफालिका=श्रीफालिका (सरीफा)
(४) उ——यथा ठुभ्=ष्ठीव् (थूकना)

संस्कृतका उ पालीमें निम्नलिखित रूप ग्रहरा करता है—

(१) अ——यथा सक्खलि=शष्कुलि; अगलु=अगुरु; फल्लति=फुल्लात; फरति=स्फुरति ।

(२) इ——यथा दिन्दिम=दुन्दुभि ।
(३) ओ——ओक्का=उल्का; पोत्थलिका=पुत्तलिका; अनोपम=अनुपम ।

संस्कृतका ऊ पालीमें निम्नलिखित रूप ग्रहरा करता है—

(१) आ——यथा मसारक=मसूरक; भाकुटि=भ्रूकुटि
(२) इ, ई——यथा भीयो, : भिय्यो=भूयस्; निपुर=नूपुर ।
(३) ओ——ओज=ऊर्जस; ओनवीसति=ऊनविंशति ।

संस्कृतका ए पालीमें निम्नलिखित रूप ग्रहरा करता है—

(१) अ——यथा मिलक्ख=म्लेच्छ ।
(२) आ——यथा कायूर=केयूर ।

(३) इ——यथा उब्बिल्ल = उद्वेल ।

(४) ओ——यथा अतिप्पगो = अतिप्रगे (बहुत तड़के)

संस्कृतका ओ पालीमें निम्नलिखित रूप ग्रहण करता है-संयुक्त व्यञ्जनके पहिले ओ का उ और असंयुक्त व्यञ्जनके पहिले ओ का ऊ हो जाता है-यथा जुण्हा = ज्योत्स्ना; विसूक = विशोक; दूभ = द्रोह ।

बहुधा संयुक्त व्यंजनके पहिले वाला दीर्घस्वर ह्रस्व हो जाता है-यथा सन्त, दन्त, वन्त = शांत, दान्त, वान्त; सक्य सक्क = शाक्य, वह्य = बाह्य ।

बहुधा सानुनासिक स्वर बदलकर दीर्घस्वर हो जाता है-यथा सीह = सिंह, वीसति = विंशति; साराग = सम्राग ।

बहुधा दीर्घस्वर के स्थानपर सानुनासिक ह्रस्व स्वर हो जाता है—यथा सनंतन = सनातन; सम्मुंजनी = सम्मार्जनी ।

बहुधा शब्दके अन्तमें अनुस्वार जोड़ दिया जाता है—यथा सक्कच्चं = सत्कृत्य (आदर पूर्वक) कुदाचनं = कदाचन ।

अपि, इति, इव, और एव के पहिलेका स्वर लोप हो जाता है यथा पि = अपि; ति = इति; व = इव अथवा एव ।

व्यंजनोंमें परिवर्त्तन ।

(१) कवर्ग—संस्कृतका कवर्ग पालीमें चवर्ग का रूप ग्रहण करता है, यथा चुन्द = कुन्द ।

(२) चवर्ग--संस्कृतका चवर्ग पालीमें कवर्ग का रूप ग्रहण करता है, यथा भिसक्क = भिषज्; पभंगुन = प्रभंजन ।

(३) टवर्ग—संस्कृतका टवर्ग पालीमें तवर्ग का रूप ग्रहण करता

है, यथा चेतक=चेटक; देरिडम=डिरिडम; कुब्बान=कुर्वाण; घान=घ्राण।

(४) तवर्ग—संस्कृतका तवर्ग पालीमें टवर्ग का रूप ग्रहण करता है, यथा पज्जुण्ण=पर्जन्य; पासण्ड=पर्षद्य।
बहुधा दकारका रूप लकारमें बदल जाता है—यथा आलिंपन—आदीपन, दोहल—दौहद, कोविलार—कोविदार।

(५) पवर्ग—पकार का रूप मकार में बदल जाता है, यथा सुमन्त =सुपन्त (सोते हुए); धूमायति=धूपायति।
भकारका रूप मकारमें बदल जाता है—यथा दिंदिम=दुन्दुभि।

(६) अन्य व्यंजन—

(क) यकार बहुधा वकारका रूप ग्रहण करता है—यथा कीव=कियन्त; तिवंगुल=त्र्यंगुल, कंडुवति=कंडूयति; मिगव=मृगया।
यकार बहुधा रकारमें भी बदल जाता है—यथा कुलीर=कुलीय; बाहिर=बाह्य।
यकार बहुधा लकारमें भी बदल जाता है—यथा लट्ठि=यष्टि; जोतलति=ज्योतयाति।

(ख) वकार बहुधा यकारका रूप ग्रहण करता है—यथा दाय=दाव (जंगल)
वकार बहुधा बकारमें भी बदल जाता है—यथा परिब्बसान=परिवसान; सिब्बन=सीवन; सुब्बुट्ठि=सुवृष्टि; बालिबद्ध=बलिवर्द; कबल=कवल।

वकार बहुधा पकारमें भी बदल जाता है-यथा पजापती = प्रजावती (भार्या); अपदान = अवदान।

(ग) रकार बहुधा लकार का रूप ग्रहण करता है-यथा लुद्द = रुद्र; एलंड = एरंड; पलिपन्न = परिपन्न; सुखुमाल = सुकुमार; अगलु = अगुरु।

(घ) लकार बहुधा रकारका रूप ग्रहण करता है यथा किर = किल; आरम्मन = आलंबन।

लकार बहुधा नकार में बदल जाता है-यथा नलाट = ललाट, नंगुल = लांगूल; देहनी = देहली।

(च) पालीमें शकार और षकार नहीं हैं अतएव वे सकार का रूप ग्रहण करते हैं।

संयुक्त व्यंजन।

संयुक्त व्यंजनमें साधारणतया पहिला अक्षर दूसरे अक्षरका रूप ग्रहण करता है यथा—

क्त का रूप त्त में बदल जाता है-यथा मुत्त = मुक्त; सत्ति = शक्ति; सत्तु = शक्तु। क्थ का रूप त्थमें बदल जाता है-यथा सत्थि = शक्थि। ग्धका रूप द्ध में बदल जाता है यथा दुद्ध = दुग्ध। ग्भ का रूप ब्भ में बदल जाता है यथा पब्भार = प्राग्भार। ड्ग का रूप ग्ग में बदल जाता है यथा खग्ग = खड्ग। त्क का रूप क्क में बदल जाता है यथा उक्कार = उत्कार। त्प का रूप प्प में बदल जाता है यथा उप्पतति = उत्पतति। द्ग का रूप ग्ग में बदल जाता है यथा पुग्गल = पुद्गल। द्घ का रूप ग्घ में बदल जाता है यथा उग्घराति = उद्घराति। द्ब = ब्ब

यथा बुब्बुल = बुद्बुद । प्त = त्त यथा वुत्त = उप्त । ब्द = द्द यथा सद्द = शब्द । ब्ध = द्ध यथा लद्ध = लब्ध ।

बहुधा दूसरा अक्षर पहिले अक्षरका रूप ग्रहण करता है यथा—

क्न = क्क — यथा सक्कोति = शक्नोति ।
ग्न = ग्ग — यथा अग्गि = अग्नि ।
घ्न = ग्घ — यथा विग्घ = विघ्न ।
त्न = त्त — यथा सपत्ती = सपत्नी ।
त्म = त्त — यथा अत्ता = आत्मा ।
थ्न = त्थ — यथा अभिमत्थति = अभिमथ्नाति ।
द्म = द्द — यथा छद्द = छद्मन् ।
प्न = प्प — यथा पप्पोति = प्राप्नोति ।

यकार का जिस व्यंजनके साथ संयोग रहता है उसीका रूप वह ग्रहण कर लेता है पर त्यका रूप च्च में बदल जाता है । यथा—

क्य = क्क — यथा उस्सुक्क = औत्सुक्य ।
ग्य = ग्ग — यथा योग्ग = योग्य ।
च्य = च्च — यथा उच्चति = उच्यते ।
ड्य = ड्ड — यथा कुड्ड = कुड्य ।
ण्य = ण्ण — यथा पुण्ण = पुण्य ।
त्य = च्च — यथा आहच्च = आहत्य, एकच्च = एकत्य
प्य = प्प — यथा तप्पति = तप्यते ।
भ्य = ब्भ — यथा लब्भति = लभ्येत ।
र्य = रिय — यथा आचरिय = आचार्य, सुरिय = सूर्य ।

बहुधा र्य का रूप य्यिर में बदल जाता है यथा आयिर = आर्य, भयिरा = भार्या ।

कभी कभी र्य का रूप य्य में बदल जाता है यथा—
अय्य = आर्य; जिय्यति = जीर्यति ।

कभी कभी र्य का रूप ल्ल में बदल जाता है यथा—
पल्लंक = पर्यंक ।

व्य का रूप बहुधा ब्ब में बदल जाता है—यथा
अभब्ब = अभव्य; सिब्बति = सीव्यति ।

ह्य का रूप कभी कभी य्ह में बदल जाता है—यथा
मय्हं = मह्यं ।

मूर्द्धन्य रेफ अपने बाद वाले व्यंजनका रूप ग्रहण करता है । यथा—

र्क = क्क—यथा सक्करा = शर्करा
र्ग = ग्ग—यथा वग्ग = वर्ग
र्च = च्च—यथा अच्चि = अर्चिः
र्छ = च्छ—यथा मुच्छति = मूर्छति
र्ज = ज्ज—यथा सज्ज = सर्ज
र्ण = ण्ण—यथा कण्ण = कर्ण
र्त = त्त—यथा आवट्ट = आवर्त
र्थ = त्थ—यथा अत्थ = अर्थ
र्द = द्द—यथा अद्दित = अर्दित
र्प = प्प—यथा कप्पूर = कर्पूर
र्व = ब्ब—यथा अब्बुद = अर्वुद
र्भ = ब्भ—यथा गब्भ = गर्भ
र्म = म्म—यथा कम्म = कर्म
र्श = स्स—यथा दस्सन = दर्शन

बहुधा रेफ (किसी व्यञ्जनके बाद ही आनेवाला र) अपने पहिलेके व्यंजनका रूप ग्रहण करता है, यथा--

क्र = क्क — यथा वक्क = वक्र

ग्र = ग्ग — यथा वग्ग = व्यग्र

त्र = त्त — यथा सत्तु = शत्रु

त्र = त्थ — यथा तत्थ, यत्थ, कत्थ = तत्र, यत्र, कुत्र

द्र = द्द — यथा हलिद्दी = हरिद्री

प्र = प — यथा पिय = प्रिय; पति = प्रति

व्र यदि शब्दके आदिमें हो तो व्र का रूप व में बदल जाता है यथा — वजति = व्रजति।

व्र यदि शब्दके बीचमें हो तो व्र का रूप व्व में बदल जाता है यथा-गिरिब्बज = गिरिव्रज।

बहुधा श के बाद र् का लोप हो जाता है यथा-सावक = श्रावक।

ल् बहुधा अपने बाद वाले व्यंजनका रूप ग्रहण करता है—यथा कप्प = कल्प; पगब्भ = प्रगल्भ; जम्म = जाल्म

ल्व = ल्ल — यथा खल्लाट = खल्वाट,

र्ल = ल्ल — यथा दुल्लभ = दुर्लभ।

व् बहुधा अपने पहिले वाले व्यंजनका रूप ग्रहण करता है, यथा-पक्क = पक्व; चत्तारो = चत्वारः।

द्व का वकार बहुधा लोप हो जाता है यथा दीप = द्वीप

ध्व = द्ध — यथा अद्धा = अध्वन्।

श्‌का रूप इस प्रकार बदल जाता है--

श्व = स्स – यथा अस्स = अश्व।

श्च = च्छ – यथा निच्छरति = निश्चरति

श्न = ञ्ह – यथा पञ्ह = प्रश्न

क्ष का रूप बहुधा क्ख अथवा च्छ में बदल जाता है – यथा चक्खु = चक्षुः; गवक्ख = गवाक्ष; रुक्ख तथा वच्छ = वृक्ष; तक्खसिला = तक्षशिला

ष्क तथा स्क = क्ख – यथा निक्ख = निष्क

ष्ट तथा ष्ठ = ट्ठ – यथा भट्ठ = भ्रष्ट

ष्प तथा ष्फ = प्फ – यथा पुप्फ = पुष्पः निप्फल = निष्फल

ष्ण = ण्ह – यथा उण्ह = उष्ण

त्स बहुधा च्छ में बदल जाता है यथा – संवच्छर = संवत्सर; उच्छंग = उत्संग

कारकोंके रूप

संस्कृतकी तरह पालीमें भी सात विभक्तियां हैं। पर पालीमें द्विवचन नहीं होता। चतुर्थी तथा षष्ठीका रूप प्रायः एक ही रहता है। इसी तरहसे तृतीया तथा पंचमीका रूप भी बहुधा समान रहता है। संस्कृतकी तरह पालीमें भी तीन लिंग होते हैं।

अकारान्त पुल्लिंग धम्म शब्द

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	धम्मो	धम्म, धम्मासे
कर्म	धम्मं	धम्मे
करण	धम्मेन	धम्मेभि, धम्मेहि

संप्रदान	धम्मस्स (धम्माय)	धम्मानं
अपादान	धम्मा, धम्मस्मा, धम्मम्हा	धम्मेभि, धम्मेहि
संबन्ध	धम्मस्स	धम्मानं
अधिकरण	धम्मे, धम्मस्मिं धम्मम्हि	धम्मेसु
संबोधन	धम्म, धम्मा	धम्मा

अकारांत नपुंसकलिंग रूप शब्द

	एकवचन	
कर्त्ता, संबोधन, कर्म	रूपं	रूपानि, रूपा
करण	रूपेन	रूपेभि, रूपेहि
संप्रदान	रूपस्स (रूपाय)	रूपानं
अपादान	रूपा, रूपस्मा, रूपम्हा	रूपेभि, रूपेहि
संबन्ध	रूपस्स	रूपानं
अधिकरण	रूपे, रूपस्मिं रूपम्हि	रूपेसु

अकारांत स्त्रीलिंग कञ्ञा शब्द

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	कञ्ञा	कञ्ञा, कञ्ञायो
संबोधन	कञ्ञे	कञ्ञा, कञ्ञायो
कर्म	कञ्ञं	कञ्ञा, कञ्ञायो
करण	कञ्ञाय	कञ्ञाभि, कञ्ञाहि

संप्रदान	कञ्ञाय	कञ्ञानं
अपादान	कञ्ञाय	कञ्ञाभि, कञ्ञाहि
संबन्ध	कञ्ञाय	कञ्ञानं
अधिकरण	कञ्ञायं, कञ्ञाय	कञ्ञासु

इकारांत पुल्लिंग **अग्गि** शब्द

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता संबोधन	अग्गि	अग्गयो, अग्गी
कर्म	अग्गिं	अग्गी, अग्गयो
करण	अग्गिना	अग्गीभि, अग्गीहि
संप्रदान	अग्गिनो, अग्गिस्स	अग्गीनं
अपादान	अग्गिना, अग्गिम्हा अग्गिस्मा	अग्गीभि, अग्गीहि
संबन्ध	अग्गिनो, अग्गिस्स	अग्गीनं
अधिकरण	अग्गिस्मिं, अग्गिम्हि	अग्गीसु

इकारांत नपुंसकलिंग **अक्खि** शब्द

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता संबोधन	अक्खि, अक्खिं,	अक्खीनि, अक्खी
कर्म	अक्खिं	अक्खीनि, अक्खी
करण	अक्खिना	अक्खीभि, अक्खीहि
संप्रदान	अक्खिनो, अक्खिस्स	अक्खीनं
अपादान	अक्खिना, अक्खिस्मा, अक्खिम्हा	अक्खीभि, अक्खीहि
संबन्ध	अक्खिनो, अक्खिस्स	अक्खीनं
अधिकरण	अक्खिस्मिं, अक्खिम्हि	अक्खीसु

इकारांत स्त्रीलिंग रत्ति शब्द

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता, संबोधन	रत्ति	रत्तियो, रत्ती
कर्म	रत्तिं	रत्ती, रत्तियो
करण, अपादान	रत्तिया	रत्तीभि, रत्तीहि
संप्रदान, संबन्ध	रत्तिया	रत्तीनं
अधिकरण	रत्तियं, रत्तिया	रत्तीसु,

ईकारान्त स्त्रीलिंग नदी शब्द

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता, संबोधन	नदी	नादियो, नज्जो, नदी
कर्म	नदिं	नदी, नदियो, नज्जे
करण, अपादान	नदिया, नद्या, नज्जा	नदीभि, नदीहि
संप्रदान, संबन्ध	नदिया, नद्या, नज्जा	नदीनं
अधिकरण	नदियं, नज्जं, नदिया	नदीसु

उकारान्त पुलिंग भिक्खु शब्द

कर्त्ता	भिक्खु	भिक्खवो, भिक्खू
संबोधन	भिक्खु	भिक्खवो, भिक्खवे, भिक्खू

कर्म	भिक्खुं	भिक्खू, भिक्खवो
करण	भिक्खुना	भिक्खूभि, भिक्खूहि
संप्रदान } संबन्ध }	भिक्खुनो, भिक्खुस्स	भिक्खूनं
अपादान	भिक्खुना, भिक्खुस्मा, भिक्खुम्हा	भिक्खूभि, भिक्खूहि
अधिकरण	भिक्खुस्मिं, भिक्खुम्हि	भिक्खूसु

उकारान्त स्त्रीलिंग **धेनु** शब्द

कर्त्ता } संबोधन }	धेनु	धेनुवो, धेनुयो, धेनू
कर्म	धेनुं	धेनू, धेनुयो
करण } अपादान }	धेनुया	धेनूभि, धेनूहि
संप्रदान } संबन्ध }	धेनुया	धेनूनं
अधिकरण	धेनुयं, धेनुया	धेनूसु

पुल्लिंग **अत्तन्** (आत्मन्) शब्द

	एक वचन	बहुवचन
कर्त्ता	अत्ता	अत्तानो
संबोधन	अत्त, अत्ता	अत्तानो
कर्म	अत्तानं, अत्तं	अत्तानो
करण	अत्तना (अत्तेन)	अत्तनेभि, अत्तनेहि

संप्रदान संबन्ध	अत्तनो	अत्तानं
अपादान	अत्तना	अत्तनेभि, अत्तनेहि
अधिकरण	अत्तनि	अत्तनेसु

पुल्लिंग दण्डिन् शब्द

कर्त्ता	दण्डी	दण्डिनो, दण्डी
संबोधन	दण्डि	दण्डिनो, दण्डी
कर्म	दण्डिनं, दण्डिं	दण्डिनो, दण्डी
करण	दण्डिना	दण्डीभि, दण्डीहि
संप्रदान संबन्ध	दण्डिनो, दण्डिस्स	दण्डीनं
अपादान	दण्डिना, दण्डिस्मा, दण्डिम्हा	दण्डीभि, दण्डीहि
अधिकरण	दण्डिनि, दण्डिस्मिं, दण्डिम्हि	दण्डीसु

पुल्लिंग सत्था (शास्तृ) शब्द

कर्त्ता	सत्था	सत्थारो
संबोधन	सत्थ, सत्था	सत्थारो
कर्म	सत्थारं, सत्थरं	सत्थारो, सत्थारे
करण	सत्थरा, सत्थारा, सत्थुना	सत्थारेभि, सत्थारेहि
संप्रदान संबन्ध	सत्थु, सत्थुस्स	सत्थानं, सत्थारानं
अपादान	सत्थरा, सत्थारा	सत्थारेभि, सत्थारेहि
अधिकरण	सत्थरि	सत्थारेसु

पुल्लिंग पिता (पितृ) शब्द ।

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	पिता	पितरो
संबोधन	पित, पिता	पितरो
कर्म	पितरं, पितुं	पितरो, पितरे
करण	पितरा, पितुना, पेत्या	पितरेभि पितरेहि, पितूभि, पितूहि
संप्रदान } संबन्ध }	पितु, पितुनो, पितुस्स	पितरानं, पितानं, पितूनं पितुम्नं
अपादान	पितरा	पितरेभि, पितरेहि, पितूभि पितूहि
अधिकरण	पितरि	पितरेसु, पितूसु, ।

स्त्रीलिंग माता (मातृ) शब्द ।

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	माता	मातरो
संबोधन	मात, माता	मातरो
कर्म	मातरं	मातरो, मातरे
करण } अपादान }	मातरा, मातुया, मात्या	मातरेभि, मातरेहि, मातूभि मातूहि
संप्रदान } संबन्ध }	मातु, मातुया, मात्या	मातरानं, मातानं, मातूनं, मातुम्नं
अधिकरण	मातरि, मातुयं, मात्यं मातुया, मात्या	मातरेसु, मातूसु

सर्वनाम अम्ह (अस्मद्) शब्द ।

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	अहं	वयं, मयं, अम्हे
कर्म	मं, ममं,	अस्मे, अम्हे, अम्हाकं
करण अपादान	मया	अम्हेभि, अम्हेहि
संप्रदान संबन्ध	मम, ममं, मय्हं अम्हं	अम्हाकं, अम्हं
अधिकरण	मयि	अम्हेसु,

सर्वनाम तुम्ह (युष्मद्) शब्द ।

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	त्वं, तुवं	तुम्हे
कर्म	त्वं, तुवं, तं, तवं	तुम्हे, तुम्हाकं
करण अपादान	त्वया, तया	तुम्होभि, तुम्हेहिं
संप्रदान संबन्ध	तव, तवं, तुय्हं, तुम्हं	तुम्हाकं, तुम्हं
अधिकरण	त्वयि, तयि	तुम्हेसु

सर्वनाम इम (इदम्) शब्द

पुल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	अयं	इमे
कर्म	इमं	इमे

करण	इमिना, अनेन	इमेभि, इमेहि एभि, एहि
संप्रदान } संबन्ध }	इमस्स, अस्स	इमेसं, इमेसानं, एसं, एसानं
अपादान	इमस्मा, इमम्हा, अस्मा	इमेभि, इमेहि, एभि, एहि
अधिकरण	इमस्मिं, इमम्हि, अस्मिं	इमेसु

स्त्रीलिंग

कर्त्ता	अयं	इमा, इमायो
कर्म	इमं	इमा, इमायो
करण	इमाय	इमाभि, इमाहि
संप्रदान } संबन्ध }	इमिस्सा, इमिस्साय, इमाय, अस्सा, अस्साय	इमासं इमासानं
अपादान	इमाय	इमाभि, इमाहि
अधिकरण	इमिस्सं, इमासं, इमायं अस्सं	इमासु

नपुंसकलिंग

कर्त्ता	इदं, इमं	इमानि
कर्म	इदं, इमं	इमानि

[शेष पुल्लिंगकी तरह]

सब्ब (सर्व) शब्द ।

पुल्लिंग

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	सब्बो	सब्बे
कर्म	सब्बं	सब्बे

करण	सब्बेन	सब्बेहि, सब्बेभि
संप्रदान संबन्ध	सब्बस्स	सब्बेसं, सब्बेसानं
अपादान	सब्बस्मा, सब्बम्हा	सब्बेहि, सब्बेभि
अधिकरण	सब्बस्मिं, सब्बम्हि	सब्बेसु
सम्बोधन	सब्ब, सब्बा	सब्बे

सब्ब शब्दके स्त्रीलिंगमें आकारान्त कञ्ञा शब्दकी तरह रूप चलता है। केवल संप्रदान और संबन्धमें विकल्प रूप इस प्रकार होता है—एकवचन, सब्बस्सा; बहुवचन सब्बासं, सब्बासानं। अधिकरणके एकवचनमें 'सब्बस्सं' यह रूप होता है।

सब्ब शब्दके नपुंसकलिंगमें कर्त्ता और कर्मके एकवचनमें सब्बं और बहुवचनमें सब्बानि होता है। संबोधनके एकवचनमें सब्ब, सब्बा और बहुवचनमें सब्बानि होता है। शेष रूप पुल्लिंगकी तरह होते हैं।

एक शब्द

सर्वत्र सब्ब शब्दकी तरह रूप चलता है।

द्वि शब्द

द्वि शब्द नित्य बहुवचनान्त तथा तीनों लिंगोंमें समानरूप होता है।

	बहुवचन
कर्त्ता कर्म	दुवे, द्वे
करण अपादान	द्वीहि, द्वीभि

संप्रदान / संवन्ध	द्विन्नं द्विन्नं
अधिकरण	द्वीसु

नित्य बहुवचनान्त ति (त्रि) शब्द

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
कर्त्ता / कर्म	तयो	तिस्सो	तीणि
करण / अपादान	तीहि तीभि	तीहि तीभि	तीहि तीभि
संप्रदान / संवन्ध	तिण्णं तिण्णन्नं	तिस्सन्नं	तिण्णं, तिण्णन्नं
अधिकरण	तीसु	तीसु	तीसु

नित्य बहुवचनान्त चतु (चतुर्) शब्द

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
कर्त्ता / कर्म	चत्तारो चतुरो	चतस्सो	चत्तारि
करण / अपादान	चतूहि चतूभि	चतूहि चतूभि	चतूहि चतूभि
संप्रदान / संवन्ध	चतुन्नं	चतस्सन्नं	चतुन्नं
अधिकरण	चतूसु	चतूसु	चतूसु

पंच (पंचन्) शब्द

तीनों लिंगोंमें समान रूप

कर्त्ता / कर्म	पंच

करण, अपादान	पंचहि, पंचभि
संप्रदान, संबन्ध	पंचन्नं
अधिकरण	पंचसु

छ (षष्), सत्त (सप्तन्), अट्ठ (अष्टन्) नव (नवन्), दस (दशन्) इत्यादि शब्दोंका रूप पंच शब्दकी तरह चलता है। सत (शत), सहस्स (सहस्र), लक्ख (लक्ष) इत्यादि संख्यावाचक नपुंसकलिंग शब्दोंका रूप रूप शब्दकी तरह चलता है।

धातुओंके रूप

पालीमें आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों होते हैं। किन्तु आत्मनेपदका प्रयोग कम होता है।

पालीमें धातु-समूह भ्वादि, रुधादि, दिवादि, स्वादि, क्र्यादि, तनादि और चुरादि इन सात गणोंमें विभक्त है।

पालीमें लट्, लोट्, विधिलिङ्, लिट्, लङ्, लुङ्, लृट्, लृङ् यह आठ प्रकारके लकार होते हैं। आशीर्लिङ्का प्रयोग नहीं होता। लिट् लकारका प्रयोग भी बहुत कम होता है। भूतकालके लिये लुङ्का प्रयोग बहुत अधिक होता है।

भ्वादिगण—भू धातु

लट् (वर्त्तमान)

	परस्मैपद		आत्मनेपद	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	भवति	भवन्ति	भवते	भवन्ते

	परस्मैपद		आत्मनपद	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
मध्यम	भवासि	भवथ	भवसे	भवव्हे
उत्तम	भवामि	भवाम	भवे	भवाम्हे

लोट् (आज्ञा)

प्रथम	भवतु	भवन्तु	भवन्तं	भवन्तं
मध्यम	भव, भवाहि	भवथ	भवस्सु,	भवव्हो
उत्तम	भवामि	भवाम	भवे	भवामसे

लिङ् (विधि)

प्रथम	भवेय्य, भवे	भवेय्युं	भवेथ	भवेरं
मध्यम	भवेय्यासि, भवे	भवेय्याथ	भवेथो	भवेय्यव्हो
उत्तम	भवेय्यामि, भवे	भवेय्याम	भवेय्यं	भवेय्याम्हे

लिट् (परोक्ष)

प्रथम	बभूव	बभूवु	बभूवित्थ	बभूविरे
मध्यम	बभूवे	बभूवित्थ	बभूवित्थो	बभूविव्हो
उत्तम	बभूव	बभूविम्ह	बभूवि	बभूविम्हे

लङ् (अनद्यतन भूत)

प्रथम	अभवा	अभवू	अभवत्थ	अभवत्थुं
मध्यम	अभवो	अभवत्थ	अभवसे	अभवव्हं
उत्तम	अभवं	अभवम्हा	अभवि	अभवम्हसे

लुङ् (सामान्य भूत)

प्रथम	अभवी, अभवि	अभवुं, अभाविसुं	अभवा	अभवू
मध्यम	अभवो	अभवित्थ	अभाविसे	अभाविव्हे
उत्तम	अभविं	अभविम्हा	अभवं	अभाविम्हे

लृट् (सामान्यभूत)

प्रथम	भविस्सति	भविस्सन्ति	भविस्सते	भविस्सन्ते
मध्यम	भविस्ससि	भविस्सथ	भविस्ससे	भविस्सव्हे
उत्तम	भविस्सामि	भविस्साम	भविस्सं	भविस्साम्हे

लृङ् (क्रियातिपत्ति)

प्रथम	अभविस्सा, अभविस्स	अभविस्संसु	अभविस्सथ, अभविस्सिंसु
मध्यम	अभविस्से, अभविस्स	अभविस्सथ	अभविस्ससे, अभविस्सव्हे
उत्तम	अभविस्सं	अभविस्सम्हा, अभविस्सम्ह	अभविस्सं, अभविस्साम्हसे

पालीमें भू बहुधा हू में बदल जाता है, तब उसका रूप इस प्रकार चलता है—

लट् (वर्तमान)

परस्मैपद

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	होति	होन्ति
मध्यम	होसि	होथ
उत्तम	होमि	होम

लुङ् (सामान्यभूत)

परस्मैपद

प्रथम	अहोसि, अहू	अहेसुं, अहुवुं
मध्यम	अहोसि	अहोसित्थ
उत्तम	अहोसिं, अहुं	अहोसिम्ह, अहुम्ह

इसी प्रकार भू की तरह पच् (पचति इ०), स्था (तिट्ठति इ०) पा (पिबति इ०), दृश (पस्सति इ०), गम् (गच्छति इ०), वद् (वज्जति इ०), जि (जयति या जेति या जिनाति इ०) के रूप भी चलते हैं ।

रुधादिगण ।

परस्मैपदमें रुध् धातुका रुन्धति इ० । छिद् धातुका छिन्दति इ० । भिद् धातुका भिन्दति इ०, । भुज् धातुका भुंजति इ० । आत्मनेपदमें रुन्धते. छिन्दते, भुंजते इ० ।

दिवादि गण ।

दिव् धातुका दिब्बति इ० । सिव् धातुका सिब्बति इ० । युध् धातुका युज्झति इ० । बुध् धातुका बुज्झति इ० । तुष् धातुका तुस्सति इ० ।

स्वादि गण ।

श्रु धातुका सुणोति सुणाति इ० । प्र + हि धातुका पहिणोति, पहिणाति इ० । वृ धातुका वुणोति वुणाति इ० । प्र+आप् धातुका पापुणाति, पापुणोति इ० ।

क्र्यादि गण ।

क्री धातुका किणाति इ० । धू धातुका धुनाति इ० । लू धातुका लुनाति इ० । ज्ञा धातुका जानाति इ० । गह् धातुका गण्हाति इ० ।

तनादि गण ।

तन् धातुका तनोति इ०, । कृ धातुका करोति इ० ।

चुरादि गण ।

चुर् धातुका चोरयति चोरेति इ० । चिन्त धातुका चिन्तयति, चिन्तेति इ० । गण धातुका गणयति, गणेति इ० । विद् धातुका वेदयति वेदेति इ० ।

णिजन्त (प्रेरणार्थक)

प्रेरणाके अर्थमें धातुके उत्तर संस्कृतमें णिच् प्रत्यय लगाया जाता है पर पालीमें उसके स्थानपर अय तथा आपय प्रत्यय हो जाता है यथा कृ धातुका णिजन्तमें कारयति, कारापयति इ० होता है । कभी कभी पदान्तगत अय के स्थानपर ए हो जाता है इस लिये णिजन्तमें प्रत्येक धातुके निम्नलिखित दो रूप और होते हैं—यथा कारेति, कारायेति इ० ।

इसी प्रकार पच् धातुका पाचयति पाचेति, पाचापयति, पाचापेति इ० । हन् धातुका घातयति घातेति, घातापयति, घातापेति इ० । गम् धातुका गमयति, गामयति, गामेति, गच्छापयति, गच्छापेति इ० ।

कृदन्त

शतृ (अन्त) प्रत्यय

संस्कृतके शतृ प्रत्ययके स्थानपर पालीमें अन्त प्रत्यय होता है—यथा गम् + अन्त = गच्छन्तो, कृ + अन्त = कुब्बन्तो, करोन्तो । भुंज् + अन्त = भुंजन्तो । खाद् + अन्त = खादन्तो, चर् + अन्त = चरन्तो ।

क्त (त) और क्तवतु (तवन्तु) प्रत्यय

संस्कृतके क्त और क्तवतु प्रत्ययोंके स्थानपर पालीमें

यथाक्रम त और तवन्तु प्रत्यय होते हैं। यथा हु+त=हुतो; हु+तवन्तु=हुतवा। वच्+त=वुत्तो, उत्तो। वस्+त=उत्थो, वुत्थो, उसितो, वुसितो, वासितो। यज्+त=यिट्ठो। भंज्+त=भग्गो। नृत्+त=नच्चं. नट्टं। वृध्+त=वुड्ढो। अपि+नह्+त= पिलद्धं। दा+त=दत्तं, दिण्णं।

तव्य (तब्ब), अनीय और यत् (य)

भू+तब्ब=भवितब्बं; भू+अनीय=भवनीयं। शी+तब्ब=सयितब्बं; शी+अनीय=सयनीयं। श्रु+तब्ब=सुणितब्बं; श्रु+अनीय=सवणीयं। हृ+य=हारियं। कृ+य=कारियं। भू+य=भब्बं। दा+य=देय्यं।

क्त्वा (त्वा, त्वान, तून)

संस्कृतके क्त्वा प्रत्ययके स्थानपर पालीमें त्वा, त्वान और तून प्रत्यय होते हैं। इनमेंसे तून प्रत्ययका प्रयोग कम होता है। यथा—कृ+त्वा=कत्वा, करित्वा; कृ+त्वान=कत्वान; कृ+तून=कत्तून। गम्+त्वा=गन्त्वा, गम्+त्वान=गन्त्वान; गम्+तून=गन्तून। हन्+त्वा=हन्त्वा; हन्+त्वान=हन्त्वान; हन्+तून=हन्तून।

ल्यप् (य)

संस्कृतके ल्यप् प्रत्ययके स्थानपर पालीमें य प्रत्यय होता है। किन्तु संस्कृतकी तरह पालीमें यह नियम नहीं है कि जब धातुके पहिले उपसर्ग हो तभी य प्रत्यय जोड़ा जाय। उपसर्ग न रहने पर भी धातुमें य प्रत्यय जोड़ा जा सकता है। इसी प्रकार कभी कभी उपसर्ग रहनेपर भी त्वा

प्रत्यय लगा दिया जाता है यथा--वन्द् + य = विन्दिय; अभि + वन्द् + त्वा = अभिवन्दित्वा । उप + नी + य = उपनीय; उप + नी + त्वा = उपनेत्वा ।

तुम् (तुं, तवे इत्यादि)

संस्कृतके तुम् प्रत्ययके स्थानपर पालीमें तुं और तवे प्रत्यय होते हैं । इनमेंसे तवे प्रत्ययका प्रयोग बहुत कम होता है । यथा—कृ + तुं = कत्तुं, कातुं । मन् + तुं = मन्तुं, मनितुं । श्रु + तुं = सोतुं, सुणितुं । ज्ञा + तुं = ञातुं, जानितुं । कृ + तवे = कत्तवे, कातवे । नी + तवे = नेतवे ।

कभी कभी तुम् के अर्थमें ताये और तुये प्रत्यय भी लगते हैं यथा—दृश + ताये = दक्खिताये । गण + तुये = गणेतुये । मृ + तुये = मरितुये ।

अव्यय

कुत्र = कुहिं, कुहं, कहं, क्व, कुत्र, कुत्थ ।
तत्र = तहिं, तहं, तत्र, तत्थ ।
इह = इध, इह ।
अत्र = अत्थ, एत्थ, अत्र ।
सर्वत्र = सब्बत्र, सब्बत्थ, सब्बधि ।
परत्र = परत्थ, परत्र ।
अन्यत्र = अञ्ञत्र, अञ्ञत्थ ।

तदानीं = तदानि । सर्वदा = सब्बदा । अद्य = अज्ज । पुरः = पुरे । नित्यं = निच्चं । अभीक्ष्णं = अभिक्खणं । एतावता = एत्तावता । कच्चित् = कच्चि । किं तत् = किं नं । किंस्वित् = किंसु । किंचित् = किंचि । किल = किर । कियत् =

कीव। खलु=खो। तत्=तं। तत्=नं। पश्चात्=पच्छा। पुनः=पन। पुरस्तात्=पुरत्था। मृषा=मुसा। यत्=यं। तच्चेत्, चेत्=सचे। सार्द्धं=सद्धिं। सम्यक्=सम्मा। साधु=साहु। तद्यथापि=सेय्यथापि। तद्यथेदं=सेय्यथीदं।

परिशिष्ट—३

अशोकका संक्षिप्त व्याकरण

१—गिरनार

स्वरोंमें परिवर्त्तन ।

ह्रस्व स्वरके स्थानपर दीर्घ स्वर—यथा "आनन्तर" (६ शिलालेख, ८ लाइन) = अनन्तरं; "चिकीछा" (२ शि० ले०, ५ ला०,) = चिकित्सा; "मधूरिताय" (१४ शिं० ले०, ४ ला०) = मधुरतया इ० ।

शब्दके अन्तमें ह्रस्व स्वरके स्थानपर दीर्घ स्वर—यथा "चा" (४ शि० ले०, ११ ला०) = च; "एसा" (१३ शि० ले०, ४ ला०) = एषः; "तत्रा" (१३ शि० ले०, १ ला०) = तत्र इ० ।

साधारण अनुस्वार अथवा संयुक्त व्यंजनके पूर्व दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है पर कभी कभी व्यंजन द्वित्व नहीं होता और उसके बदलेमें पहिले वाला स्वर दीर्घ कर दिया जाता है—यथा "धाम" (५ शि० ले०, ४ ला०) = धर्म; "वास" (५ शि० ले०, ४ ला०) = वर्षं इ० । कभी कभी संयुक्त व्यंजनके पहिले वाला स्वर दीर्घ बना रहता है—यथा "बाम्हण" (४ शि० ले०, २ ला०); "पराक्रमेण" (५ शि० ले०, ११ ला०) इ० ।

दीर्घ स्वरके स्थानपर ह्रस्व स्वर—यथा "आराधि" (६ शि० ले०, ६ ला) आराद्धिः; "दनं" (६ शि० ले०, ७ ला०)=दानं; ञातिकेन" (६ शि० ले०, ८ ला०)=ज्ञातिकेन।

शब्दके अन्तमें दीर्घ स्वरके स्थानपर ह्रस्व स्वर—यथा 'तथ" (१२ शि० ले०, ६ ला०)=तथा; "व" (५ शि० ले०, ५ ला०)=वा इ०।

ऋ=ए—यथा "एत" (८ शि० ले०, १ ला०)=अत्र
ऋ=र—यथा "ब्रछा" (२ शि० ले०, ८ ला०)=वृक्षाः
ऋ=अ—यथा "वढी" (१२ शि० ले०, २ ला०)= वृद्धि; "मगो" (१ शि० ले०, ११ ला०) =मृगः
ऋ=इ—यथा "तारिस" (१४ शि० ले०, ५ ला०)= तादृश
ऋ=उ—यथा "परिपुछा" (८ शि० ले०, ४ ला०)= परिपृच्छा

व्यञ्जनोंमें परिवर्त्तन

घ=ह—यथा "लहुका" (१२ शि० ले०, ३ ला०)=लघुकाः।
तवर्ग=टवर्ग—यथा "पटि" (८ शि० ले०, ४ ला०) =प्रति; "वढी" (१२ शि० ले०, २ ला०)=वृद्धि; "दसरा" (४ शि० ले०, ३ ला०)=दर्शन
ल=र—यथा "पिरिंदेसु" १३ शि० ले०, ६ ला०)=पुलिंदेषु।
क्त=त—यथा 'अभिसितेन" (३ शि० ले०, १ ला०)= अभिषिक्तेन
क्य=क-यथा "सकं" (१३ शि० ले०, ६ ला०)=शक्यं
क्र=क—यथा "अतिकांतं" (८ शि० ले०, १ ला०)=अतिक्रान्तं

द्व=छ—यथा "अछतिं" (१३ शि० ले०, ७ ला०)=अद्वातिं; "व्रछा" (२ शि० ले०, ८ ला०)=वृद्धाः; "छुद्केन" (१० शि० ले० ४ ला०)=क्षुद्रकेन।

त्त=ख—यथा "संखितेन" (१४ शि० ले०, २ ला०)=संक्षिप्तेन

ग्न=ग—यथा 'अगिखंधानि" (४ शि० ले० ४ ला०)= =अग्निस्कन्धाः

ग्र=ग—यथा "अगेन" (१० शि० ले०, ४ ला०)=अग्रेण

त्म—त्प—यथा "आत्पपासंडं" (१२ शि० ले०, ५ ला०)= आत्मपाषण्डम्

त्य=च—यथा "आचायिक" (६ शि० ले०, ७ ला०)=आत्ययिकं

त्व=त्प—यथा "आलोचेत्पा" (१४ शि० ले०, ६ ला०)=आ-लोचयित्वा; "आरभित्पा" (१ शि० ले०, ३ ला०)=आरभित्वा (आलभ्य); "चत्पारो" (१३ शि० ले०, ८ ला०)=चत्वारो।

त्स=छ—यथा "चिकीछ" (२ शि० ले०, ४ ला०)=चिकित्सा

द्य=ज—यथा "अज" (४ शि० ले०, ५ ला०)=अद्य

द्य=य—यथा "उयान" (६ शि० ले०, ४ ला०)=उद्यान

ध्य=झ—यथा "मझम" (१४ शि० ले०, २ ला०)=मध्यम

ध्र=ध—यथा "धुवो" (१ शि० ले० १२ ला०)=ध्रुवो

प्त=त—यथा 'असमातं" (१४ शि० ले०, ५ ला०)= असमाप्तं

भ्र=भ—यथा "भाता" (११ शि० ले०, ३ ला०)=भ्राता

र्घ=घ—यथा "दीघ" (१० शि० ले०, १ ला०)=दीर्घ

र्व=व—यथा "सव" (६ शि० ले०, २ ला०)=सर्व

र्ह=रह्—यथा "गरहा"=गर्हा

ल्य=ल—यथा "कलाण" (५ शि० ले०, १ ला०)=कल्याणं

श्च = छ—यथा "पछा" (१ शि० ले०, १२ ला०) = पश्चात्।
श्य = स—यथा "पसति" (१ शि० ले०, ५ ला०) = पश्यति।
स्म = म्ह—यथा सप्तमीके एकवचनमें स्मिन्के स्थानपर म्हि हो जाता है।
स्य = स—यथा षष्ठीके एकवचनका स्य चिन्ह स में बदल जाता है।

गिरनारके शिला-लेखमें र, प्र, व्य, स्त और स्व में कुछ परिवर्तन नहीं होता।

कारकोंके रूप

गिरनारके लेखमें पुल्लिंग और नपुंसकलिंगमें बहुत कम भेद दिखलायी पड़ता है।

हलन्त शब्द अजन्त हो जाते हैं यथा परिषद् = परिसा; कर्मन् = कंम। पर कुछ शब्दोंमें संस्कृतका शुद्ध रूप सुरक्षित है—यथा "राजा", "राञो" = राज्ञः, "राञा" = राज्ञा, "राजानो", "तिष्टन्तो" = तिष्ठन्तो (४ शि० ले०, ८ ला०), "भात्रा" (६ शि० ले०, ६ ला०) "पिता" (६ शि० ले०, ५ ला०), "यसो" = यशो (१० शि० ले०, १ ला०), "प्रियदसि" = प्रियदर्शी, "पियदसिनो" = प्रियदर्शिनः इत्यादि।

अकारान्त पुल्लिंग

प्रथमा एकवचन—का रूप प्रायः ओकारान्त होता है पर कहीं कहीं मागधीकी तरह एकारान्त भी मिलता है यथा "अपपरिस्रवे" (१०शि० ले०, ३ ला०) "देवानां पिये" (१२ शि० ले०, १ ला०)।

द्वितीया एकवचन—का रूप प्रायः एकारान्त होता है यथा "अथे" (६ शि० ले०, ४ ला०) = अर्थं; "युते" (३ शि० ले०, ६ ला०) = युक्तं।

सप्तमी एकवचन—के अन्तमें अम्हि और ए दोनों मिलते हैं यथा "काले", "ओरोधनम्हि" "गभागारम्हि" (६शि० ले०, ३ ला०)।

अकारान्त नपुंसकलिंग

प्रथमा एकवचन—का रूप प्रायः मकारान्त होता है पर कभी कभी एकारान्त भी हो जाता है यथा "अञे", "बहुविधे" (४ शि० ले०, ७ ला०) "धंमचरणे" (४ शि० ले०, ७ ला०) "दाने" (७ शि० ले०, ३ ला०), "मूले" (६ शि० ले०, १० ला०)।

प्रथमा बहुवचन—के अन्तमें प्रायः आनि होता है पर एक स्थान-पर आकारान्त भी पाया गया है यथा दसणा (४ शि० ले०, ३ ला०)।

आकारान्त स्त्रीलिंग

तृतीया एकवचन—के अन्तमें आय होता है यथा "माधूरताय" (१४ शि० ले०, ४ ला०)।

सप्तमी एकवचन—के अन्तमें आयं होता है यथा "परिसायं" (६ शि० ले० ७ ला०)।

प्रथमा बहुवचन—के अन्तमें आयो होता है यथा "माहिडायो" (६ शि० ले०, ३ ला०)।

धातुओंके रूप

क्त्वा प्रत्यय

गिरनारके शिलालेखमें क्त्वा का रूप त्पा में बदल जाता है यथा "आलोचेत्पा" (१४ शि० ले०, ६ ला०) = आलोचयित्वा।

णिजन्त

प्रेरणार्थक क्रियामें अय अथवा पय लगा दिया जाता है, और अय का ए हो जाता है यथा "आलोचेत्पा" (१४ शि० ले०, ६ ला०)=आलोचयित्वा (आलोच्य), "हापेसति" (५ शि० ले०, ३ ला०)=हापयिष्यति।

धातुओंके रूप प्रायः वैसे ही हैं जैसे संस्कृतमें होते हैं। हां, पालीके नियमोंके अनुसार धातुओंमें स्वर और व्यंजन संबन्धी परिवर्तन अवश्य हो जाते हैं यथा इच्छति का इछति, मन्यते का मंञते इत्यादि।

२—शाहबाज़गढ़ी।

स्वरोंमें परिवर्तन

शाहबाज़गढ़ी और मानसेराके लेखोंमें दीर्घ स्वरके चिन्होंका बिलकुल अभाव है। जहां दीर्घ स्वर होना चाहिये वहां भी ह्रस्व स्वरसे ही काम लिया गया है।

उ के स्थानपर अ—यथा "गरुन" "पन" (६ शि० ले०, १६ ला०)=गुरूणां, पुनः।

ए के स्थानपर इ—यथा "लिखपेशमि" (१४ शि० ले०, १३ ला०) =लेखयिष्यामि।

अ के स्थानपर उ—यथा "ओषुढनि" (२ शि० ले०, ५ ला०) =औषधानि; "मुखमुते" (१३ शि० ले०, ८ ला०)=मुख्यमतः।

अ के स्थानपर ए—यथा "एत्र" (६ शि० ले०, १५ ला०) =अत्र।

ई के स्थानपर ए—यथा "एदिशं" (११ शि० ले०, २३ ला०) =ईदृशं ।

ओ के स्थानपर उ—यथा "लिखपितु" (१ शि० ले०, १ ला०) =लेखितो ।

ऋ के स्थानपर र—यथा "ग्रहथ" (१३ शि० ले०, ४ ला०) =गृहस्थ ।

ऋ के स्थानपर रि—यथा "विस्त्रिटेन" (१४ शि० ले०, १३ ला०) =विस्तृतेन ।

ऋ के स्थानपर रु—यथा "म्रुगो" (१ शि० ले०, ३ ला०)= मृगः ।

ऋ के स्थानपर अ—यथा "दुकटं" (५ शि० ले०, ११ ला०) =दुष्कृतं ।

ऋ के स्थानपर इ—यथा "दिढ" (७ शि० ले०, ५ ला०)= दृढ़ ।

ऋ के स्थानपर उ—यथा "वुढ़ेषु" (५ शि० ले०, १२ ला०) =वृद्धेषु; "मुटे" (१३ शि० ले०, १ ला०) =मृतः ।

व्यंजनोंमें परिवर्तन

गिरनारमें जितने व्यंजन पाये जाते हैं वे सब शाहबाज़गढ़ी और मानसेराके शिलालेखोंमें भी मिलते हैं। इनके अलावा श और ष व्यंजन भी शाहबाज़गढ़ी और मानसेरामें पाये जाते हैं।

ख के स्थानपर क—यथा "कु" (४ शि० ले०, ६ ला०)=खु (खलु)।

ग के स्थानपर क—यथा "मक" (१३ शि० ले०, ६ ला०)= मग (मेगस—साइरीनीका राजा) ।

घ के स्थानपर ह—यथा "लहुक" (१३ शि० ले०, ११ ला०) =लघुकः ।

ज के स्थानपर य—यथा "प्रयुहोतवे" (१ शि० ले०, १ ला०)= प्रजुहोतव्यः (प्रहोतव्यः), "कंबोय" (५ शि० ले०, १२ ला०)=कांबोज ।

ज के स्थानपर च—यथा "व्रचेयं" (६ शि० ले०, १६ ला०)= व्रजेयं ।

त के स्थानपर ट—यथा "संप्रटिपति" (४ शि० ले०, ८ ला०)= संप्रतिपत्तिः; "दुकटं" (५ शि० ले० ११ ला०)=दुष्कृतं; "मुटो" (१३शि० ले०, ६ ला०)=मृतः ।

त के स्थानपर द—यथा "हिदसुखये" (५ शि० ले०, १२ ला०) = हितसुखाय ।

प के स्थानपर व—यथा "अवत्रपेयु" (१३ शि० ले०. ८ ला०) = अपत्रपेयुः (अपत्रपेरन्) ।

ल के स्थानपर र—यथा "अरभिशंति" (१ शि० ले०, २ ला०)=आलभ्यन्ते ।

ष के स्थानपर श—यथा "मनुश" (२ शि० ले०, ४ ला०)= मनुष्य ।

ष के स्थानपर स—यथा 'अभिसित' (४ शि० ले०, १० ला०) =अभिषिक्त ।

स के स्थानपर श—यथा "अनुशशनं" (४ शि० ले०, १० ला०)=अनुशासनं ।

स के स्थानपर ह—यथा "हचे" (६ शि० ले०, २० ला०)=सचेत् ।

संयुक्त व्यंजन

क्त=त—यथा "अभिसित" (५ शि० ले०, ११ ला०)= अभिषिक्त ।

क्य=क—यथा "शको" (१३ शि० ले०, ७ ला०)=शक्यं ।

च=ख—यथा "संखितेन" (१४ शि० ले०, १३ ला०)=संक्षिप्तेन; "खुद्रकेन" (१० शि० ले०, २२ ला०)= क्षुद्रकेन।

च=छ—यथा "मोछये" (५ शि० ले०, १३ ला०)=मोक्षाय।

ख्य=ख—यथा "मुखमुते" (१३ शि० ले०, ८ ला०)= मुख्यमतः ।

ज्य=ज—यथा "जोतिकंधनि" (४ शि० ले०, ८ ला०)= ज्योतिस्कन्धाः ।

ञ्ज—ञ—यथा "वञनतो" (३ शि० ले० ७ ला०)=व्यञ्जनतः ।

त्स=स—यथा "चिकिस" (२ शि० ले०, ४ ला०)=चिकित्सा।

द्ध=ढ—यथा "वढि" (४ शि० ले०, १० ला०)=वृद्धिः ।

प्त=त—यथा "नतरो" (४ शि० ले०, ६ ला०)=नप्तारो ।

प्न=पुन—यथा "प्रपुनाति" (१३ शि० ले०, ६ ला०)=प्राप्नोति।

ब्ध=ध—यथा "लधो" (१३ शि० ले०, १० ला०)=लब्धः ।

र्ग=ग—यथा "सगं" (६ शि० ले०, १६ ला०)=स्वर्गं ।

र्ध=ढ—यथा "वढिशति" (४ शि० ले०, ६ ला०)=वर्धिष्यति।

र्य=रिय—यथा "अनंतरियेन" (६ शि० ले०, १४ ला०)= आनंतर्येण ।

ल्य=ल—यथा "कलण" (५ शि० ले०, ११ ला०)=कल्याणं ।

व्य=व—यथा "वसनं" (१३ शि० ले० ५ ला०)=व्यसनं ।

व्य=विय—यथा "पूजेतविय" (१२ शि० ले०, ३ ला०)= पूजयितव्यः ।

श्च = च—यथा "पच" (१ शि० ले०, ३ ला०) = पश्चात् ।
ष्क = क—यथा "दुकरं" (५ शि० ले०, ११ ला०) = दुष्करं ।
स्क = क—यथा "जोतिकंधनि (४ शि० ले०, ८ ला०) = ज्योतिस्कन्धाः ।
स्थ = थ—यथा चिरथितिक" (५ शि० ले० १३ ला०) = चिरस्थितिकः ।
स्व = स—यथा "सगं" (६ शि० ले० १६ ला०) = स्वर्गं ।
ह्म = म—यथा ब्रमण (४ शि० ले० ७ ला०) = ब्राह्मण ।

शाहबाज़गढ़ी और मानसेराके शिलालेखोंमें क्र, ग्र, त्र, द्र, ध्र, प्र, ब्र, भ्र श्र, स्त, स्त्र, स्त्र में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता ।

र्म, र्व, र्श, का मूर्धन्य रेफ अपने पहिले वाले अक्षरमें मिल जाता है यथा क्रम = कर्म; ध्रम = धर्म; प्रुव = पूर्व; स्त्रव = सर्व; द्रशि = दर्शि ।

कारकोंके रूप

गिरनारकी तरह शाहबाज़गढ़ीमें भी पुल्लिंग और नपुंसक लिंगमें बहुत कम भेद दिखलायी पड़ता है । नपुंसकलिंगके प्रथमा एकवचनका रूप मकारान्त और एकारान्त दोनों पाया जाता है यथा "यदिशं...न भुतप्रुवे तादिश" (४ शि० ले० ८ ला०) । कभी कभी नपुंसकलिंगके प्रथमा और द्वितीया एकवचनका रूप ओकारान्त भी देखा जाता है यथा "ध्रमचरणो" (४ शि० ले० ६ ला०) = धर्माचरणं; "प्रटिवेदेतवो" (६ शि० ले० १४ ला०) = प्रतिवेदयितव्यं; "शको" (१३ शि० ले० ७ ला०) = शक्यं ।

हलन्त शब्द प्रायः अजन्त हो जाते हैं पर कुछ शब्दोंमें हलन्त रूप विद्यमान है—यथा "रज" = राजा; "रञो" = राज्ञः; "रञा" = राज्ञा; "रजनो" = राजानः; "यशो"; (१० शि० ले०, २१ ला०) "प्रियद्रशिन" (४ शि० ले० ११ ला०) = प्रियदर्शिना; "हस्तिनो" (४ शि० ले० ८ ला०)।

कहीं कहीं "प्रियदर्शिन्" शब्द का इकारान्त शब्दके समान और ऋकारान्त शब्दका उकारान्त शब्दके समान रूप चलता है यथा "प्रियद्रशिस"; "भ्रतुनं" = भ्रातॄणां; स्पसुनं = स्वसॄणां (५ शि० ले० १३ ला०); "मतंपितुषु" = मातापितृषु।

अकारान्त पुल्लिंग

प्रथमा एकवचन—का रूप प्रायः ओकारान्त होता है पर कहीं कहीं मागधीकी तरह एकारान्त भी मिलता है यथा "समये", (१ शि० ले० २ ला०) = समाजः; "देवन प्रिये"; "जने" = जनः (१० शि० ले० २१ ला०)।

सप्तमी एकवचन—का रूप प्रायः एकारान्त होता है पर कहीं कहीं उसके अन्तमें असि भी रहता है यथा "महनससि" (१ शि० ले० २ ला०) = महानसे; "गणनसि" (३ शि० ले० ७ ला०) = गणने।

अकारान्त नपुंसकलिंग

प्रथमा एकवचन—जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है प्रथमा एकवचनका रूप प्रायः मकारान्त होता है पर कहीं कहीं एकारान्त और ओकारान्त भी पाया जाता है

आकारान्त स्त्रीलिंग

सप्तमी एकवचन—के अन्तमें अये होता है यथा "परिषये" (६ शि० ले० १४ ला०)।

धातुओंके रूप।

धातुओंके रूप प्रायः वैसे ही चलते हैं जैसे कि संस्कृतमें होते हैं। हां पालीके नियमोंके अनुसार धातुओंमें स्वर और व्यंजन संबन्धी परिवर्तन अवश्य हो जाते हैं यथा भवति का भांति इत्यादि। शाहबाज़गढ़ीमें "आह" के स्थानपर "अहति" रूप मिलता है (५ शि० ले० १ ला०)।

णिजन्त

प्रेरणार्थक क्रियामें अय अथवा पय प्रत्यय लगा दिया जाता है और अय का ए हो जाता है यथा "लिखपेशमि" (१४ शि० ले०, १४ ला०)=लिखापयिष्यामि (=लेखयिष्यामि)।

क्त्वा प्रत्यय

शाहबाज़गढ़ीमें क्त्वा का रूप तु में वदल जाता है यथा "श्रुतु" (१३ शि० ले०, १० ला०)=श्रुत्वा।

३—कालसी; धौली; जौगढ़; भाब्रू; सहसराम; रूपनाथ, बैराट, दिल्ली।

गिरनार, शाहबाज़गढ़ी और मानसेराके शिलालेखोंको छोड़ कर और बाकी शिलालेखों तथा स्तंभ-लेखोंकी भाषा प्रायः एक सी है। इसलिये उन सबोंका एक अलग विभाग कर दिया गया है।

संकेतके तौरपर वे यहां अपने प्रथम अक्षरसे सूचित किये गये हैं—यथा धौ०=धौली, का०=कालसी, स०=

सहसराम, रू० = रूपनाथ, बै० = बैराट, भा० = भाब्रू । स्तंभ-लेखोंमें दिल्ली-टोपरा वाला स्तंभलेख सबसे अधिक सुरक्षित, शुद्ध और प्रसिद्ध है। इसलिये यहांपर केवल उसीका उल्लेख दि० अक्षरसे किया जायगा।

ह्रस्व स्वरके स्थानपर दीर्घ स्वर

कालसी—शब्दके अन्तमें अ प्रायः दीर्घ हो जाता है यथा—"अभिसितसा" (१३ शि० ले० ३५ ला०) = अभिषिक्तस्य; "आहा" = आह; "अजा" (४ शि० ले०, ६ ला०) = अद्य; "एवा" (२ शि० ले०, ६ ला०) = एव; "चा" = च; "पुना" = पुनः।

धौली—शब्दके अन्तमें अ प्रायः दीर्घ हो जाता है यथा—"आहा" (३ शि० ले०, ६ ला०) = आह; "आलाधयेतू" (२ शि० ले०, ६ ला०) = आराधायेयुः; "युजंतू" (४ शि० ले०, १८ ला०) = युंजन्तु; "ममा" (१ शि० ले० ५ ला०) मम।

दिल्ली—शब्दके अन्तमें अ प्रायः दीर्घ हो जाता ह यथा—'आहा" = आह; "अपहटा" (६ स्तं० ल०, ३ ला०) = अपहृत्य; "अस्वसा" (५ स्तं० ले०, १८ ला०) = अश्वस्य; "चा" = च; "हेमेवा" (१ स्तं० ले०, ८ ला०) = एवमेव; "लोकसा" (६ स्तं० ले०, २ ला०) = लोकस्य; 'ममा" (४ स्तं० ले०, १२ ला०) = मम; 'साधू" (२ स्तं० ले०, ११ ला०) = साधुः।

भाब्रू—"आहा" = आह; "चा" = च; 'एवा" = एव।

सहसराम—शब्दके अन्तमें अ प्रायः दीर्घ हो जाता है यथा—'अवलाधियेना" (६ ला०) = अवराध्येन; "चा" = च।

रूपनाथ-शब्दके अन्तमें अ प्रायः दीर्घ हो जाता है यथा "अपलधियेना" (ला०४)=अवराध्येंन, व्युठना" (ला० ५)=व्युष्टेन।

वैराट—"आहा"=आह, "चा"=च।

स्वरोंमें परिवर्तन

कालसी-अ के स्थानपर इ—यथा "मझिमेना" (१४ शि० ले०, ८ ला०)=मध्यमेन।

अ के स्थानपर ए—यथा "हेता" (८ शि० ले०, २३ ला०)=अत्र।

अ के स्थानपर उ—यथा "मुनिस" (२ शि० ले०, ६ ला०)=मनुष्य।

इ के स्थानपर ए—यथा 'एदिसाये" (६ शि० ले०, २४ ला०)=ईदशाय।

उ के स्थानपर अ—यथा "गलु" (१३ शि० ले०, ३६ ला०)=गुरु।

उ के स्थानपर इ—यथा "मुनिस"=मनुष्य।

ऋ के स्थानपर अ-यथा 'वधि"=वृद्धिः"; "भतकाषि" (१३ शि० ले० ३७ ला०)=भृतके; "गहथानि" (१२ शि० ले०, ३१ ला०)=गृहस्थाः, मटे(१३ शि० ले०, ३५ ला०)=मृतः; विथटेना (१४ शि० ले०, १८ ला०)=विस्तृतेन।

ऋ के स्थानपर इ-यथा "आदिसे" (४ शि० ले०, १० ला०)=यादृशः "दिढ" (७ शि०

लें० २२ला०)=दृढ़; "मिगे"=मृगः।

ऋ के स्थानपर उ-यथा "पलिपुछा" (७ शि० लें०, २३ ला०)=परिपृच्छा।

धौली—अ के स्थानपर उ-यथा "अवुच,, (७ शि० लें०, २ ला०) =अवच; ' मुनिस " (७ शि० लें०, १ला०)=मनुष्य।

अ के स्थानपर ए-यथा "हेत" (१४ शि० लें०, १६ ला०) = अत्र।

इ के स्थानपर अ-यथा "पुठवियं" (५ शि० लें०, २६ ला०) =पृथिव्यां।

उ के स्थानपर इ-यथा " मुनिस "=मनुष्य, "पुलिस" (१ शि०लें०, ७ ला०)=पुरुष।

ओ के स्थानपर ए-यथा "भूये"=भूयो।

ऋ के स्थानपर अ-यथा "आदसे" (४ शि० लें०, १४ ला०)=यादृशः; "भटक" (५शि० लें०,८ ला०) भृतक; 'कट"=कृत।

ऋ के स्थानपर इ-यथा "आदिसे" (९ शि० लें०, ११ ला०)=यादृशः; "धिति" ११ शि० लं०, ६ ला०)=धृति।

ऋ के स्थानपर उ-यथा "पुठवियं" (५ शि० लें०, २६ ला०)=पृथिव्यां।

दिल्ली—अ के स्थानपर इ-यथा " मझिमं " (१ स्तं० लें०, ७ ला०)=मध्यम।

अ के स्थानपर उ-यथा "मुटे" (६ स्तं० लें०, १६ ला०) =मृतः;"मुनिसानं"=मनुष्याणां।

उ के स्थानपर इ–यथा "मुनिस"=मनुष्य; "पुलिस" (१ स्तं० ले०, ७ ला०)=पुरुष।

ऋ के स्थानपर अ–यथा "अपहटा" (६ शि० ले०, ३ ला०)=अपहृत्य; "भटकेसु" (७ स्तं० ले०, ८ ला०)=भृतकेषु; "वियापटा" (७ स्तं० ले०, ४ ला०) =व्यापृताः।

भाब्रू—ए के स्थानपर इ–यथा "लिखापयामि" (८ ला०)= लेखापयामि (लेखयामि)।

ऋ के स्थानपर इ–यथा "अधिगिच्य" (ला० ६)= अधिकृत्य।

व्यंजनोंमें परिवर्त्तन

व्यंजनोंके सम्बन्धमें एक ख़ास बात ध्यान देने लायक यह है कि ऊपर लिखे हुए शिलालेखों और स्तंभलेखोंमें ण और ञ का प्रायः बिलकुल ही अभाव है। दोनोंके स्थानपर न का प्रयोग किया गया है। सिर्फ एक स्थानपर ञ का प्रयोग हुआ है यथा "पटिंञा" (धौली २शि० ले० ६ ला०)=प्रतिज्ञा। ण का प्रयोग भी केवल दो स्थानोंपर हुआ है यथा "खणसि" (धौली २ शि० ले०, १० ला०)=क्षणे; "सवेणा" (जौगढ़-२ शि० ले० ३ ला०)=सर्वेण।

दूसरी बात ध्यान देने लायक यह है कि इन शिलालेखों और स्तंभलेखोंमें र का भी अभाव है। र के स्थानपर सदा ल का ही प्रयोग किया गया है। केवल दो स्थानोंपर र का प्रयोग हुआ है यथा—"कंवछरे (रूप०—१ ला०); 'चिरठितिक"।

व्यंजनोंमें जो परिवर्त्तन होते हैं वे यहांपर दिखाये जाते हैं :—

कालसी—क के स्थानपर ग—यथा "अंतियोग" (२ शि० ले० ५ ला०) = अंतियोक (Antiochos)।

ग के स्थानपर क—यथा "मका" (१२ शि० ले० ५ ला०) मग(मेगस-साइरीनीका राजा)

घ के स्थानपर ह—यथा "लहुका" (११ शि० ले० ३२ ला०) लघुका।

च के स्थानपर छ—यथा "किछि" = किंचित्।

ज के स्थानपर द—यथा "पलितिदितु" (१० शि० ले० २८ ला०) परित्यज्य।

त के स्थानपर ट—यथा भटक (१३ शि० ले० ३७ ला०) = भृतक; 'मटे' (१३ शि० ले० ३६ ला०) = मृतः।

त के स्थानपर द—यथा "दोसे' (६ शि० ले० १६ ला०) = तोषः; हिदसुखाये (५ शि० ले० १५ ला०) = हितसुखाय।

द के स्थानपर ड—यथा "हेडिस" (८ शि० ले० २२ ला०) = ईदृश, "दुवाडस" (३ शि० ले० ७ ला०) = द्वादश।

द के स्थानपर य—यथा "इयं" = इदं।

भ के स्थानपर ह—यथा "होति" = भोति=भवति।

य के स्थानपर ज—यथा "मजुला" (१ शि० ले० ४ ला०) मयूराः।

स के स्थानपर ह—यथा "हंचे"। (६ शि० ले० २६ ला०) = सचेत्।

धौली—क के स्थानपर ख—यथा "अखखसे" (१ शि० ले० २२ ला०)=अकर्कशः ।

च के स्थानपर ज—यथा "अजला" (२ शि० ले० ७ ला०)=अचला ।

च के स्थानपर छ—यथा "किछि"=किंचित् ।

ज के स्थानपर च—यथा कंवोच" (५ शि० ले० २३ ला०) कंवोज ।

त के स्थानपर ट—यथा "कट"=कृत; "वियापटा" (१ शि० ले० १५ ला०)= व्यापृताः ।

भ के स्थानपर ह—यथा "होति"=भोति=भवति ।

व क स्थानपर म—यथा "मये" (२ शि० ले० ८ ला०)=वयं ।

जागढ़—क के स्थानपर ग—यथा "हिद्लोगं" (२ शि० ले० ७ ला०)=इहलोकं ।

द के स्थानपर त—यथा "पटिपातयेहं" (१ शि० ले० ५ ला०)=प्रतिपादयेम

दिल्ली—घ के स्थानपर ह—यथा "लहु" (७ स्त० ले० ६ ला० =लघु ।

ट के स्थानपर ड—यथा 'वाडिका" (७ स्त० ले० २ ला०) वाटिका ।

त के स्थानपर ट—यथा "कट"=कृत ।

त के स्थानपर व—यथा "चावुदसं" (५ स्त० ले० १२ ला०)=चतुर्दश्यां ।

थ के स्थानपर ठ—यथा "निघंठेसु" (७ स्तं० ले० ५ ला०)=निर्ग्रन्थेषु ।

द के स्थानपर ड—यथा "दुवाडस" (६ स्तं० ले० १ ला०) = द्वादश ।
ध के स्थानपर ह—यथा "निगोहानि" (७ स्तं० ले० ५ ला०) = न्यग्रोधाः ।
प के स्थानपर ब—यथा "लिबि" (७ स्तं० ले० १० ला०) = लिपि ।
प के स्थानपर म—यथा "मिन" (३ स्तं० ले० १८ ला०) = पुनः ।
भ के स्थानपर ह—यथा "होति" = भोति = भवति
म के स्थानपर फ—यथा "कफट" (५ स्तं० ले० ५ ला०) = कमठ ।

भाब्रू————क के स्थानपर ग—यथा "अधिगिच्य" (६ ला०) = अधिकृत्य ।
भ के स्थानपर ह—यथा "होसति" (ला० ४) = भविष्यति ।

सहसराम—भ के स्थानपर ह—यथा "होतु" = भोतु = भवतु ।
द के स्थानपर ड—यथा "उडाला" (ला० ४) = उदाराः ।

रूपनाथ—द के स्थानपर ड—यथा "उडाला" (३ ला०) = उदाराः ।
भ के स्थानपर ह—यथा "हुसु" (ला० २) = अभूवन् ।

संयुक्त व्यंजन

क्त = त—कालसी, धौली, दिल्ली तीनों स्थानोंमें क्त का केवल त रह जाता है ।

क्य = किय—यथा "सकिये" (रू० ३) = शक्यः ।

क्ष—हमेशा क हो जाता है ।

क्व = कुव—यथा "कुवापि" (का० १३ शि० ले० ३६ ला०) = क्वापि।

क्ष = ख—यथा "खुदक" (का० १० शि० ले० २८ ला०) = क्षुद्रक।

क्ष्ण=खिन—यथा "अभिखिनं" (भा०) = अभीक्ष्णं।

क्ष्य = ख—यथा "दुपटिवेखे" (दि० ३ स्तं० ले० १६ ला०) = दुष्प्रतिवेक्ष्य।

ग्न = ग—यथा "अगिकंधानि" (का० ४ शि० ले० १० ला०) = अग्निस्कन्धाः।

ग्र = ग—कालसी, धौली और दिल्ली तीनों स्थानोंमें ग्र का केवल ग रह जाता है।

ज्ञ = न—कालसी, धौली और दिल्ली तीनों स्थानोंमें ज्ञ का केवल न रह जाता है।

ड्य = डिय—यथा "पंडिया" (का० १३ शि० ले० ६ ला०) = पांड्याः, "चंडिये" (दि० ३ स्तं० ले० २० ला०) = चांड्यं।

त्क = क—दिल्ली और सहसराममें त्क का केवल क रह जाता है।

त्थ = ठ—यथा "उठान" (का० ६ शि० ले० ६ ला०) = उत्थान।

त्म = त—कालसी, धौली और दिल्ली तीनों स्थानोंमें त्म का केवल त रह जाता है।

त्य = तिय—यथा "अपतिये" (का० ५ शि० ले० १४ ला०) = अपत्यं।

त्य = च—यथा "निचे" (का० ७ शि० ले० २२ ला०) = नित्यं, "सचे" (दि० २ स्तं० ले० १२ ला०) = सत्यं।

त्र = त—हर एक जगह त्र का त हो जाता है ।

त्स = स—यथा "चिकिसा" (का० २ शि० ले० ५ ला०)= चिकित्सा ।

त्स = छ—यथा "छवछरे" (रू० १ ला०)=संवत्सरः ।

त्स्य = छ—यथा "मछे" (दि० ५ स्तं० ले० ४ ला०)= मत्स्यः ।

द्य = ज—कालसी, धौली तथा दिल्लीमें द्य का ज हो जाता है। केवल "उद्यान" शब्दका कालसी में "उयान" हो जाता है ।

द्र = द—हर एक स्थानपर द्र का द हो जाता है ।

द्व = दुव—यथा "दुवाडस" (का० ३ शि० ले० ७ ला०)= द्वादश ।

द्व = द—यथा "जंबुदिपसि" (स०२ला०; रू०२ला० वै० २ ला०)=जंबू द्वीपे ।

ध्य = धिय—यथा "अधियख" (का० १३ शि० ले० ३४ ला०) =अध्यक्ष ।

ध्र = ध—कालसी और दिल्लीमें ध्र का ध हो जाता है ।

प्त = त—कालसी, धौली और दिल्लीमें प्त का त हो जाता है ।

प्र = प—हर एक स्थान पर प्र का प हा जाता है ।

ब्ध = ध—यथा "लधा" (का० १३ शि० ले० ११ ला०)= लब्धा ।

ब्र = ब—का०, धौ० और दिल्लीमें ब्र का ब हो जाता है ।

भ्य = भ—यथा "इभेसु" (का० ५ शि० ले० १५)=इभ्येषु ।

भ्य = भिय—यथा "इभियेसु" (धौ० ५ शि० ले० २४ ला०) =इभ्येषु ।

भ्र = भ—का० और धौ० में भ्र का केवल भ रह जाता है।
ताम्र = तंब—यथा "तंबपंनिया" (का० १३ शि० ले० ८ ला०)
= ताम्रपर्णीयाः।
आम्र = अंब—यथा "अंबावडिका" (दि० ७ स्तं० ले० २ ला०)
= आम्रवाटिका।
र्ग = ग—हर एक स्थानपर र्ग का केवल ग रह जाता है।
र्ग्र = घ—यथा "निघंठेसु" (दि० ७ स्तं० ले० ५ ला०) =
निर्ग्रन्थेषु।
र्च = च—का०, धौ० और दि० में र्च का केवल च हो
जाता है।
र्त = त—यथा "अनुवतंति" (का० १३ शि० ले० ८ ला०)
= अनुवर्तन्ते।
र्त = ट—यथा "केवट" (दि० ५ स्तं० ले० १४ ला०)
= कैवर्त्त।
र्थ = थ—यथा "अथ" (का० ४ शि० ले० १२ ला०) = अर्थं।
र्थ = ठ—यथा "अठ" (का० ६ शि० ले १७ ला०) = अर्थं।
र्थ्य = थिय—यथा "निलथियं" (धौ० ६ शि० ले० ७ ला०)
= निरर्थ्यं।
र्द = द—का० और दि० में र्द का केवल द रह जाता है।
र्ध = ढ—यथा "बढयिसंति" (का० ४ शि० ले० १२ ला०)
= वर्धयिष्यंति।
र्ध = ध—यथा "वधिते" (का० ४ शि० ले० ११ ला०)
= वर्धितः।
र्ध्य = धिय—यथा "अवलाधियेना" (स० ६ ला०) =
अवराध्येन।
र्भ = भ—का० और धौ० में र्भ का भ हो जाता है।

र्यं = लिय—यथा "अनंतलियेना" (का० ६ शि० ले० १६ ला०) = आनंतर्येण।

र्शं = स —का० धौ० और दि० में र्शं का स हो जाता है।

र्षं = स —का० धौ० दि० और भा० में र्षं का स हो जाता है यथा "वस" = वर्षं।

र्ष्यं = छ—यथा "कछामि" (का० ६ शि० ले० १८ ला०) = कर्ष्यामि = करिष्यामि।

र्हं = लह—यथा "गलहति" (का० १२ शि० ले० ३३ ला०) = गर्हयाति "अलहामि" (भा० ४ ला०) = अर्हामि।

ल्प = प—का० और धौ० में ल्प का केवल प रह जाता है।

ल्य = य—का० धौ० और दि० में ल्य का केवल य रह जाता है यथा "कयान" = कल्याण।

व्य = विय—यथा "मिगविया" (का० ८ शि० ले०२२ ला०) मृगव्यं।

व्र = व—का० धौ० और दि० में व्र का व ही रह जाता है।

श्च = छ—का० और धौ० में श्च का छ हो जाता है।

श्य = सिय—यथा "पटिवेसियेना" (का० ६ शि० ले० २५ ला०) = प्रातिवेश्येन।

श्र = स—का० धौ० दि० और रू० में श्र का स हो जाता है।

श्व = स—यथा "सेत" (दि० ५ स्तं० ले० ६ ला०) = श्वेत।

ष्क = क—यथा "दुकले" (का० ५ शि० ले० १३ ला०) = दुष्करः।

ष्ट = ठ—का० धौ० दि० और रू० में ष्ट का ठ हो जाता है।

ष्ट = थ—यथा "विविथा" (स० ७ ला०) = व्युष्ट।

ष्प = फ—यथा "निफति" (का० ६ शि० ले० २६ ला०) = निष्पत्ति।

स्त = थ—हर एक स्थानपर स्त का थ हो जाता है।
स्थ = थ—यथा "चिलाथितिका" (का० ५ शि० ले० १७ ला०)
= चिरस्थितिकाः ।
स्न = सिन—यथा "सिनेहे" (का० १३ शि० ले० ३३ ला०)=
स्नेहः ।
स्य = स—का० में षष्ठीके चिन्ह स्य का केवल स रह
जाता है।
ह्म = म्भ—यथा "बंभन"=ब्राह्मण ।

कारकोंके रूप ।

इन शिलालेखों और स्तंभ लेखोंमें पुल्लिंग और नपुंसकलिंग-में वहुत कम भेद दिखलायी पड़ता है । नपुंसकलिंगके प्रथमा एक-वचनका रूप मकारान्त और एकारान्त दोनों देखा जाता है। पुल्लिंगमें प्रथमा वहुवचनका रूप विशेष करके नपुंसकलिंग–की तरह पाया जाता है यथा "युतानि" (धौ० ३ शि० ले० ११ ला०)=युक्ताः, "हथीनि" (धौ० ४ शि० ले० १३ ला०)= हस्तिनः इ० ।

हलन्त शब्द प्रायः अजन्त हो जाते हैं पर कुछ शब्दोंमें हलन्त रूप विद्यमान हैं—यथा "लाजा"=राजा; "लाजाने"=राजा-नः; "अतानं" (धौ० २ शि० ले० ७ ला०)=आत्मानं; "कंमने" (धौ० ३ शि० ले० १० ला०)=कर्मणो । ऋकारान्त शब्दका रूप प्रायः इकारान्त शब्दके समान चलता है यथा "भातिना" (का० ६ शि ले० २५ ला०)=भ्रात्रा; "पितिना" (का० ६ शि० ले० २५ ला०) पित्रा; "पितिसु" (का० ३ शि० ले० ८ ला०)= पितृषु ।

प्रियदर्शिन् शब्द का हलन्त और अजन्त दोनोंका समान रूप चलता है-यथा " पियदसिना " =प्रियदर्शिणा, "पियदसिसा"=प्रियदर्शिन; "पियदसी"=प्रियदर्शी ।

अकारान्त पुल्लिंग

प्रथमा एकवचन—का रूप एकारान्त होता है पर कालसीमें दो जगह ओकारान्त रूप भी पाया जाता है यथा; "केललपुतो" "सातियपुतो" (का० २ शि० ले०४ ला०) ।

चतुर्थी एकवचन—के अन्तमें सर्वत्र आये मिलता है-यथा "एताये अठाये" (दि० २ स्तं० ले० १५ ला०)= एतस्मै अर्थाय ।

पंचमा एकवचन—का रूप आकारान्त होता है-यथा "सतविवासा" (रू० ६ ला०)=सत्र-विवासात् ।

सप्तमी एकवचन—के अन्त में प्रायः असि पाया जाता है—यथा "महानससिं" (का० १ शि० ले० ३ ला०)=महानसे । कहीं कहीं एकारान्त रूप भी मिलता है—यथा' भागे अंने' (का० ८ शि० ले० २३ ला०)=भागे अन्यस्मिन् ।

अकारान्त नपुंसकालिंग

प्रथमा एकवचन—का रूप सर्वत्र प्रायः एकारान्त होता है पर कालसीमें कहीं कहीं मकारान्त भी देखा जाता है यथा "धंमानुसासनं" (का० ४ शि० ले० १२ ला०)= धर्मानुशासनं ।

द्वितीया एकवचन—का रूप सर्वत्र मकारान्त होता है । पर कालसीमें कहीं कहीं एकारान्त रूप भी पाया जाता है यथा—"दाने"(का० १२ शि० ले० ३१ ला०)=दानं ।

प्रथमा और द्वितीया बहुवचन—के अन्त में आनि होता है पर कालसीमें कहीं कहीं पुल्लिंगकी तरह आकारान्त रूप भी पाया जाता है—यथा "दसना" (का० ४ शि० ले० ६ ला०) = दर्शनानि ।

आकारान्त स्त्रीलिंग

तृतीया एकवचन, चतुर्थी एकवचन, पंचमी एकवचन तथा सप्तमी एकवचन—के अन्तमें प्रायः आये होता है, यथा "मधुलियाये" (का० १४ शि० ले० २० ला०) = माधुर्येण, 'विहिसाये' (दि० ५ स्त० ले० १० ला०) = विहिंसायै इत्यादि ।

प्रथमा बहुवचन—का रूप आकारान्त होता है—यथा 'पजा' (धौ० १ शि० ले० ५ ला०) = प्रजाः; 'गाथा' (भा० ५ ला०) = गाथाः, "उपासिका" (भा० ८ ला०) उपासिकाः ।

धातुओंके रूप

धातुओंके रूप प्रायः वैसे ही चलते हैं जेस कि सस्कृतमें होते हैं । हां, पालीके नियमोंके अनुसार धातुओंमें स्वर और व्यंजन संबन्धी परिवर्तन अवश्य हो जाते हैं-यथा 'अस्ति' का' 'अथि" इत्यादि ।

णिजन्त

प्रेरणार्थक क्रियामें अय अथवा पय प्रत्यय लगा दिया जाता है और अय का ए हो जाता है—यथा "लेखापेशामि" (का० १४ शि० ले० २१ ला०) = लेखापयिष्यामि (= लेखयिष्यामि)

क्त्वा प्रत्यय

इन शिलालेखों और स्तंभ लेखोंमें क्त्वा रूप तु में बदल जाता है—यथा " दसयितु " (का० ९ शि० ले० १० ला०)= र्शयित्वा,"सुतु" (दि० ७ स्त० ले० २१ ला०) श्रुत्वा।

कौशाम्बी(प्रयाग) का स्तंभलेख, रानीका लेख और बराबर पहाड़ीके गुहालेख, भाषाकी दृष्टिसे, ऊपर लिखे हुए शिला और स्तंभलेखोंके समुदायमें आ सकते हैं। इन सब लेखोंमें भी र के स्थानपर ल हो जाता है और ऋ तथा ण का अभाव दिखलायी पड़ता है। इसी तरहसे अकारान्त शब्दका पुल्लिंगमें प्रथमा एकवचनका रूप एकारान्त होता है।

परिशिष्ट—४

अशोकके धर्म-लेखोंकी भाषा

भाषा और व्याकरणकी दृष्टिसे अशोकके धर्मलेखोंका अध्ययन करनेसे हम नीचे लिखे हुए परिणामपर पहुंचते हैं—

१—अशोकके धर्मलेख प्रधानतया दो बड़े बड़े भागोंमें बाँटे जा सकते हैं, इनमेंसे एक भागके शिलालेखोंमें ण और ञ का अभाव पाया जाता है, शब्दोंके प्रारम्भमें य का लोप होता है, र के स्थानपर ल होता है, पुल्लिंग और नपुंसकलिंगके प्रथमा एकवचनका रूप एकारान्त होता है और सप्तमी एकवचनके अन्तमें अंसि रहता है। दूसरे भागके शिलालेखोंमें ण और ञ दोनों बने रहते हैं, शब्दोंके प्रारम्भमें य का लोप नहीं होता, र का स्थान ल नहीं ग्रहण करता, अकारान्त पुल्लिंगके प्रथमा एकवचनका रूप ओकारान्त होता है और सप्तमी एकवचनके अन्तमें अम्हि या ए रहता है। गिरनार, शाहबाज़गढ़ी और मानसेराको छोड़ कर बाकी स्थानोंके शिलालेख और स्तम्भलेख ऊपर लिखे हुए प्रथम भागमें आ सकते हैं। गिरनार, शाहबाज़गढ़ी और मानसेराके शिलालेख द्वितीय भागमें रक्खे जा सकते हैं। इन दोनों भागोंके शिलालेखोंकी भाषाको हम यथाक्रम पूर्वी और पश्चिमी प्राकृतके नामसे कह सकते हैं।

२—थोड़ेसे प्रान्तिक भेदोंको छोड़ कर अशोकके कुल धर्मलेख एक ही भाषामें लिखे हुए हैं। इससे सूचित होता है कि अशोकके समयमें प्रान्तिक भाषाओंके साथ साथ एक ऐसी भाषा भी प्रचलित थी जिसे हर एक प्रान्तके शिक्षित मनुष्य समझ सकते थे। यही भाषा उस समयकी राष्ट्रीय भाषा थी। अशोकके साम्राज्यका राजकार्य उसी भाषाके द्वारा होता था। हम प्रान्तिक भेदोंके कुछ नमूने यहांपर देते हैं यथा—

गि०	का०	जा०	शा०	मा०
धंमलिपी	धंमलिपि	धंमलिपी	ध्रमदिपि	ध्रमदिपि
प्रजूहितव्यं	प्रजोहितविये	पजोहितविये	प्रयुहोत्तवे	प्रयुहोतविये
एकचा	एकतिया	एकतिया	एकतिए	एकतिय
राञो	लाजिने	लाजिने	रञो	रजिने
आरभिसु	आलभियिसु	आलभियिसु	अरभियुसु	अरभिसु
मगो	मिगे	मिगे	म्रुगो	मृगे
सूपाथाय	सुपठाये	सूपठाये*	सुपठये	सुपथ्रये
विजितम्हि	विजितसि	विजितसि*	विजिते	विजितसि
द्वादसवासा-भिसितेन	दुवाडसवाभि-सितेन	दुवदसवसा-भिसितेन†	बदयवषभि-सितेन	दुवडशवष-भिसेतेन

इन उदाहरणोंसे आपको पता लग सकता है कि ये भेद ऐसे न थे जिनके सबबसे इस राष्ट्रीय भाषाके समझनेमें शिक्षित समुदायको कोई अड़चन पड़ती रही हो।

---

* यह पाठ धौलीके लेखोंमें है।

† धौलीके लेखमें 'दुवादसवसाभिसितेन' यह पाठ है।

३—अशोकका समय ईसवी सन्के २५० वर्ष पूर्व और पतंजलिका समय ईसवी सन्के १५० वर्ष पूर्व माना जाता है। अशोकके धर्मलेखों तथा पतंजलिके महाभाष्यसे मालूम होता है कि ईसवी सन्के प्रायः तीन सौ वर्ष पहिले उत्तरी भारतमें एक ऐसी भाषा प्रचलित हो गयी थी जिसमें भिन्न भिन्न कई बोलियाँ मिली जुली थीं। यह भाषा बोलचालकी प्राचीन संस्कृतसे निकली थी। यह प्राचीन संस्कृत उस ज़माने॰ में बोली जाती थी जब कि वेद-मन्त्रोंकी रचना हुई थी, अर्थात् जो पुरानी संस्कृत वैदिक समयमें आम बोलचालकी भाषा थी उसीसे यह नयी भाषा उत्पन्न हुई थी। इस भाषाके साथ साथ एक परिमार्जित भाषाकी भी उत्पत्ति हुई। यह परिमार्जित भाषा भी पुरानी संस्कृतकी किसी उपशाखा या बोलीसे निकली थी। इस परिमार्जित भाषाका नाम हुआ "संस्कृत" अर्थात् "संस्कार की गयी" और उस नयी बोल-चालकी भाषाका नाम पड़ा "प्राकृत" अर्थात् "स्वाभाविक"। वेदोंके समयमें जो भाषा सर्वसाधारणमें प्रचलित थी उसका नाम आदिम या पहली प्राकृत रक्खा जा सकता है। जब इस आदिम प्राकृतमें रूपान्तर होना प्रारम्भ हुआ तो उसकी कितनी ही भाषायें बन गयीं। इन भाषाओंको पाली या दूसरी प्राकृतके नामसे पुकारते हैं। प्राकृतका तीसरा विकास वह सब भाषायें हैं जो आज कोई ९०० वर्षसे उत्तरी भारतमें बोली जाती हैं। हिन्दी भी इन्हीं भाषाओंमेंसे है।

परिशिष्ट—५

अशोकके इतिहासकी सामग्री

दिव्यावदान (अशोकावदान)-ई० बी० कावेल और आर० ए० नील द्वारा सम्पादित

महावंश—डब्ल्यू० गीगर द्वारा संपादित

दीपवंश—एच्० औल्डनबर्ग द्वारा संपादित

विष्णुपुराण

मुद्राराक्षस—विशाखदत्त-कृत

कौटिलीय अर्थशास्त्र

राजतरंगिणी—ए० एम्० स्टाइन द्वारा संपादित

महाभाष्य—कीलहार्न द्वारा संपादित

जातक—वी फोजब्रोल द्वारा संपादित

ललितविस्तर—राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा संपादित

Smith, V. A. — Asoka (Third Edition).

Early History of India (Third Edition).

Oxford History of India.

Fine Art in India and Ceylon.

Rapson, E. J. — Cambridge History of India.

Ancient India.

Rhys Davids, — Buddhist India.

Fergusson, J. — History of India and Eastern Architecture.

Tree and Serpent Worship.

Barnett, L. D. Antiquities of India.
Buhler, G. Indian Palaeography (Indian Antiquary 1904, Appendix).
Origin of the Brahma and Kharosthi Alphabets.
Fleet, J. F. Epigraphy (Imperial Gazetteer Vol. II).
Bhandarkar, D. R. Lectures on the Ancient History of India.
Pargiter, F. E. The Purana Text of the Dynasties of the Kali Age.
Spooner, D. B. The Zoroastrian Period of Indian History (J.R.A.S. 1915, p.p. 63-89, 405—55).
Cunningham Stup of Bharhut.
Ancient Geography.
Foucher, A. The Beginnings of Buddhist Art and other Essays.
Fick, R. The Social condition in North-Eastern India in Buddha's time
Maisey, F. C. Sanchi and its remains.
Waddell, L. A. Discovery of the exact site of Asoka's Classic Capital of Pataliputra.
Marshall, J. H. A Guide to Taxila.
A Guide to Sanchi.
Oertel, F. O. Excavations at Sarnath (Archaeological Survey of India Report 1904—5, P. 59).
Sahni, D. R. Catalogue of the Museum of Archaeology at Sarnath.

McCrindle. Ancient India as described by Megasthenes and Arrian.

Persian Influence on Mauryan India (Indian Antiquary 1905, P. 201).

The Authorship of the Piyadasi Inscriptions (J. R. A. S. 1910, P. 481).

The Identity of Piyadasi with Asoka Maurya (J. R. A. S. 1901, P. 827).

The Meaning of Piyadasi (Indian Antiquary 1903, P. 265).

Hardy. Eastern Monachism.

Pramathnath Bannerji. Public Administration in Ancient India.

Law, N. N. Studies in Ancient Hindu Polity Vol. I.

Aspects of Ancient Indian Polity.

Ghoshal, U. A History of Hindu Political Theories

Bhandarkar and Majumdar. Inscriptions of Asoka.

प्राचीन लिपिमाला—हीराचन्द गौरीशंकर ओझा-रचित

प्रियदर्शि-प्रशस्तयः—रामावतार शर्मा द्वारा संपादित

अशोक-अनुशासन (बंगलामें)-चारुचन्द्र वसु और ललित मोहन कर द्वारा संपादित

अशोक व प्रियदर्शी (बंगलामें)-चारुचन्द्र वसु प्रणीत

परिशिष्ट—६

अशोकके धर्मलेखोंका विशेष अध्ययन करनेकी सामग्री

अशोकके धर्मलेखोंके संबन्धमें अबतक अंग्रेजी भाषामें जितने लेख इत्यादि प्रकाशित हो चुके हैं उनकी सूची नीचे दी जाती है। यह सूची परलोकवासी डाक्टर् विन्सेण्ट स्मिथके "अर्ली हिस्टरी आफ इन्डिया" नामक भारतवर्षके प्राचीन इतिहास* से ली गयी है।

१—धर्मलेख-संबन्धी साधारण लेख और ग्रन्थ

Senart, Emile.	The Inscriptions of Piyadasi (Indian Antiquary, Vols. XIX & XX).
Cunningham, A.	Inscriptions of Asoka.
Bhandarkar and Majumdar.	Inscriptions of Asoka (2 Parts).
Smith, V. A.	" Asoka Notes " (Indian Antiquary, 1903, 1905, 1908, 1909 & 1910).
	Asoka (Third Edition).

रामावतार शर्मा—प्रियदर्शि-प्रशस्तयः

चारुचन्द्रवसु—अशोक अनुशासन

२—लघु शिलालेख-संबन्धी लेख

Buhler, G.	Siddapur (Mysore) texts edited and translated with facsimile in Epigraphia Indica Vol. III, p. 135---42.

* V. A. Smith's Early History of India (Third Edition) p.p. 172-74.

Sahasram, Bairat and Rupnath texts, edited and translated with facsimiles of Sahasram and Rupnath in Indian Antiquary Vol. VI (1877), p.p. 149-60; and revised edition in Indian Antiquary, Vol. XXII, P. 209—306. See also Indian Antiquary, Vol. XXVI, P. 334.

Rice Lewis — Facsimile of Siddhapur texts in Epigraphia Carnatica, Vol. XI (1909).
Facsimile of Brahmagiri text in Mysore and Çoorg from the Inscriptions.

Fleet, J. F. — A series of papers in J. R. A. S. for 1903, 1904, 1908, 1909, 1910 and 1911.

Thomas, F. W. — Indian Antiquary, 1908, p. 21.
J. R. A. S., 1913, p. 477.

Hultzsch, Prof. — J. R. A. S.. 1910 p. 142, 1308; 1911 p. 1114; 1913. p. 1053.

Levi, Sylvain — Journal Asiatique, Jan.-Feb, 1911.

Bhandarkar, D. R. — Epigraphic Notes and Questions (Indian Antiquary), 1912, pp. 170-3.

K. Krishna Sastri — The new Asokan edict of Maski, Hyderabad Archaelogical series No. 1.

३—भाब्रू शिलालेख

Senart, Emile.	Indian Antiquary 1891, p. 165.
Burgess, J.	Facsimile in Journal Asiatique, 1887.
Davids, T.W. Rhys.	J. R. A. S. 1898, p. 639.
	Journal of the Pali Text Society, 1896.
Hardy, E.	J. R. A. S. 1901, pp. 311, 577.
Levy, Sylvain.	Journal Asiatique, May-June 1896.
Kosambi, Dh.	Indian Antiquary, 1912, p. 37.
Hultzsch, Prof.	J. R. A. S. 1911, p. 1113.
Edmunds, A.	J. R. A. S., 1913, p. 385.

४—चतुर्दश शिलालेख

Buhler, G.	Epigraphia Indica, Vol. II, p. 447-72 with facsimiles of Girnar, Shahbazgarhi, Mansahra and Kalsi texts.
	Facsimile of Edict XII, Shahbazgarhi, in Epigraphia Indica, Vol. I, 16.
	Dhauli & Jaugada texts in Burgess, Amaravati (A. S. S. I. 1887), pp. 114-25.
Bhandarkar, D. R.	Edicts I & II discussed in J. Bo. Br. R. A. S., Vol XX (1902).
	Edict IV. discussed in Indian Antiquary, 1913 p 25.
Fleet, J. F.	Edict III in J.R.A.S., 1908, pp. 811-22:
Hultzsch, Prof.	Edict IV in J. R. A. S., 1911, p. 785.

Smith, V. A. — Asokan Notes in Indian Antiquary for 1903, 05, 08, 09 & 1910.

Michelson. — Papers chiefly dealing with technicalities of etymology and phonetics in Journal of the American Oriental Society 1911; and American Journal of Philology, 1909, 1910.

५—कलिंग शिलालेख

Senart and Grierson. — Revised edition & translation in Indian Antiquary XIX (1890), pp. 82-102.

Buhler, G. — Translation with facsimiles in Burgess, Amaravati (A. S. S. I. 1887, pp. 125-31.

६—सप्त स्तंभ-लेख

Buhler, G. — Standard edition with translation & Facsimile of some texts in Epigraphia Indica, Vol. II pp. 245-74.

Senart. — Earlier edition & translation in Indian Antiquary XVII (1888) pp. 303-7; XVIII (1889) p 1, 73, 105, 300.

Buhler & Fleet — Facsimile of Topra and Allahabad texts in Indian Antiquary XIII (1884), p. 306.

Manmohan Chakravarti. "Animals in the Inscriptions of Piyadasi" (Memoirs of A. S. B., 1906.)

T. Michelson. "Notes on the Pillar Edicts of Asoka" (Indo-Germ. Forschungen), 1908.

७—लघु स्तंभ-लेख

साँची स्तंभ-लेख — Buhler's edition and translation in Epigraphia Indica Vol. II, pp. 87, 367.

Hultzsch, J. R. A. S. 1911, p. 167.

रानीका लेख — Buhler's edition & translation in Epigraphia Indica Vol. II, pp. 87, 367, and further revision in Indian Antiquary, XIX (1890), p. 125.

Senart, revised edition and translation in Indian Antiquary, XVIII (1889), p. 308.

कौशाम्बी स्तंभ-लेख — Senart, Indian Antiquary XVIII (1889), p. 309.

Buhler, Indian Antiquary, XIX (1890), p. 126.

सारनाथ स्तंभ-लेख — Vogel, Epigraphia Indica, VIII (1905-6), p. 166

Venis, J. and Pro. A. S. B, Vol. III new series (1907)

Norman, J. and Pro. A. S. B., Vol. IV, 1908.

८—तराई स्तंभ-लेख

Buhler, G. — Epigraphia Indica Vol. V, p. 4
J. R. A. S. — 1897, p. 4; 1908, pp. 471-98, 823
Indian Antiquary— Vol. XXXIV (1905).

९—अशोक और दशरथके गुहालेख

Buhler, G. — Indian Antiquary XX (1891), p 361.

अनुक्रमणिका